आधुनिक हिन्दी साहित्य के 'चित्रकूट संज्ञक' काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन

अनुसंधित्सु
अनुराधा कुमारी

NORTH-EASTERN HILL UNIVERSITY LIBRARY
103953
Date 19/4/2...

हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग – 793022
मेघालय

2009

LIBRARY
by
by

आधुनिक हिन्दी साहित्य के 'चित्रकूट संज्ञक' काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन

शोध निर्देशक

डॉ. दिनेश कुमार चौबे
उपाचार्य
हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग–22
मेघालय

अनुसंधित्सु
अनुराधा कुमारी

हिन्दी विभाग
द्वारा

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग–22 मेघालय के हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलासफी के लिए अपेक्षित आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रस्तुत

घोषणा

मैं अनुराधा कुमारी एतत्द्वारा घोषित करती हूँ कि इस शोध–प्रबन्ध की विषय–सामग्री मेरे द्वारा किये गये कार्यों का परिणाम है। इस शोध सामग्री के आधार पर न तो मुझे और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी अन्य को पहले उपाधि प्रदान की गयी है और न ही यह शोध–प्रबन्ध मेरे द्वारा कोई अन्य शोध उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय/संस्थान में प्रस्तुत किया गया है।

इसे पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के सम्मुख हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

30.4.09 30.4.09

अध्यक्ष निर्देशक अनुसंधित्सु

अध्यक्ष Head
हिन्दी विभाग/Hindi Dept
पू.प.वि.वि, शिलांग- 22
N.E.H.U, Shillong- 22

शोध–संक्षिप्तिका

प्रस्तुत शोध–प्रबंध आधुनिक हिन्दी साहित्य के 'चित्रकूट संज्ञक' काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन सात अध्यायों में विभक्त है। जिसमें रामकथा विषयक मूल–कथा, मूल प्रसंग अर्थात् 'वाल्मीकि रामायण' एवं गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' से आधुनिक हिन्दी साहित्य के चित्रकूट संज्ञक काव्यों का तुलना करने का प्रयास किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन के क्रम में रामकथा के परम्परागत कथा संघटन, पात्रों, घटनाओं, समस्याओं, जीवन–मूल्यों एवं काव्यों मानदण्डों का आधुनिक युग के संदर्भ में पूनर्मूल्यांकन किया गया है, जिससे उनके नवीन तथ्य भी प्रत्यक्ष हुए हैं। विभिन्न अध्यायों में इन कृतियों में वर्णित कथानक, चरित–विधान, परिवेश प्रतिबिम्बन के अंतर्गत सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक तथा काव्य सौन्दर्य के अंर्तगत कला पक्ष एवं भाव पक्ष का विवेचन किया गया है।

हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल से पूर्व रामकथा में चित्रकूट का वर्णन आनुसंगिक रीति से ही होता रहा है। इस पर स्वतंत्र रूप से कोई काव्य ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में रामकथा से सम्बद्ध तथा महत्त्वपूर्ण स्थलों को आधार बनाकर 'स्थल–संज्ञक' काव्य ग्रंथ लिखने की प्रवृति का विकास हुआ है। यहाँ हमारा सम्बन्ध 'चित्रकूट–संज्ञक' निम्नलिखित पाँच काव्य ग्रंथों से है– विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट–चित्रण' (1924 ई), रामानन्द त्रिवेदी शास्त्री कृत 'चित्रकूट', (1956 ई.) मोहनलाल गुप्त 'चातक' रचित 'चित्रकूट' (1966 ई), रामेश्वर दयाल दुबे कृत 'चित्रकूट' (1966 ई), और लक्ष्मीकान्त वर्मा रचित 'चित्रकूट–चरित' (1987 ई0)।

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत इन पाँचों कृतियों का सामान्य परिचय दिया गया है। इसमें कृतियों के रचना काल के साथ कृतिकार के समर्पण, निवेदन आदि के आधार पर उस काल को साहित्यिक दृष्टि से विश्लेषित किया गया है। जैसे मोहनलाल गुप्त 'चातक' को इस काव्य को लिखने में 'रामायण', 'मानस' और 'साकेत' से प्रेरणा मिली। किन्तु उससे भी ज्यादा वाल्यकाल में उनकी माँ ने प्रेरणा दी जो रामायण की कहानियाँ सुनाती थी, 'मानस' का पाठ करती थी और हर्ष विभोर होकर नृत्य करने लगती थी और कभी शोक द्रवित होकर अश्रुपात करने लगती थीं। कवि के मन में ऐसी अनुभूति हुई कि इस प्रयोगवादी युग में पौराणिक आख्यानों के माध्यम से जन जागृति का प्रयास किया जा सकता है।

ये काव्य चित्रकूट तीर्थ की सांस्कृतिक महत्ता के साथ इसकी आध्यात्मिक महिमा और नैसर्गिक सुषमा का आख्यान है। चित्रकूट धाम भारत का हृदय बिन्दु है। आधुनिक कवियों ने इस महिमाशाली तीर्थ के प्रति प्रेम और श्रद्धा का भाव भर दिया है। 'गीतावली' और 'विनयपत्रिका' में गोस्वामीजी ने जिस चित्रकूट के अन्तः–बाह्य का वर्णन किया है, उसको आधुनिक कवियों ने अपनी मानवीय दृष्टि के आधार पर बड़ी ही सतर्कता के साथ उभारा है। इन आलोच्य कवियों ने अपना प्रकृति प्रेम, काव्य रसिकता और

भक्ति का अनुपम त्रिपुट प्रस्तुत किया है। वहाँ के झरने मंदाकिनी की पवित्र धारा और वन की शोभा ऐसी सुवर्णित है कि उसे पढ़कर काव्य रसिकों का मन उस स्थान के दर्शन के लिए लालायित हो उठता है। इन कवियों का उद्देश्य चित्रकूट के तीर्थ स्थान के रूप में चित्रित करना, बालक–बालिकाओं के हृदय में धार्मिक भाव उत्पन्न करना, राम और भरत के भ्रातृ–प्रेम को समाज में जाग्रत करना, कैकेयी के कलंक को धोना, उर्मिला माण्डवी आदि के चरित्र को नये ढंग से सामने लाना, ऋषियों के जीवन को धर्म के अंग के रूप में स्वीकार करना, राम के जीवन को तपस्यामय बनाकर संस्कारित करना तथा पात्रों की मानसिकता का आधुनिक अन्तर्द्वन्द्व स्पष्ट करते चलना है।

इन सभी कृतियों में रामानन्द शास्त्री, रामेश्वरदयाल दुबे और लक्ष्मीकांत वर्मा की कृतियाँ विशेष रूप से परिगणनीय हैं। रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट' के सम्बन्ध में प्रख्यात कवियित्री महादेवी वर्मा ने ठीक ही लिखा है– 'प्राकृतिक परिवेश में 'चित्रकूट' के कवि ने अपने पात्रों के चरित्र को उनके कथन, उपकथन द्वारा इस प्रकार उभारा है कि वे हमारे निकट विशिष्ट न होकर सामान्य और आत्मीय बन जाते हैं। उनकी कल्पना का उपयोग पात्र की मानसिकता तथा उसके अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट करने वाला है। 'चित्रकूट चरित' के रचयिता लक्ष्मीकांत वर्मा को हनुमत् कृपा से वर्णित पात्र और घटना को रूपायित करने की शक्ति प्राप्त हुई है। वस्तु–विधान के अन्तर्गत चित्रकूट प्रसंग रामकथा के आलोक में सभी आलोच्य काव्यों की कथावस्तु का वर्णन हुआ है। कविवर 'विभु' का 'चित्रकूट चित्रण' मूलतः प्रकृति वर्णन प्रधान सरस काव्य रचना है। इसे पाँच छवियों में बाँधा गया है। प्रथम में चित्रकूट स्थल का वर्णन विन्ध्याचल पर्वत के अंश रूप में किया गया है। यहाँ चित्रकूट को चित्रपुरी की संज्ञा दी गई है। चूँकि वहाँ चित्रवाज अर्थात् मुर्गा के बांग देने से दिनचर्या प्रारंभ होती है। पुनः इसके पर्यटन हेतु श्रेष्ठ ऋतु के रूप में कवि ने पावस ऋतु का उल्लेख किया है और सभी दर्शनीय स्थलों का विस्तृत वर्णन किया है। फिर चित्रवन की व्याख्या करते हुए कवि प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण एवं अंकन करता है। पंचम छवि को उपसंहार शीर्षक दिया गया है। इसमें कथा योजना बहुत कम हैं। प्रकृति वर्णन ही महत्त्वपूर्ण है। दुबे कृत 'चित्रकूट' में निर्वासित राम अपने अनुज एवं वधू के साथ चित्रकूट में कोल–किरातों को सांत्वना देते हैं। उन्हें मुनियों तथा ज्ञानियों का दर्शन होता है। अयोध्या से आने का कारण बताया जाता है। चित्रकूटवासियों के पास राम के आगमन का संदेश आता है। 'मानस' के समान ही यह कथा है। फिर मंदाकिनी के हरितांचल में कुटिया बनती है, वहाँ लक्ष्मण और सीता के साथ राम का निवास होता है। यहाँ कैकेयी के प्रति आक्रोश भी व्यक्त हुआ है। ऋषि–मुनियों के साथ राम संस्कृति और विधि के विधान जैसे तथ्यों पर तार्किक चर्चा करते है। तृतीय सर्ग की कथा भरत के आगमन की सूचना पाकर लक्ष्मण के आवेश और उत्तेजना से प्रारंभ होती है। चित्रकूट में समस्त अयोध्या और मिथिला के वासियों का साथ–साथ जीवन प्रेम से भरा है। इसमें परिवर्तन इतना ही है कि यहाँ कैकेयी मुखर हैं और सौमित्र उर्मिला को दीप जलाना देखकर सहम जाते हैं। चतुर्थ सर्ग में श्रीराम दशरथ की मृत्यु के बाद श्राद्ध कर्म और पिण्डदान करते हैं। किरातिनियाँ लोक नृत्य दिखला कर सबका मनोरंजन करती हैं। भरत को गुरू वशिष्ट द्वारा मौन तोड़ने का आदेश होता है। राम भी उन्हीं के मुख से

कुछ सुनना चाहते है। किन्तु इधर राम पिता की आज्ञा पाले और उधर भरत माताओं, प्रजाओं की सेवा करें। इसी पर पूरी सभा हामी भर देती हैं। पंचम सर्ग में सभी लौट–जाने की बात सोचते हैं।

'चित्रकूट चरित' में कथा शिविरों में विभक्त है। ये शिविर सर्ग के सूचक हैं। चित्रकूट की घाटी में आदिवासी शिविर लगा है। निषादराज युवजनों को समझाने की चेष्टा करते हैं, कि राम भरत के अनुयायी है अतः दोनों में भेद करने की कोई आवश्यकता नहीं। किन्तु युवक पन्द्रह दिनों के आपात्काल के समय क्रूर शासन को कैकेयी के माथे ही डालकर भविष्य को सोचनीय मानते हैं। इस पर निषाद और वाल्मीकि उन्हें समझाकर शांत कर देते हैं। मातृ शिविर में कैकेयी लोकलांछन को अपने लिए उज्ज्वल थाती मानती है। उसे यश–अपयश की परवाह नहीं उसने तो राम को रामायण के योग्य बनाने के लिए ही वन में निर्वासित होकर रहने की आज्ञा दी है। भरत सेवक हैं उनको भला राज्य से क्या मतलब। भरत अपने शिविर में चिन्तित हैं अतः सभी परमज्ञानी जनक के शिविर में जाते हैं जहाँ इस समस्या का समाधान संभव है। जनक सभी लोगों के साथ ऋषि शिविर में आते हैं। जहाँ वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, कौशिक, अत्रि, जाबाली आदि अनेक मतों के जानकार उपस्थित हैं। जब कोई मतैक्य नहीं हो पाता तो सभी मिलकर श्रीराम की शिविर की ओर चलते है जहाँ राम ध्यान में बैठे हैं। वहाँ भरत को वशिष्ठ के द्वारा यह आदेश होता है कि यह पादुका ही तुम्हारा अवलम्ब है, इसी को आधार बनाकर जीवन में धारण कर तुम रामभाव का वरण करो और वे पादुका प्राप्त कर अवध लौट आते हैं। इसमें स्रोत कथा अर्थात् वाल्मीकि रामायण से बहुत परिवर्तन किए गए हैं।

'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट' करूण रस प्रधान खण्ड काव्य है। इसमें वस्तु विधान का सर्गानुरूप नियोजन हुआ है। इसका प्रारंभ चित्रकूट में सीता, राम और सौमित्र के पधारने की कथा से होता है। इनके प्रताप से हिंस्र जानवारों में भी अपनी प्रकृति की सर्वथा त्याग कर प्रेम को धारण किया है। अतीत की स्मृतियों में चित्रकूट की पूरी कथा को कल्पनाओं के माध्यम से प्रकट की गयी है फिर अनसूया आश्रम का वर्णन आता है। इन आश्रमों में यज्ञ, हवन, सत्संग आदि दिनचर्या से जुड़े हैं। सीता राम और लक्ष्मण इसी वातावरण में समय बिता रहे हैं। चतुर्थ सर्ग में गुरू वशिष्ठ द्वारा दशरथ मरण को अनिवार्य बताते हुए अंधतापस की पूरी कथा वर्णित है। पंचम सर्ग में राघवेन्द्र कैकेयी को निर्दोष कहते हैं और हिदायत देते हैं कि कोई भी उन पर रोष न करे। वे चाहते हैं कि उपेक्षित कोल–किरातों, शबरों और निषादों की सेवा में भी वे अपने पितृ–शोक की विस्मृति का मार्ग ढूँढ़ें। फिर भरत ननिहाल से अयोध्या लौटने का वर्णन करते हैं। पष्ठ सर्ग में राम और भरत के वार्तालाप को सुमंत्र शोक विह्वल होकर सुनाते हैं। पश्चात् सुमंत्र राम को पहुँचाने के बाद अयोध्या आगमन की पूरी कथा कह डालते हैं। सातवें सर्ग में भरत के निवेदन पर विचारों का मंथन दिखाया गया है और राम उन्हें स्वयं पादुका प्रदान कर अयोध्या लौटा देते हैं। इस प्रकार कथा विधान की दृष्टि से इन काव्यों में स्रोत कथाओं में पर्याप्त परिवर्तन और परिशोधन के पश्चात् कथा के स्वरूप को गृहीत कर वर्णित किया गया है।

कथा विधान के पश्चात् चरित विधान का आयोजन हुआ है। इसमें पात्रों और चरित्र चित्रण के सम्बन्ध में मुख्य बात इतनी ही है कि यहाँ कवियों को कथा का आधार छोटा होने के कारण चरित्रों की विशेषताओं की व्याख्या करने का अवसर कम मिला है। बस पात्र के संकेत मात्र पर उनका चरित्र उजागर हुआ है। चरित्र भी अपना स्वयं विकास नहीं कर पाये हैं। चरित्रांकन के लिए कवियों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों विधियों को अपनाया है। प्रत्यक्ष विधि के अन्तर्गत, मूलतः तथ्य प्रकाशन, वर्णन और अन्य पात्रों द्वारा कथन को महत्व मिला है। इसी प्रकार परोक्ष विधि के अन्तर्गत पात्रों के अभिभाषण कार्य और अन्य पात्रों पर अंकित प्रभाव को महत्व मिला है। चरित्रांकन में कवियों ने पात्रों के अन्तर्द्वंद्व को भी महत्व दिया है। इसके अतिरिक्त संवादों के माध्यम से भी इनके भीतर के मर्म को उद्‌घाटित कराने की चेष्टा की गयी है। इसमें पुरूष और स्त्री चरित्र, मुख्य और गौण चरित्र सबकी व्यवस्था है। मुख्य पुरुष पात्रों में राम, भरत, जनक, वशिष्ठ, लक्ष्मण, सुमंत्र, वाल्मीकि आदि हैं। गौण पात्रों में निषादराज, कोल–किरात, आदिवासीजन एवं युवजन हैं। मुख्य स्त्री चरित्रों में कैकेयी, कौशल्या, सीता सुनयना आदि हैं। इन पात्रों का स्वरूप एक सिद्धान्त संस्कार के भीतर वर्णित है कि वे सभी राम के समान आचरण करें, रावण के समान नहीं। इसके अतिरिक्त विवेच्य ग्रंथों का कथा विस्तार पात्रों के समग्र जीवन से सम्बद्ध न होकर खण्ड विशेष तक सीमित है। अतः उनके गुण और शील स्वभाव की विशेषताओं को समग्र परिप्रेक्ष्य में न देखकर सीमित परिप्रेक्ष्य में ही विवेचित किया गया है।

लक्ष्मीकांत वर्मा रचित 'चित्रकूट' चरित, में श्रीराम नर और नारायण दोनों रूपों में अंकित हुए हैं। वे एक साथ ब्रह्म रूप में पूरी सृष्टि में रमे हुए हैं, विश्वमय हैं तो वे जन जन में, दीन दुखियों में, अवलम्बहीनों में भी अन्तर्भूत हैं। राम की लोकप्रियता सर्वत्र सुरक्षित है। पुरूष पात्रों के चरित्रांकन में युगानुकूल परिवर्तन लक्षित होते हैं। आदिवासियों के मन में वशिष्ठ का चरित्र कूटनीतिक का लगता है। चित्रकूट चरित में मुख्य स्त्री पात्र कैकेयी यह स्पष्ट कहती है कि उसने जो भी किया है वह राम के हित के लिए ही। भरत तो मात्र माध्यम बने। कैकेयी का चरित्रांकन कर्म की प्रतिमा के रूप में हुआ है। उनमें सहज मातृत्व के गुण भी हैं। पर वह कर्त्तव्य के लिए ममत्व का बलिदान करती है। भले ही इसके लिए उसे लोक लांछन ही क्यों न सहना पड़े। इन काव्य ग्रंथों में मूल रामकथा की प्रासंगिक कथा को ही मुख्य कथा के रूप में स्वीकृत किया गया है। इसमें प्रमुख पात्रों की संख्या स्रोत कथाओं के सामान ही है। परन्तु गौण पात्रों की संख्या में विशेष वृद्धि हुई है। युगीन प्रभाव के कारण पर्याप्त परिवर्तन और परिवर्द्धन को कवियों ने स्वीकार किया है। कवियों ने अपनी कल्पनाशीलता का भी सहारा लिया है और सृजनकाल की युगीनता को निर्मित कृतियों में प्रतिव्यक्त किया है।

परिवेश, प्रतिबिम्बन एवं विचारधारा के क्रम में इन कृतियों में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक परिवेश का प्रामुख्य के साथ वर्णन हुआ है। चित्रकूट में सम्बन्धित सभी कृतियों में तीन भिन्न–भिन्न समाज के लोगों का समागम हुआ है– अयोध्या का राज समाज, मिथिला नरेश जनक का समाज तथा चित्रकूट के वन प्रान्तर में निवास करने वाले अर्द्धसभ्य कोल–भील आदि जनजातियों का

समाज। इससे अधिक समाज के प्रतिनिधित्व का अवसर भी यहाँ नहीं था। अयोध्या के सामाजिक परिवेश को विस्तार देना यहाँ अनावश्यक लगता। क्योंकि मिथिला और अयोध्या का समाज नैतिकता की दृष्टि से राम के स्नेह से वशीभूत होकर वहाँ एकत्र हुआ है। सामाजिक सम्बन्धों की मर्यादा के रक्षा के प्रति यह दोनों समाज संकल्पबद्ध है। इसी से सामाजिक रीति–नीति एवं संस्कारों की इन कृतियों में सजीव अंकन हुआ है। श्रीराम, लक्ष्मण और वैदेही के 'रामचरितमानस' में भी वार्ता क्रम में अयोध्या और जनकपुर चित्रकूट के संदर्भो से बार–बार जुट जाता है। इस समाज में शकुन–अपशकुन की चर्चा है। भरत और राम के स्नेह के अतिरिक्त उनका दशरथ के प्रति श्रद्धा भाव भी वर्णित है। अयोध्या और जनकपुर के सभी संस्कार समाज के परिवेश में घुले हुए नैतिकता और मर्यादा की रक्षा करने में समर्थ हैं। श्रीराम का संकल्प हिलता नहीं। वे यदि घर से निकल ही गये तो दीन–दलितों के दुःख का निवारण कर ही वापस लौटेंगे। वे माँ कैकेयी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं कि उनकी कृपा से ही जनता रूप जनार्दन का साक्षात्कार उन्हें हो सका है। दुर्दान्त दैत्यों के अनाचार अत्याचार की काली छाया को वे घूम–घूमकर निस्तेज करेंगे। उनके कथन में सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति, निरक्षरता के विरूद्ध साक्षरता का प्रसार, कुपोषित नौनिहालों के प्रति दृष्टि तथा निर्धन ग्रामीणों के लिए चिकित्सीय सहायता की व्यवस्था आदि की प्राथमिकता झलकती है। उपेक्षित कोल–किरातों, शबरों और निषादों की सेवा में ही वे पितृ शोक की विस्मृति का मार्ग ढूँढ़ लेने की बात करते हैं। चित्रकूटवासियों के समाज में भावुकता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य भरपूर है। वहाँ की दिनचर्या आश्रमों में व्यतीत होनेवाले यज्ञ, हवन सत्संग, महिमा तथा सेवा से युक्त है। चित्रकूट के कोल–किरात इन तीनों मूर्तियों की सेवा पूरी निष्ठा से करते हैं। वे उनके भोजन, भजन, भ्रमण, के साथ अयोध्यावासियों के लिए भी सबकी व्यवस्था करते हैं।

'चित्रकूट–प्रसंग' का मूल कारण राजनीतिक है, क्योंकि उसमें दशरथ एवं कैकेयी की मानवीय दुर्बलताएँ राजनीतिक नियमों का अतिक्रमण करतीं हैं। ज्येष्ठ पुत्र को राजनीति के अनुसार राज्याधिकार मिलना चाहिए, किन्तु उसके स्थान पर उसका वन्य निर्वासन दशरथ की मृत्यु का कारण बनता है। चित्रकूट की सभा में राजनीतिक परिवेश पर धर्मानुशासन का वर्चस्व स्थापित हो जाता है, तथा राज्य और राजनीतिक नियमों को वहाँ हेय दृष्टि से देखा गया है। भरत राज्य को अनर्थ का कारण मानते हैं। सभी कृतियों में राजनीतिक समस्या का समाधान राम के द्वारा भरत को चरण पादुका देने और चौदह वर्ष की अवधि तक भरत द्वारा अयोध्या का शासन करने में समाधान पा लेता है। अतः विवेच्य समस्त कृतियों में प्रतिबिम्बित राजनीतिक परिवेश राजनीति पर धर्म के अनुशासन से रागात्मक हो जाता है। 'चित्रकूट चरित' में युवा पीढ़ी के माध्यम से विद्रोह तथा प्रजातांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के विचारों को भी अनुस्यूत किया गया। किन्तु मुख्यतः मूल एवं ख्यात रामकथा का राजनीतिक परिवेश द्वारा सिद्धान्त रूप में विवेच्य कृतियों में रूपान्तरण हुआ है।

आध्यात्मिक परिवेश के विवेचन में सभी कृतियाँ अपनी मूल चेतना में प्राण तत्त्व के रूप में धर्म एवं अध्यात्म को समाहित किए हुए हैं। राम भले ही नर–लीला कर रहे हों, किन्तु उनमें परात्पर ब्रह्म की झाँकी

सभी कृतियों में प्रतिबिम्बत हुई है। चित्रकूट की पवित्र पुण्यस्थली में आश्रमों की संस्कृति समस्त अध्यात्म की झाँकी प्रस्तुत करती है। धर्म की ज्योति उपासना एवं कर्मकाण्ड का धार्मिक वातावरण वहाँ सर्वत्र व्याप्त है। त्रिवेदी कृत 'चित्रकूट' काव्य में प्राणायाम, ध्यान, वेद–पाठ और कर्मकाण्ड सब कुछ एक साथ वहाँ दिखाया गया है। अहिंसा वृत्ति मनुष्य क्या जीव–जन्तुओं तक में व्याप्त है। सेवा भावना और परोपकार चित्रकूट वासियों की धमनियों में और शिराओं में प्रवाहित होता है। इन अध्ययनीय कृतियों में आध्यात्मिक परिवेश नैसर्गिक रूप से वर्णित हुआ है। अध्यात्म चिन्तन में मूलतः आत्मा–परमात्मा जीव जगत्, कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग तथा जन्म–जन्मांतर के हेतु रूप पाप–पुण्यों का विवेचन किया जाता है। मूल एवं ख्यात प्रसंगों में राम को परात्पर ब्रह्म निरूपित करते हुए उनकी नर–लीला का भी समानान्तर वर्णन हुआ है। इन कृतियों में भी औपनिषदक पद्धति पर आत्मा की अमरता का वर्णन हुआ है। जगत् के अस्तित्त्व सम्बन्धी चिन्तन पर विचारकों में मतभेद है किन्तु ख्यात प्रसंगों के अनुरूप ही इसका आध्यात्मिक परिवेश वर्णित हुआ है।

काव्य सौन्दर्य के विवेचन की दृष्टि से रामकथा को सानुबद्ध रीति से वर्णित करने वाले पारम्परित महाकाव्यों से ये कृतियाँ किंचित् भिन्न हैं। कोई लम्बी कविता है अर्थात् कथा काव्य, कोई करूण रस प्रधान खण्डकाव्य है, कोई शिविरों में नियोजित खण्ड काव्य है। फिर भी इनमें मानवीय संवेदना तथा हृदयस्पर्शी शैली के संयोग से काव्य शास्त्रीय तत्त्वों का भी सन्निवेश मिलता है। भक्ति परक दृष्टिकोण से देखने पर इन कृतियों में भक्ति रस की प्रधानता लक्षित होती है। शास्त्री कृत चित्रकूट का अंगीरस 'करूण' है और श्रेष्ठ कृतियों का अंगीरस 'शांत' है। यद्यपि प्रसंग वश उसमें श्रृंगार, हास्य तथा अद्‌भुत वीर रस के उदाहरण भी मिलते हैं। विवेच्य कृतियों की भाषा खड़ी बोली हिन्दी है और इनमें मुहावरे, कहावतों तथा सूक्तियों के सटीक प्रयोग मिलते हैं। भावों एवं घटनाओं को प्रकृति के सापेक्ष वर्णन क्रम में सादृश्यमूलक अंलकारों के प्रयोग की भी प्रवृत्ति यहाँ मिलती है। छन्दों में विशेष रूप से वीर छन्द का प्रयोग किया गया है, किन्तु शास्त्री जी ने कई वर्णिक एवं मात्रिक छन्दों के साथ करूण रस से संपृक्त गीतों की भी योजना की है। इस प्रकार प्रायः सभी कृतियाँ काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से आकर्षक हैं। 'चित्रकूट चरित' तो मुक्त छन्द में रचित है पर शेष कृतियाँ छन्दोबद्ध हैं। इन सभी में प्रसाद गुण सम्पन्नता और भाषा में पूर्ण प्रवाहमयता देखी जा सकती है। कुल मिलाकर 'चित्रकूट' संज्ञक कृतियों की मूल चेतना भक्ति है। तथापि वैयक्तिक रागात्मकता एवं संवेदना से भी ये कृतियाँ भरी हैं। इनमें एक ओर पारम्परीण जीवन एवं काव्य मूल्यों की रक्षा का प्रयत्न है तो दूसरी ओर उनमें आधुनिक चिन्तन का पुट और युगीन साहित्य परिवर्तन के लक्षण भी दिखाई पड़ते हैं।

समासतः ये कृतियाँ अपने काव्य सौन्दर्य और साहित्यिक महत्त्व के लिए इतिहास में अपना पृथक् स्थान बनाती हैं। इस शोधकार्य द्वारा 'वाल्मीकि रामायण' से लेकर आधुनिक काल के आठवें दशक की हिन्दी कविता में 'चित्रकूट' पर लिखे गये काव्यों, कविताओं और फुटकल संदर्भों की विवेचना की गई है। इसमें परम्परा और संस्कृति के तत्त्वों को खोजने का प्रयास किया गया है और इन काव्यों की विवेचना के क्रम में स्रोत ग्रंथ वाल्मीकि 'रामायण' और 'रामचरितमानस' से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

जहाँ–जहाँ आधुनिकता प्रखर हुई है, वहाँ–वहाँ पारम्परिक सूत्रों से जोड़कर उसकी नव्यता के मार्ग को भी आलोकित किया गया है। कवियों की पृथक्–पृथक् संवेदना एक ही घटना प्रसंगों पर किस प्रकार व्यक्त हुई है उन्हें रेखांकित किया गया है। हमारे सामाजिक समादर्श किस प्रकार मानवतावाद और नये मानव मूल्यों में ढले हैं, उनका प्रतिगामी स्वरूप भी वर्णित है। इन चित्रकूट संज्ञक काव्य के रचयिताओं द्वारा पाठकों के मन में प्रेम, करूणा से संपृक्त सामाजिक आदर्शों की अर्गला को नये ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। हमारे राम इनमें कहीं धुँधले नहीं पड़े हैं बल्कि उनका तात्त्विक और मार्मिक रूप प्रकट हुआ है। उपेक्षित पात्रों को सही ढ़ंग से सांत्वना मिली है। ये काव्य आधुनिक युग की अमूल्य निधि हैं।

****

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम	:	अनुराधा कुमारी
शिक्षा	:	एम.ए.
विभाग	:	हिन्दी
शोध–प्रबन्ध का शीर्षक	:	"आधुनिक हिन्दी साहित्य के 'चित्रकूट संज्ञक' काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन"
प्रवेश शुल्क के भुगतान की तिथि	:	01.05.2002
शोध प्रस्ताव की संस्तुति	:	
(क) बी.पी.जी.एस.	:	24.04.2002
(ख) स्कूल बोर्ड पंजीयन संख्या एवं तिथि	:	632, 2.5.2002

HU LIBRARY
Acc No.........................
Acc By... ....
Date.............................
Class by.........................
Sub Heading by.................

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग

आधुनिक हिन्दी साहित्य के 'चित्रकूट संज्ञक' काव्यों का
तुलनात्मक अध्ययन

अनुसंधित्सु
अनुराधा कुमारी

हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग – 793022
मेघालय

2009

आधुनिक हिन्दी साहित्य के 'चित्रकूट संज्ञक' काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन

शोध निर्देशक

डॉ. दिनेश कुमार चौबे
उपाचार्य
हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग–22
मेघालय

अनुसंधित्सु
अनुराधा कुमारी

NORTH-EASTERN HILL UNIVERSITY LIBRARY
Date.........

हिन्दी विभाग
द्वारा

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग–22 मेघालय के हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलासफी के लिए अपेक्षित आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रस्तुत

JNU LIBRARY
Acc No. 103953
Acc P.N
Date 19/4/10
Class No.
Sub.Heading

<u>घोषणा</u>

मैं अनुराधा कुमारी एतद्द्वारा घोषित करती हूँ कि इस शोध–प्रबन्ध की विषय–सामग्री मेरे द्वारा किये गये कार्यों का परिणाम है। इस शोध सामग्री के आधार पर न तो मुझे और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी अन्य को पहले उपाधि प्रदान की गयी है और न ही यह शोध–प्रबन्ध मेरे द्वारा कोई अन्य शोध उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय/संस्थान में प्रस्तुत किया गया है।

इसे पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के सम्मुख हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

30.4.09   30.4.09

अध्यक्ष   **निर्देशक**   **अनुसंधित्सु**

अध्यक्ष Head
हिन्दी विभाग Hindi Deptt
पू.प.वि.वि. शिलांग-22
N... Shillong-22

अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ सं.
	प्राक्कथन	I - IV
प्रथम	**विषय प्रतिपादन**	**1 – 13**
1.1.क.	शोध विषय	2
1.1.ख.	शोध सामग्री	2
1.1.ग.	शोध की आवश्यकता	3
1.1.घ.	शोध पद्धति	5
1.2.	चित्रकूट संज्ञक कृतियों का सामान्य परिचय	5
1.2 क.	विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'	8
1.2.ख.	रामानन्द त्रिवेदी शास्त्री रचित 'चित्रकूट'	9
1.2.ग.	मोहनलाल गुप्त 'चातक' रचित 'चित्रकूट'	10
1.2.घ.	रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट	11
1.2.ङ.	लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'	11
	संदर्भ तालिका	13
द्वितीय	**वस्तु–विधान**	**14 – 78**
2.	उपक्रम	14
2.क.	विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'	14
2.क.i	प्रथम छवि	15
2.क.ii	द्वितीय छवि	15
2.क. iii	तृतीय छवि	16
2.क.IV	चतुर्थ छवि	18
2.क.V	पंचम छवि	19
	परिवर्तन–परिवर्द्धन	20

2.ख.	रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत चित्रकूट	22
2.ख.I	प्रथम सर्ग	22
2.ख.ii.	द्वितीय सर्ग	25
2.ख.iii	तृतीय सर्ग	28
2.ख.iv	चतुर्थ सर्ग	31
2.ख.V	पंचम सर्ग	33
2.ख.vi.	षष्ठ सर्ग	36
2.ख.vii	सप्तम सर्ग	39
2.ग.	मोहनलाल गुप्त कृत 'चित्रकूट'	42
	परिवर्तन–परिवर्द्धन	51
2.घ.	रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'	52
2.घ.i.	प्रथम सर्ग	52
2.घ.ii.	द्वितीय सर्ग	54
2.घ.iii.	तृतीय सर्ग	56
2.घ.IV.	चतुर्थ सर्ग	58
2.घ.v.	पंचम सर्ग	62
2.ङ.	लक्ष्मीकांत वर्मा कृत चित्रकूट चरित	64
2.ङ.i.	आदिवासी शिविर	64
2.ङ.ii.	मातृ शिविर	67
2.ङ.iii.	भरत शिविर	69
2.ङ.iv.	जनक शिविर	71
2.ङ.v.	ऋषि शिविर	72
2.ङ.VI.	श्री राम शिविर	74
	परिवर्तन परिवर्द्धन	76
	संदर्भ तालिका	78
तृतीय	**चरित्र विधान**	**79 – 141**
3.क.	विद्याभूषण 'विभु' कृत चित्रकुट चित्रण	80
3.ख.	रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट'	83

3.ख. i.	प्रमुख पुरुष पात्र	83 – 88
3.ख.	पुरूष गौण पात्र	88
3.ख.।।	प्रमुख स्त्री पात्र	88 – 99
3.ख.।।	स्त्री गौण पात्र	92 – 93
3.ग.	मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत 'चित्रकूट'	93
3.ग.i.	प्रमुख पुरूष पात्र	93 – 101
3.ग.।।	प्रमुख स्त्री पात्र	101 – 103
3.घ.	रामेश्वर दयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'	103
3.घ.।	प्रमुख पुरुष पात्र	104 – 109
3.घ.।।	प्रमुख स्त्री पात्र	109 – 112
3.घ.।।	गौण स्त्री पात्र	112 – 114
3.ड.	लक्ष्मीकान्त वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'	114
3.ड.।.	प्रमुख पुरूष पात्र	114 – 123
3.ड.।.	गौण पुरूष पा.त्र	123 – 130
3.ड.।।.	प्रमुख्य स्त्री पात्र	130 – 136
	गौण स्त्री पात्र	136 – 139
	निष्कर्ष	139
	संदर्भ तालिका	141
चतुर्थ	**परिवेश–प्रतिबिम्बन एवं विचारधारा**	**142 – 190**
4.1	सामाजिक परिवेश का प्रतिबिम्बन	142
4.1.क	विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'	145
4.1.ख.	रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट	146
4.1.ग.	मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत 'चित्रकूट'	150
4.1.घ	रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'	153
4.1.ड	लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'	157
	निष्कर्ष	158
	साम्य एवं वैषम्य	159
4.2	विवेच्य कृतियों में वर्णित राजनीतिक परिवेश	161

4.2.क.	विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण	161
4.2.ख.	रामनन्द शास्त्री कृत 'चित्रकूट'	162
4.2.ग.	मोहनलाल गुप्त कृत 'चित्रकूट'	164
4.2.घ.	रामेश्वर दयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'	165
4.2.ड	लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित	167
4.1	धार्मिक एवं आध्यात्मिक परिवेश का प्रतिबिम्बन	174
4.3.क.	विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'	178
4.3.ख.	रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट'	178
4.3.ग .	मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत 'चित्रकूट	180
4.3.घ .	रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'	181
4.3.ड.	लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'	184
	निष्कर्ष	188
	संदर्भ तालिका	190
पंचम	**काव्य सौन्दर्य**	**192 – 243**
5.1क	काव्य सौन्दर्य के आधार पर 'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों का विवेचन	192
5.1.क.	'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों के कला पक्ष का विवेचन	193
5.1.क.1.	विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'	194
5.1.क.1.अ	संवाद योजना	194
5.1.क.1.आ.	शब्द भण्डार	194
5.1.क.1.इ:	लोकोक्तियाँ/मुहावरे	195
5.1.क.2	रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट	196
5.1.क.2.अ.	संवाद	196
5.1.क.2.आ.	शब्द भण्डार	196
5.1.क.2.इ.	मुहावरे	197
5.1.क.3.	मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत चित्रकूट	197
5.1.क.3.अ.	संवाद	197

5.1.क.3.आ	शब्द भण्डार	197
5.1.क.3.इ.	लोकोक्तियाँ/मुहावरे	198
5.1.क.4.	रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'	198
5.1.क.4.अ.	संवाद	198
5.1.क.4.आ.	शब्द भण्डार	199
5.1.क.4.इ.	लोकोक्तियाँ/मुहावरे	199
5.1.क.5.	लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'	200
5.1.क.5.अ.	संवाद	201
5.1.क.5.आ.	शब्द भण्डार	201
5.1.क.5.इ.	मुहावरे/लोकोक्तियाँ	202
5.1.ख.	'चित्रकूट' संज्ञक काव्य की छन्द योजना	203
5.1.ख.1.	विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण	204
5.1.ख.2.	रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट	204
5.1.ख.3.	मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत चित्रकूट'	206
5.1.ख.4.	रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'	206
5.1.ख.5.	लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'	207
5.1.ग.	चित्रकूट काव्यों में अलंकार विधान	208
5.1.ग.1.	विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'	209
5.1.ग.2.	रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट'	210
5.1.ग.3.	मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत चित्रकूट'	212
5.1.ग.4.	रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'	213
5.1.ग.5.	लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'	215
5.2	'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों के भाव पक्ष का विवेचन	215
5.2.क.	प्रकृति चित्रण	215
5.2.क.1.	विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'	216
5.2.क.2.	रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट'	217
5.2.क.3.	मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत चित्रकूट'	217
5.2.क.4.	रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'	218

5.2.क.5.	लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'	218
5.2.ख.	चित्रकूट' संज्ञक काव्यों में रस का विवेचन	221
5.2.ख.1.	विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'	222
5.2.ख.	रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट	223
5.2.ख.3.	मोहनलाल गुप्त 'चातक' चित्रकूट	224
5.2.ख.4.	रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'	226
5.2.क.5.	लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'	227
	निष्कर्ष	230
	संदर्भ तालिका	232
	उपसंहार	242 – 251
	संदर्भ तालिका	252
	संकेताक्षर विवरणिका	253
	परिशिष्ट	254 – 258

*****

प्राक्कथन

रामकथा के उद्भव, विकास और इतिहास के संदर्भ में यह तथ्य निर्विवाद है आदिकवि वाल्मीकि कृत रामायण ही समस्त रामकथा की स्रोतस्विनी है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में रामकथा की व्यापकता अद्वितीय है। ज्ञातव्य है कि प्रायः सभी भाषाओं के प्रथम महाकाव्य का विषय रामकथा ही है। रामकथा विषयक आधुनिक हिन्दी काव्यों में जिन विशिष्ट प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं वे हैं– राम के सम्पूर्ण जीवन के चित्रण के स्थान पर उनके जीवन से सम्बद्ध किसी गुण अथवा घटना विशेष को वर्ण्य विषय बनाना, उनकी युग–युग से चली आ रही रामकथा में उपेक्षित पात्रों के युगानुरूप प्रश्नों के साथ चित्रित कर उनके साथ न्याय करना तथा राम की लीला स्थली में से किसी स्थल विशेष का चयन कर उससे सम्बद्ध पारम्परीण मान्यताओं के कुछ स्वीकरण, कुछ अस्वीकारण की प्रक्रिया से गुजरते हुए उसमें वैयक्तिक रागात्मकता के रंग भरना आदि। रामकथा से सम्बद्ध स्थलों में 'चित्रकूट' का विशेष महत्त्व है।

प्रारम्भिक दिनों में शोध सामग्री की खोज करने पर यह स्पष्ट हुआ कि इस विषय को साहित्य में अधिक महत्त्व प्राप्त नहीं है। हिन्दी साहित्य के रामाख्यानम काव्य–ग्रंथों का स्वतंत्र एवं तुलनात्मक अध्ययन जितनी प्रभूत संख्या में हुआ है हिन्दी शोध जगत की उपलब्धि है। किन्तु फिर भी अध्येताओं एवं शोधकर्ताओं द्वारा इससे पहले आधुनिक हिन्दी साहित्य के 'चित्रकूट' संज्ञक पर अब तक कोई स्वतंत्र शोध–कार्य नहीं हुआ है। तत्पश्चात् जब मेरे शोध निर्देशक द्वारा मुझे 'चित्रकूट' संज्ञक काव्य कृतियों की उपलब्धता की जानकारी मिली तो शोध की आवश्यकता और उसका स्वरूप स्पष्ट हो पाया। मुझे विश्वास है कि मेरे इस लघु प्रयास के द्वारा उन स्थितियों तथा उद्देश्यों का भी आकलन हो जायेगा जिनके कारण कृतियों की रचनाधर्मिता में प्रवृत्त कवि आकृष्ट होकर पुकार उठा है–

भावुक मन को चित्रकूट यह युग–युग तक खींचेगा।
इसके लिए तृषित कण्ठों को मधु रस से सींचेगा।।

(चित्रकूट, रामेश्वरदयाल दुबे)

इस शोध कार्य से अनेक नवीन तथ्य भी प्रत्यक्ष हो सकेंगे जो अद्यावधि अज्ञात अथवा अल्पज्ञात है। इस अध्याय में रामकथा के परम्परागत कथा–संघटन, पात्रों, घटनाओं, समस्याओं, जीवन मूल्यों एवं काव्य मानदण्डों का आधुनिक युग के संदर्भ में विवेचन करने का मेरा यह विनीत प्रयास है।

शोध–प्रबन्ध के विभिन्न अध्यायों में निरूपित सामग्री का संक्षिप्त वर्णन करना मैं अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझती हूँ। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को छह अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में विषय प्रतिपादन के अर्न्तगत शोध–विषय, शोध–सामग्री, शोध की आवश्यकता, शोध–पद्धति इत्यादि को आधुनिक हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में विवेचित किया गया है। इसी अध्याय में 'चित्रकूट' संज्ञक कृतियों का सामान्य परिचय सूचनात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है।

शोध–प्रबंध का द्वितीय अध्याय वस्तु–विधान है, जिसमें विवेच्य कृतियों की कथावस्तु पर विचार किया गया है तथा इन कृतियों को वाल्मीकि रामायण और गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरितमानस के चित्रकूट प्रसंग से भिन्नता अर्थात् उसमें कल्पना के योग पर विवेचन किया गया है।

शोध–प्रबन्ध का तृतीय अध्याय 'चरित–विधान' का है, जिसमें 'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों के प्रमुख पात्रों के चरित्रांकन एवं उनकी विशिष्टताओं को मूल एवं ख्यात कथा के पात्रों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है।

खण्ड काव्यों तथा महाकाव्यों का प्रणयन परिवेश प्रतिबिम्बन के बिना कैसे संभव है? लगभग सभी कवियों ने अपने रामकथा विषयक ज्ञान, सृजनशीलता, भाषा, शैली, काव्य सौन्दर्य एवं कल्पना शक्ति का परिचय देते हुए रामायणकालीन परिवेश का बड़ा ही मनोहारी चित्रण किया है। शोध–प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय 'परिवेश प्रतिबिम्बन एवं विचारधारा' में 'चित्रकूट' संज्ञक कृतियों में वर्णित सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक परिवेशों का विस्तृत विवेचन का प्रयास किया गया है। परिवेश प्रतिबिम्बन के अतिरिक्त इन विचारधाराओं को मूल एवं ख्यात रामकथा के संदर्भ में तुलनात्मक रीति से प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया गया है।

शोध–प्रबन्ध के पंचम अध्याय में काव्य के सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने वाले उपादानों यथा कलापक्ष एवं भावपक्ष के अर्न्तगत आनेवाले विभिन्न अवयवों जैसे– रस, अलंकार, छन्द, भाषा एवं प्राकृतिक परिवेशों का विवेचन किया गया है।

शोध–प्रबन्ध का षष्ठ अध्याय उपसंहार है इस अध्याय में शोध कार्य से निष्कर्षों एवं शोध कार्य की उपलब्धियों का एकत्र आकलन किया गया है।

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में पी–एच.डी. की उपाधि हेतु मैं अपना शोध–प्रबन्ध आचार्यों, अधिकारियों तथा विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत कर रही हूँ। इस शोध–प्रबन्ध में मेरी

असीम त्रुटियों के लिए मैं स्वयं उत्तरदायी हूँ । इस शोध कार्य में मुझे विद्वानों एवं रामकथा मर्मज्ञ मनीषियों का सहयोग प्राप्त हुआ। उनके प्रति आभार ज्ञापन करना मेरा महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है।

सर्वप्रथम, मैं अपने शोध निर्देशक परम आदरणीय डॉ. दिनेश कुमार चौबे, उपाचार्य, हिन्दी विभाग की बहुत आभारी हूँ जिन्होने मुझे समय–समय पर सम्यक मार्गदर्शन प्रदान किया एवं घोर निराशापूर्ण क्षणों में मेरा उत्साहवर्धन करते रहे। अपना अमूल्य समय देकर मुझे विषय को समझाने, व्याख्यायित करने, जटिल गुत्थियों को सुलझाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान की है। वास्तविकता तो यह है कि बिना उनके सहयोग के यह शोध–प्रबन्ध संभवतः पूर्ण न हो पाता। उनके प्रति आभार व्यक्त करना एक औपचारिकता मात्र ही होगी। शोध कार्य के विभिन्न चरणों में जब भी मेरा मनोबल क्षीण हुआ तो आपने अपने गरिमामय ओजस्वी वाणी से मेरा उत्साहवर्धन किया। वस्तुतः आप ही वह व्यक्ति हैं, जिनके ओजस्वितापूर्ण संभाषण, विद्वतापूर्ण मार्गदर्शन, सबल संरक्षण एवं गरिमापूर्ण सानिध्य में मेरा शोध ग्रंथ पूर्ण हो सका है।

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के श्रद्धेय आचार्य विवेक कुमार श्रीवास्तव, डॉ.सुशील शर्मा, डॉ. माधवेन्द्र पाण्डेय, श्री भरत त्रिपाठी एवं श्री सुरेन्द्र पाठक ने सहर्ष विभागीय सुविधाएँ प्रदान कीं और समय–समय पर अपने अमूल्य सुझाव देकर उपकृत किया। मैं इन सब के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ।

इस शोध कार्य में मैंने विभिन्न विद्वानों एवं मनीषियों का सहयोग प्राप्त किया है इनमें श्री रामेश्वरदयाल दुबे, लखनऊ, श्री मोहन कोईराला, ब्रह्मपुत्र बोर्ड, गुवाहाटी, श्री बटुकनाथ पाण्डेय, प्रवक्ता, डिगबोई कॉलेज, डिगबोई, श्री महेन्द्र भराली बरूवा, प्रिंसिपल, डिगबोई कॉलेज, डिगबोई, डॉ. प्रीति श्रीवास्तव, डॉ. प्रदीप कुमार भारती,प्रवक्ता, डिगबोई कॉलेज, डिगबोई, डॉ. जगन्नाथ शर्मा 'हंस',दिल्ली, उल्लेखनीय हैं। इनके अमूल्य सहयोग, मार्गदर्शन, सुझाव तथा आलोचनाओं के द्वारा मेरे शोध ग्रंथ का परिमार्जन किया गया, जिसके लिए मैं इन सभी के प्रति कृतज्ञ हूँ।

शोध सामग्री का संग्रह मेरे लिए अत्यन्त कठिन कार्य था। इस प्रयास में मुझे विभिन्न विश्वविद्यालयों के मुख्य तथा विभागीय पुस्तकालयों यथा पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, स्टेट सेन्टर लाइब्रेरी, शिलांग, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान की लाइब्रेरी, शिलांग, डिस्ट्रिक्ट लाइब्रेरी, जोरहाट, डी.सी.बी. गर्ल्स कॉलेज जोरहाट की लाइब्रेरी, डिगबोइ कॉलेज की लाइब्रेरी आदि उल्लेखनीय हैं। मैं इन संस्थाओं के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

इस शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने में जिन ज्ञात–अज्ञात विद्वानों एवं प्रकाशकों के सुझावों एवं कृतियों से मुझे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहायता मिली है उन सबके प्रति मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ।

इस शोध–प्रबन्ध को पूरा करने में पारिवारिक सहयोग तो मुझे मिला ही है, अन्यथा अध्यापन तथा पारिवारिक दायित्व के निर्वाह के साथ यह शोध कार्य इस रूप को न प्राप्त कर पाता। किन्तु यहाँ धन्यवाद मात्र औपचारिकता होगी, क्योंकि मैं मानती हूँ कि वह मेरा अधिकार था। फिर भी मैं अपने माता, पिता, छोटी बहन स्वाती, भाई शैलेश, राकेश, रितेश, पति श्री मनोज कुमार साहु, अपनी पाँच वर्षीय बेटी श्रुतिका एवं सास, ससुर को इस अवसर पर स्मरण करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझती हूँ जिनके कारण मेरा पी–एच.डी करने का चिरसंचित स्वप्न साकार तथा मूर्तरूप पा सका।

शोध कार्य के परिणामों को स्वच्छतापूर्वक, समयानुसार टंकित कर श्री राजीव भागवती जी ने मेरा बहुत उपकार किया है, मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देती हूँ ।

ज्ञात–अज्ञात रूप से जिनसे भी मुझे किसी प्रकार का स्नेह–सहयोग मिला है, मैं उन सभी के प्रति आभार प्रकट करती हूँ ।

मैं इस शोध–प्रबन्ध को साहित्य–मनीषियों और विद्वानों के समक्ष मूल्यांकन हेतु अत्यन्त विनम्र भाव से प्रस्तुत करती हूँ ।

दिनांकः

स्थानः शिलांग, मेघालय

(अनुराधा कुमारी)

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

विषय प्रतिपादन

आदिकवि वाल्मीकि रचित 'रामायण' के आधार पर ही विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा से सम्बद्ध रचनाएँ निरन्तर लिखी जा रही हैं । हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में रचित गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' सांस्कृतिक चेतना तथा काव्योत्कर्ष की दृष्टि से अप्रतिम है । रामाख्यानक रचनाओं के विकासात्मक अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि युगानुकूल मान्यताओं, परिवेश, एवं रचनाकारों की वैयक्तिक अनुभूति एवं कल्पना ने राम के 'अनन्त गुण' एवं 'रामकथा के विस्तार की अनन्तता' को सम्भाव्य बनाया है ।

शोध –प्रविधि के सिद्धान्तों के आधार पर शोध –प्रबंध को छह अध्यायों में प्रस्तुत किया गया है। प्रथम अध्याय को दो भागों में विभक्त किया गया है इस अध्याय के प्रथम चरण के अन्तर्गत मैंने शोध – विषय, शोध –सामग्री, शोध की आवश्यकता तथा शोध –पद्धति पर विचार किया है। जबकि इस के दूसरे चरण में 'चित्रकूट' संज्ञक कृतियों का सामान्य परिचय सूचनात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। इसके अर्न्तगत मुख्यत कृतियों के रचनाकाल का उल्लेख करते हुए उसके कलेवर को रेखांकित किया है तथा कृतिकार द्वारा कृति के समपर्ण, निवेदन, प्रस्तावना इत्यादि को आधार बनाकर व्याख्यायित किया गया है । द्वितीय अध्याय में कथावस्तु–योजना का यथोचित परीक्षण किया गया है । इस अध्याय में विशेषकर मूल प्रसंग से भिन्नता तथा उसमें कल्पना के योग पर भी विवेचन किया गया है। तृतीय अध्याय में 'चित्रकूट–संज्ञक' काव्यों के प्रमुख पात्रों एवं उनके चरित्र विधान पर प्रकाश डाला गया है, पात्रों के चरित्रांकन के वैशिष्टय के साथ मूल एवं ख्यात कथा के पात्रों की चारित्रिक भिन्नता को भी प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ अध्याय परिवेश –प्रतिबिम्बन एवं विचारधारा से सम्बद्ध है, जिसके अंतर्गत इस अध्याय को तीन उपखण्डों में विभाजित किया गया है। प्रथम खण्ड में 'चित्रकूट' संज्ञक कृतियों में वर्णित सामाजिक परिवेश के प्रतिबिम्बन, मूल–प्रसंग से साम्य अथवा वैषम्य का प्रदर्शन, दूसरे खण्ड के अंतर्गत राजनीतिक परिवेश का उल्लेख और तृतीय खण्ड में धर्मिक, आध्यात्मिक परिवेश का प्रतिबिम्बन की प्रस्तुति है एवं मूल प्रसंगों से तुलना करते हुए उसकी विशेषताओं को रेखांकित किया गया है । पंचम अध्याय में 'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों के काव्य–सौन्दर्य का परीक्षण व विश्लेषण किया गया है । जिसमें रस, छन्द, अलंकार, शैली एवं भाषा की विवेचना की गई है । इसमें मूल एवं प्रचलित रामकथा का आधुनिक अभिनव शिल्प मे प्रस्तुतिकरण से साम्य–वैषम्य निरीक्षण प्रणाली से किया गया है । षष्ठ अध्याय उपसंहार का है जिसके अंतर्गत शोध –कार्य

से प्राप्त निष्कर्षों एवं शोध –कार्य की उपलब्धियों का आकलन है। परिशिष्ट के अंतर्गत आधार–ग्रंथ सूची, सन्दर्भ–साहित्य–तालिका और संकेताक्षर विवरणिका है ।

1.1.क. शोध विषय –

मेरा शोध –विषय "आधुनिक हिन्दी साहित्य के 'चित्रकूट–संज्ञक' काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन" है । इसमें 'चित्रकूट–संज्ञक' काव्यों को केन्द्र में रखकर उनका परीक्षण, विवेचन, विश्लेषण तथा तुलना करना उद्देश्य है । रामकथा विषयक आधुनिक हिंदी काव्यों में जिन विशिष्ट प्रवृतियों के दर्शन होते हैं, वे राम के जीवन के चित्रण के स्थान पर उनका वर्ण्य विषय है । युग–युगांतर से चली आयी रामकथा में उपेक्षित पात्रों को युगानुरूप प्रश्नों के साथ चित्रित कर उनके साथ न्याय करना एवं उसमें वैयक्तिक रागात्मकता के रंग भरना आदि है।

उल्लेखनीय है कि रामकथा विषयक मूल–प्रसंग एवं ख्यात कथा का तात्पर्य रामकथा के स्रोत ग्रंथ वाल्मीकि 'रामायण' एवं तुलसीदास रचित 'रामचरितमानस' में निहित मूलकथा, मूलप्रसंग से ही है । प्रस्तुत शोध –प्रबंध में 'चित्रकूट संज्ञक' काव्यों के तुलनात्मक अध्ययन से अभिप्राय भी यही है कि विवेच्य ग्रंथों की पारम्परिक कथा के परिप्रेक्ष्य में तुलना की जाए ।

1.1.ख. शोध सामग्री –

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के पूर्व रामकथा में चित्रकूट का वर्णन अनुषंगिक रीति से होता रहा है। इस पर स्वतंत्र स्वरूप से काव्य ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता है । हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में रामकथा से सम्बद्ध विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण स्थलों को आधार बनाकर 'स्थल संज्ञक' काव्य ग्रंथ लिखने की प्रवृति का विकास भी हुआ है। यह शोध भी इन्ही 'स्थल संज्ञक' काव्यों पर आधारित है । कवियों ने चित्रकूट को आधार बनाकर 'चित्रकूट संज्ञक' काव्य लिखा है । प्रस्तुत शोध –प्रबंध में आधार ग्रंथ शोध – सामग्री के रूप में निम्नलिखित पाँच काव्य ग्रंथ हैं– विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण' (1924 ई0), रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' रचित 'चित्रकूट'(1956 ई0), मोहनलाल गुप्त 'चातक' रचित 'चित्रकूट'(1966 ई0), रामेश्वर दयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'(1966 ई0) तथा लक्ष्मीकान्त वर्मा कृत 'चित्रकूट' चरित (1987 ई0) ।

'चित्रकूट' प्रसंग रामकथा का एक अनिवार्य प्रसंग है जिसका वर्णन सभी रामायणो में अयोध्याकाण्ड के अंतर्गत हुआ है । वाल्मीकि रामायण में यह प्रसंग पन्द्रह सर्गो में वर्णित है, जबकि अध्यात्म रामायण के सर्ग आठ और नौ में यह प्रसंग उपस्थापित है । गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरितमानस में यह पच्चासी कड़वकों (दोहा–चौपाई)[1] में वर्णित है । इसके अतिरिक्त तुलसीदास ने गीतावली तथा विनयपत्रिका में चित्रकूट स्थल की पावनता का उत्तम चित्रण किया है । आधुनिक हिन्दी साहित्य में उपरिलिखित पाँच खण्ड काव्य के साथ कई फुटकल कविताएँ चित्रकूट के वर्णन क्रम में उद्धृत करने योग्य हैं । प्रस्तुत अध्याय में इन कवियों द्वारा किये गए परिवर्तनों को रेखांकित करना तथा उसके कथाबोध के साथ काव्य–शिल्प पर विचार करना ही उद्देश्य है । इन परिवर्तनों के अनेक कारण हैं ।

वस्तुतः सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों में ये परिवर्तन सदा होते रहते हैं । इन्हीं से हमारी युग चेतना तथा मूल्यबोध नवीनता को प्राप्त करता रहता है । इस विषय के अंतर्गत चित्रकूट शब्द श्रीराम की तपस्या भूमि होने के चलते अनेक अर्थ और बोध को उत्पन्न कराता है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' में लिखा है कि 'रामकथा मन्दाकिनी चित्रकूट चित चारू' अर्थात रामकथा में चित्रकूट की मंदाकिनी की भाँति भारत की चित्तभूमि को युग–युग से रस सिंचित करके रखा है।[2] तुलसीदास ने तो यहाँ तक कहा कि आज भी श्रीराम और सीता चित्रकूट में विहार करते हैं क्योकि रामकथा मंदाकिनी है और चित्रकूट पहाड़ शुद्ध चित्त की भाति है तथा वहाँ के वन स्नेहमय हैं। अतः ऐसे स्थान पर जाने वाले का मन कैसे शुद्ध नहीं हो जाएगा । श्रीराम और भरत के मिलन को भी उन्होंने अपूर्व मिलन कहा है और वह मिलन मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को विस्मृत कर संभव हुआ है । शंकू महाराज ने उल्लेख किया है कि चित्रकूट के सूरदास ने चित्रकूट की विशुद्ध व्याख्या चलते–चलते रास्ते में कर दी थी । चित्रकूट अर्थात् जो शिखर कलिकाल में मनुष्य के चेतना की रक्षा करता है वही चित्रकूट है। चित्रकूट सुवर्ण कूट है, माणिक्य कूट है, जहाँ श्रीरामचन्द्र जी ने रावण के वध के लिए कूटनीति का निर्धारण किया था वही चित्रकूट है।[3] उसी प्रकार कामदगिरि काम का मनोविकार नष्ट करने वाला भक्त को मनोवांछित वस्तु प्रदान करने वाला है।[4] 'चित्रकूट–संज्ञक' उपर्युक्त काव्य कृतियों में रामकथा माला की सुमेरू मणि सदृश विद्यमान है ।

1.1.ग. शोध की आवश्यकता–

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 1843 ई0 से हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल स्वीकार किया है । वस्तुतः इस काल का साहित्य के इतिहास में ही नहीं भारतीय इतिहास में भी विशेष महत्त्व है । देशभक्ति और राजभक्ति, धर्म और राजनीति, वर्ण व्यवस्था और जातीय एकता, आर्य गौरव और गौ–रक्षा, समाज सुधार और अतीत के प्रति सम्मान की भावना, स्त्री की दशा और उसकी उन्नति जैसे अनेक प्रश्नों ने लेखकों और बुद्धिजीवियों के बीच आधुनिक काल में अपने अस्तित्व का बोध कराया है । अतः इस अध्याय में यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है कि 'आधुनिक साहित्य' केवल काल विशेष रचित साहित्य का सूचक नहीं, अपितु इसके साथ एक विशेष युग की अवधारणा जुड़ी हुई है जो उपरिलिखित प्रश्नों के अस्तित्व से समीकृत की जा सकती है । हिन्दी साहित्य में आधुनिकता की अवधारणा पूर्णतः पश्चिम की आधुनिकता की अवधारणा की नकल नहीं है । इसके संदर्भ पूर्णतः भारतीय हैं साहित्यिक एवं साहित्येतर दोनों ही क्षेत्रों में । आधुनिक हिन्दी साहित्य में पहली बार प्रभूत मात्रा में वीर, भक्ति और श्रृंगार से इतर विषयों पर तथा निबंध, कहानी, नाटक, कविता, उपन्यास आदि साहित्य सृजित हुआ । ब्रज का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया तथा कविता की अंतर्वर्ती चेतना और छन्द में बदलाव आ गया इन बदले हुए साहित्य मूल्यों के साथ हम इन्हे आधुनिकता कह सकते हैं ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में पारम्परीण स्रोतों वाले विषय वस्तु के काव्य ग्रंथ भी समानान्तर गति से रचे जाते रहे हैं। प्रस्तुत शोध प्रबंध में विवेच्य पाँचों ग्रंथ इसी दृष्टि से आधुनिक हिन्दी साहित्य के अंग है ।

प्रस्तुत शोध 'आधुनिक हिन्दी साहित्य के चित्रकूट' संज्ञक काव्यों के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित है । इसका अर्थ यह नहीं है कि रामाख्यानक काव्य ग्रंथों पर शोध कार्य नहीं हुआ है, जहाँ तक हिन्दी साहित्य के रामाख्यानक काव्य ग्रंथों का स्वतंत्र एवं तुलनात्मक अध्ययन की बात है वह प्रभूत मात्रा में हुआ है जो हिन्दी शोध जगत की महान उपलब्धि है। किन्तु फिर भी अध्येताओं एवं शोध कर्त्ताओं द्वारा आधुनिक हिन्दी साहित्य के 'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों पर अभी तक कोई शोध कार्य नहीं हुआ है । इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के 'चित्रकूट–संज्ञक' काव्यों के मूल एवं ख्यात रामकथा का तुलनात्मक अध्ययन से उन स्थितियों तथा उद्देश्यों का भी आकलन करने में सफल होगा, जिनके कारण इन कृतियों की रचनाधर्मिता में प्रवृत्त कवि आकृष्ट होकर कहता है–

भावुक मन को चित्रकूट यह
युग युग तक खींचेगा ।
रस के लिए तृषित कण्ठों को
मधु रस से सींचेगा ।।

(चित्रकूट, रामेश्वर दयाल दुबे)

रामकाव्य लोक मर्यादाओं एवं सांस्कृतिक पुनरूत्थान के लिए स्वतंत्र भारत की पृष्ठभूमि में विशेष रूप से कवियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना । राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की कल्पना स्वतंत्र भारत में रामराज्य कायम करने की थी क्योंकि रामकाव्य राजतंत्र में लोकतंत्र की कल्पना से परिपूर्ण है। आधुनिक युग आदर्शवादी काव्य परम्परा के विकास की खासियत यह रही कि आत्म प्रचार से दूर काव्य साधना में लगने वाले कवियों ने अपनी लेखनी में तत्कालीन सामाजिक जीवन के विशिष्ट परिवेश को उजागर करने के अवसर का पूरा–पूरा लाभ उठाया। इसके पीछे प्रेरणा के घटक के रूप में राम काव्य के चरित्र, घटनाएँ और समग्र पृष्ठभूमि ही थी। इसलिए इस प्रकार के वर्णन के लिए चित्रकूट से बढ़कर कोई दूसरा स्थल नहीं हो सकता था । चित्रकूट भारत के भौगोलिक मानचित्र में हृदय की भाँति स्थित है। चित्रकूट का प्राकृतिक परिवेश त्रेता युग में घटित घटनाओं की स्थली के रूप में एक महान घटना को अभिचित्रित करता है । इस स्थल पर कभी अयोध्या, मिथिला के राज परिवारों तथा चित्रकूट के ऋषियों के साथ निषाद एवं कोल किरातों का परम विचित्र संगम उपस्थित हुआ था । रामकथा के मार्मिक स्थलों में चित्रकूट के मिलन पर्वों को अन्यतम माना गया । यहाँ भी सभा में गुरूजन, पुरूजन, गिरिजन, मंत्रीगण, माताजन, भ्रातृगण तथा सेनापति सभी लोगों ने भाग लेकर आदर्श जीवन में व्यक्त जीवन मूल्यों तथा नीतियों का बार बार मंथन किया था । वहाँ एक ऐसी समस्या खड़ी हो गई थी जिसका समाधान साधारण नहीं था जिसमें

विराट जीवन फलक रमणीयता के साथ पवित्रता एवं विचार विनिमय का भी समाविष्ट किया हुआ है। आचार्य रामचन्द शुक्ल ने 'रामचरितमानस' में घटित चित्रकूट सभा की कार्यवाही को लक्ष्य कर इस प्रकार विचार व्यक्त किया है – "इस पूण्य समाज के प्रभाव से चित्रकूट की रमणीयता में पवित्रता भी मिल गई । उस समाज के भीतर नीति, स्नेह, शील, विनय, त्याग आदि के संघर्ष से जो धर्म ज्योति फुटी, उससे आस–पास का सारा प्रदेश जगमगा उठा, उसकी मधुर स्मृति से आज भी वनस्थली परम पवित्र है । चित्रकूट की उस सभा की कार्यवाही क्या थी, धर्म के एक एक अंग की पूर्ण और मनोहर अभिव्यक्ति थी। 'रामचरितमानस' में वह सभा एक अध्यात्मिक घटना है क्या नागरिक, क्या ग्रामीण व क्या जंगली, भारतीय शिष्टता और सभ्यता का चित्र यदि देखना हो तो इस राज्य समाज में देखिये । xxx अपनी प्रबल इच्छाओं को लेकर लोग सभा में बैठते है पर वहाँ बैठते ही धर्म के स्थिर और गम्भीर स्वरूप के सामने उनकी व्यक्तिगत इच्छाओं का कहीं पता नहीं चलता। xxx जनक, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि धर्मतत्व के पारदर्शी जो कुछ निश्चय कर दें, उसे ये कलेजे पर पत्थर रखकर मानने को तैयार हो जाते हैं।[5] इन पुस्तकों के अध्ययन से 'चित्रकूट संज्ञक' काव्यों की जो विशेषताएँ देखने को मिली उनके आधार पर इस विषय पर शोध की आवश्यकता का अनुभव किया गया कि किस प्रकार ये काव्य–ग्रंथ चित्रकूट की तीर्थ–संपदा को काव्यत्व का कलेवर प्रदान करते हैं ? स्रोत काव्यों से ये कितने निकट हैं, ये अपने प्रयोजन को किस हद तक सिद्ध करते हैं। इनके पात्र आधुनिक युग में एक नया वैचारिक रूप धारण करते हैं। स्रोत ग्रंथों में जिन रूपों में इन पात्रों का उन्नयन हुआ है, उनसे ये पृथक दृष्टिकोण रखते हैं। इनके संवाद में जो भिन्नताएँ हैं और कथावस्तु में भी उपस्थापित नये प्रसंग पुराने प्रसंगों के साथ जुड़े हैं। प्राकृतिक परिवेश भी यहाँ बिल्कुल नया है तथा उनके सोचने का ढंग भी आधुनिक विचारधारा से मिलता–जुलता है। कथा में अनेक नये प्रसंगों का नियोजन हुआ है। लोक चेतना का समावेश प्रजातांत्रिक विचारधारा के अनुरूप है।

1.1.घ. शोध पद्धति–

प्रस्तुत शोध –प्रबंध में उक्त पाँचों ग्रंथों पर अपनायी गयी विवेचन की पद्धति तुलनात्मक अवश्य है। परन्तु, इसके साथ ही यथास्थान विवेचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति की भी सहायता ली गई है। इसमें यही दिखाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार आधुनिक कवि स्रोत ग्रंथों की कथा से अलग होकर नवीन प्रसंगों की उद्भावना में लगे हैं। आधुनिक हिन्दी सहित्य के कवियों द्वारा चित्रकूट पर केन्द्रित जो काव्य ग्रंथ लिखा गया है, यह शोध प्रबंध उनके तुलनात्मक अध्ययन का सर्वांगीण विवेचन करने के क्षेत्र में एक लघुतम प्रयास मात्र है।

1.2. चित्रकूट संज्ञक कृतियों का सामान्य परिचय–

रामकथा से सम्बद्ध स्थलों में 'चित्रकूट' का विशिष्ट महत्त्व है। रामभद्र को वनवास की कुछ अवधि यहाँ व्यतीत करने की संस्तुति करते हुए स्वयं महर्षि वाल्मीकि ने उन्हें यह स्थल दिखाया था–

आगच्छ रामभद्र ते स्थलं वै दर्शयाम्यह्म।[6]

और इसकी महिमा का बखान भरद्वाज ऋषि ने इन शब्दों में किया है–

यावता चित्रकूटस्य नरा– श्रंड्गाव्यवेक्षते।

कल्याणानि समाधत्ते न मोहे कुरूते मन–।[7]

भारत तीर्थों का देश है। यहाँ के तीर्थ हमारे धर्म और संस्कृति के भव्य भवन को संभालने वाले सुदृढ़ आधार स्तंभ हैं। ये तीर्थ हमें अतुल जीवनी शक्ति प्रदान करते हैं। ये हमारी आस्था के केन्द्र बिन्दु हैं। यहाँ आकर हमारी आन्तरिक शुचिता और बाह्य सौन्दर्य दोनों का सम्मिलन होता है। प्रत्येक गौरवशाली तीर्थ, जहाँ एक ओर हमारी आन्तरिक शुद्धि करने में सक्षम है, वही, दूसरी ओर नयनाभिराम बाह्य सौन्दर्य के द्वारा चित्तानुरंजन का गुण भी रखता है।

इस प्रकार चित्रकूट एक ऐसा ही आरण्यक तीर्थ है जो अपनी सांस्कृतिक महत्ता के साथ ही आध्यात्मिक महिमा और नैसर्गिक सुषमा के लिए प्रख्यात है। 'चित्रकूट' धाम भारतवर्ष का ह्रदय विन्दु है। अनेक आर्य ग्रंथों ने इसे अनादि तीर्थ माना है। ब्रह्मा के मानस पुत्र महर्षि अत्रि ने इसे अपनी तपोभूमि स्वीकार किया है। राम और भरत का ऐतिहासिक मिलन भी यहीं हुआ जिसे गोस्वामी तुलसीदासजी ने अध्यात्म के सभी अंगों का महामिलन कहा। शास्त्रों में वर्णित है कि सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने आश्वस्त करने के लिए स्वर्णखण्ड के रूप में चित्रकूट को प्रतिष्ठित किया था और भगवान शंकर को यहाँ का प्रजापति बनाया था। प्राचीन समय में इसी के चलते चित्रकूट को 'ब्रह्मपुरी' कहा गया। ब्रह्माजी ने यहाँ महान् तपानुष्ठान सम्पन्न किया, जिसके फलस्वरूप उन्हें सृष्टि रचना की सामर्थ्य प्राप्त हुई। 'रामचरितमानस' की एक पंक्ति इस संदर्भ को सत्य कर देती है कि यह स्थान प्रारंभ से ही अति रमणीक, पुनीत सिद्ध तपोवन रहा है– 'तात अनादि सिद्‌ध थल एहू।'

भारतीय वाङ्मय में चित्रकूट विषयक प्रचुर सामग्री उपलब्ध हैं। अनेक पुराणों तथा धर्म ग्रंथों में इस तीर्थ की महिमा का विषद वर्णन मिलता है। जैसा कि पूर्व निवेदित है, महर्षि वाल्मीकि ने अपने ग्रंथ रामायण के चार सर्गों में चित्रकूट की अलौकिक महत्ता एवं स्वर्गीय सौन्दर्य का चित्रण किया है। महर्षि ने इस क्षेत्र में रहकर अपनी तपो– साधना की थी। रामायण में वर्णित चित्रकूट इनकी ऑखो देखा यथार्थ चित्र है। वे भगवान राम के समकालीन थे। अतः उन दिनों यह एक अति पुनीत प्राकृतिक सुषमा सम्पन्न साधुओं के लिए सुखकारी कल्याणकामी विख्यात तपोवन था। महामुनि भरद्वाज ने वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत बताया है कि दस कोस के अर्न्तगत इस गिरि की परिधि है तथा इस पर्वत का दर्शन पुण्य का जनक है।

कवि कालिदास के काव्य में भी चित्रकूट का वर्णन मिलता है। उनके समय तक चित्रकूट के प्राकृतिक वैभव का ह्रास नहीं हुआ था। रघुवंश में इस वनश्री का बड़ा ही मनोहारी चित्रण किया गया है। उनके इस काव्य में किसी चट्टान या टीले को कौतुक में ही सिर से ठोकर देने वाले किसी वन्य–वृषभ की भाँति चित्रकूट का वर्णन है। यह अपने झरनों तथा प्रपातों के लिए विख्यात था।[8] 'उत्तर रामचरितम्' में चित्रकूट तक जानेवाले कालिंदी तट पर स्थित मार्ग का उल्लेख है।[9] रामायण के अनुसार रामभद्र ने

पयस्विनी या मंदाकिनी के तट पर स्थित इस पहाड़ी पर निवास किया था। इस रमणीक पर्वत में जंगल पृथक नहीं प्रतीत होते। नीलवन इस पहाड़ी पर स्थित वन से मिल गया था।[10] गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी रचनाओं में सम्राट हर्ष से लेकर औरंगजेब के शासनकाल तक के राजनीतिक प्रभाव का कोई उल्लेख नहीं किया । ये औरंगजेब के कुछ दशक पूर्व इस क्षेत्र में रहकर तपोसाधना करते थे। अपनी रचनाओं में तुलसीदास ने चित्रकूट के आध्यात्मिक महत्त्व को ही सर्वोपरि माना है। उनके समय तक भी चित्रकूट की प्राकृतिक रमणीयता बरकरार थी। अब यहाँ कोल–किरातों की छोटी–छोटी बस्तियाँ बसने लगी हैं। आदिवासी जातियों का भी रहना शुरू हो गया है। 'मानस' में रामघाट, कामदगिरि, स्फटिक–शिला, अनसूया आश्रम, भरत कूप आदि का परिचय मिलता है। चित्रकूट पर्वत को रामगिरि, रामशैल, कामदगिरि आदि नाम से पुकारा जाता है। इन मान्यताओं ने जन मानस में इस महिमाशाली तीर्थ के अमिट गौरव के प्रति प्रेम और श्रद्धा का भाव भर दिया है। तुलसीदास के समकालीन कवि रहीम ने 'चित्रकूट' में 'अवध नरेस' के वर्णन के साथ ही उसके माहात्म्य रूप में चित्रकूट का विपत्ति निवारक रुप का भी वर्णन किया है।

'चित्रकूट' पर्वत एवं उससे संलग्न वन्य–संपदा की रमणीयता का वर्णन पुराणों, जातक ग्रंथों, जैन साहित्य एवं तंत्र–ग्रंथों में भी प्राप्त होता है। पद्मपुराण के तीर्थ माहात्म्य विषयक इक्कीसवें अध्याय में वर्णित तीर्थ स्थलों के अन्तर्गत 'चित्रकूट' का उल्लेख हैं। भागवत पुराण में चित्रकूट का वर्णन एक मनोहारी पर्वत के रूप में मिलता है।[11] जातक ग्रंथों के अनुसार इस रमणीक पर्वत में अनेक कलहंसों का आवास था जो यहाँ पर स्थित स्वर्ण गुफा में रहते थे जिनमें कुछ तीव्रगामी और कुछ स्वर्णिम थे। संक्षेप में कहा जाए तो रामकथा विषयक आख्यानों तथा साहित्येतर[12] ग्रंथों में 'चित्रकूट' से संबंधित प्रभूत आधार सामग्री उपलब्ध होती है। सर्वस्वीकृत रूप में इस स्थान की रमणीयता का तत्व ही कवि हृदय को आकृष्ट, प्रेरित एवं तरंगित करने के लिए अपरिहार्य रूप से आकर्षण का बिन्दु है। आलोच्य ग्रंथ समूह आधुनिक हिन्दी साहित्य में रचित खड़ी बोली के काव्य हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य के कवियों को भी चित्रकूट ने वृहद रुप से आकर्षित किया है। इसका कारण यह है कि रामकथा के मार्मिक स्थलों में चित्रकूट का मिलन पर्व का अन्यतम होना। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस मिलन की व्याख्या बहुत अद्भुत ढंग से की है– उनके अनुसार चित्रकूट में राम और भरत का मिलन शील एवं शील का, स्नेह और स्नेह का, नीति और नीति का मिलन है। यहाँ पात्रों के माध्यम से सर्वाधिक आदर्शों, जीवन मूल्यों तथा नीतियों का संगम हुआ है। गुरू–शिष्य, राजा–प्रजा, पति–पत्नी, माता–पुत्र, पिता–पुत्री, भाई–भाई, सेवक–सेव्य आदि का सामाजिक संबंधों में ग्रंथित जन अपने उदात्त रुपों में चित्रकूट की सभा में एकत्र होते हैं।[13]

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में मैथिलीशरण गुप्त अपने श्रेष्ठ महाकाव्य 'साकेत' के नामकरण की सार्थकता हेतु चित्रकूट में सम्पूर्ण अयोध्या की स्थिति को नितान्त निजता के भाव से इस प्रकार वर्णित करते हैं–

चल चपल कलम निज चित्रकूट चल देखें।

x x x x

सम्प्रति साकेत समाज वहीं है सारा।

सर्वत्र हमारे संग स्वदेश हमारा ।[14]

तात्पर्य यह है कि 'चित्रकूट' रामकथा का संस्पर्श पाकर कवि हृदय को आन्दोलित तथा काव्य रचना हेतु प्रेरित करने में सर्वथा सक्षम रहा है। इस तरह 'चित्रकूट' रामकथा माला में एक सुमेरू मणि के समान है। अतः कवियों का ध्यान इसकी ओर जाना स्वाभाविक है। सभी आधुनिक कवियों ने कथा के प्रत्येक पात्र को उसके पारम्परिक रूप को अक्षुण रखते हुए उन्हें वर्तमान युग संदर्भ में उपस्थित किया है। इन खण्ड काव्यों में सृजन के साथ मार्मिक विदग्धता भी है जो आत्मबोध की अनेक सारणियाँ पात्र के चरित्र को ऊँचाई की ओर ले जाती है।

जयशंकर प्रसाद ने 'कानन कुसुम' में चित्रकूट के अंतर्गत राम भरत मिलन का दृश्य अंकित किया है। चित्रकूट में घटनाएँ वे ही हैं, दृश्य वे ही हैं, चरित्र वे ही हैं, पर जैसा कहा गया है कि दृष्टिकोण थोड़ा बदला हुआ है। सारी बातों को भक्त की भावना से न देख मानवीय दृष्टिकोण से देखा गया है। इसलिए ये वर्णन यथार्थ और सच्चे प्रतीत होते हैं। यहाँ राम, सीता, लक्ष्मण और भरत हमें अधिक पहचाने से लगते हैं। उनके चरित्र और स्वभाव की गरिमा की रक्षा करते हुए भी हमें उनके अधिक निकट लाकर खड़ा कर दिया गया है। इसमें प्रसाद ने भरत के भाव से अधिक महत्त्व प्रकृति के व्यापक सौन्दर्य और सीता के सुखी दाम्पत्य जीवन को दिया है।

1.2 क. विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'–

विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण' अपने काल की प्रौढ़ कवित्व शक्ति संपन्न रचना है। इस पुस्तक की रचना 1924 ई0 में हुई है। यह पुस्तक तिरासी चतुष्पदी छन्दों में पूरी हुई है। इसमें पाँच छवि हैं जिन्हें सर्ग के रुप में कवि ने स्थान दिया है। प्रथम छवि को कवि ने प्रारम्भ की संज्ञा प्रदान की है और पंचम छवि उपसंहार, जिसकी अंतिम पंक्तियाँ हैं–

दर्शनीय है दृश्य दृगों को कानों को कलरव प्यारा।

रसना को षट्रस मंजुल है मन के हित नव रस धारा।।

('चित्रकूट चित्रण',पृ0 सं0 23)

चित्रकूट चित्रण प्रकृति प्रेमी तथा रसिकों के लिए पुष्पों की चित्ताकर्षण माला की भाँति है। चित्रपुरी, चित्रालय और चित्रवन के मनोरम दृश्य को देखकर कवि के मन में जो मनमोहक युक्तियाँ प्रकट हुई हैं, वे इस काव्य को गौरव–ग्रंथ बनाने में समर्थ हैं। संयुक्त प्रान्त की विंध्याचल की श्रेणियों में चित्रकूट के समान सुरम्य स्थान और कोई नहीं है। यहाँ की वन शोभा पहाड़ी दृश्य, सोते–झरने, मंदाकिनी की पवित्र धारा इत्यादि को देखकर दर्शकगण मुग्ध हो जाते हैं। यहाँ स्थित कोटितीर्थ जैसी हनुमान–धारा,

स्फटिक–शिला, सीता–कुंड, अत्रि–अनुसूया आश्रम, गुप्त–गोदावरी, कामदगिरि इत्यादि को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे स्वयं विश्वकर्मा ने अपनी अनुपम रचनाचातुर्यता के द्वारा इनका निर्माण किया हो जिसे देख दर्शकगण आश्चर्य और आनन्द में तल्लीन हो जाते हैं। चित्रांचल में वर्णित ऐतिहासिक पवित्र स्थानों का प्राचीन गौरव और उनकी वर्तमान अवस्था पाठकों के लिए कुछ कम कौतुहलपूर्ण नहीं है! यों तो सृष्टि–सौन्दर्य का अनुभव सभी दर्शक साधारण दृष्टि से करते हैं, किन्तु कवि के लिए उस वस्तु के अंतर्गत सुन्दरता का आकार प्रकट हो जाता है। कवि प्रयाग के रहले वाले हैं। इसकी प्रस्तावना में लक्ष्मीधर बाजपेयी ने लिखा है कि विद्याभूषण 'विभु' जी ने यह 'चित्रकूट चित्रण' लिखकर सचमुच ही साहित्य का *बड़ा उपकार किया है। चित्रकूट का यह चित्र* यद्यपि देखने में छोटा ही है, परन्तु *कविता के* सदगुणों से सुभूषित है, अतएव छोटा होने पर भी बहुत ही मनोहर है। विशेषकर हमारे स्कूल और कॉलेजों के बालक बालिकाओं के लिए जिन्हें चित्रकूट के समान रमणीय स्थानों को देखने का प्रायः अवसर नहीं मिलता, उनके लिए तो यह 'चित्रकूट चित्रण' बहुत ही उपयोगी होगा। मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी ने जिस मनोहर स्थान में निवास करके उसको तीर्थस्थान बनाया, अत्रिपत्नी सती अनुसूया देवी ने जहाँ सती शिरोमणि सीतादेवी को पवित्र नारी धर्म का उपदेश किया, वीरव्रती ब्रह्मचारी लक्ष्मण ने जहाँ भ्रातृसेवा की पराकाष्ठा दिखलाई, उसी पुनीत चित्रकूट धाम का यह काव्य रसभरा वर्णन हमारे बालक–बालिकाओं के हृदय में अवश्य ही धार्मिक भाव उत्पन्न करेगा।[15]

1.2.ख. रामानन्द त्रिवेदी शास्त्री रचित 'चित्रकूट'–

रामानन्द त्रिवेदी शास्त्री रचित 'चित्रकूट' करूण–रस प्रधान खण्ड काव्य है। यह विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा से प्रकाशित है। इसमें कुल मिलाकर सात सर्ग हैं, एक सौ तैंतीस पृष्ठों में समाविष्ट इस ग्रंथ में सर्ग का नामकरण प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि रूपों में हुआ है। सभी दर्शनीय स्थलों से संबंधित कविताएँ स्फुट रुप से वर्णित होकर कथा कहती चलती हैं। कवि की दृष्टि भावना के साथ–साथ भक्तिमूलक भी है, क्योंकि उन्होंने लिखा है–

मनोभिराम राम, रोम–रोम में रमो।
दया निकेत है तुम्हें नमा, नमो, नमो–नमो।

(चित्रकूट, पृ0 सं– 03)

कवि आज भी सीता–राम तथा सौमित्र के तृतीय मूर्ति को गोस्वामी जी की ही भॉति चित्रकूट में देखते हैं–

ऐसा होता ज्ञात कि मानो । राघव हैं फिर बन आये।
सती शिरोमणि सीता को फिर। लेकर जीवन–धन आये।।

(चित्रकूट, चातक, पृ0 सं– 15)

इस पुस्तक में सभी छन्द एक ही प्रकार के हैं और अंतिम सर्ग में छन्द परिवर्तित हैं।

1.2.ग. मोहनलाल गुप्त 'चातक' रचित 'चित्रकूट'–

मोहनलाल गुप्त 'चातक' रचित 'चित्रकूट' का प्रकाशन 1966 ई0 में हुआ था। इस खण्ड काव्य के द्वारा कवि ने राष्ट्र कवि स्वर्गीय दद्दा मैथिलीशरण गुप्त को श्रद्धांजलि अर्पित किया है। यह काव्य उनकी पुण्य स्मृति में निवेदित है। इसकी प्रेरणा के रूप में बाल्यकाल से ही 'चातक' जी की माँ का योगदान है तथा कवि 'रामायण,' 'रामचरितमानस' तथा 'साकेत' का ऋणी है– 'मेरी माँ सरयू देवी मुझे रामायण की कहानियाँ सुनाती एवं रामचरितमानस का पाठ करती हुई कभी हर्ष विभोर हो सुध–बुध भूलकर नृत्य करने लगती थी, तो कभी शोक द्रवित होकर अश्रुपात। मेरे हृदय में भरत के प्रति कुछ लिखने की प्रवृत्ति तभी अंकुरित हुई थी। राष्ट्रकवि दद्दा के महाप्रयाण में मैं चिरगाँव गया, श्रद्धांजलि कक्ष में उनके आदर्शग्रंथ साकेत, द्वापर, जयभारत आदि देखकर हृदय में एक अनुभूति हुई कि इस प्रयोगवादी युग में शायद अब नये सृजन में पौराणिक आख्यानों द्वारा जनजागृति के प्रयास की परम्परा अवरूद्ध हो जायेगी। अतःऐसी ही रचना द्वारा दद्दा को श्रद्धांजलि देने का भाव मन में जागृत हुआ। 'रामायण,' 'रामचरितमानस,' साकेत आदि से शोध काव्याभ्यासी युगों तक लेते रहेंगे। मैंने भी जितना मुझ से बन पड़ा लिया है।[16] पूरी पुस्तक अस्सी पृष्ठों में समाविष्ट हुई है। इसमें सर्गों का विभाजन नहीं हुआ हैं। पुस्तक का उद्देश्य जन–जीवन में चित्रकूट के माध्यम से आदर्श प्रेम, कर्त्तव्य, त्याग की शिक्षा देना है। देशके स्वतंत्र होते ही कर्णधारों में स्वार्थपरता, पदलिप्सा एवं पारस्परिक विरोध का उत्कर्ष आरंभ होने लगा। ये न्यूनताएँ हृदय में आदर्श चरित्र द्वारा ही कम की जा सकती थी। अतः चित्रकूट से बढ़कर कोई दूसरा स्थान हमारे आदर्श–ग्रंथों में नहीं है जो राष्ट्र के विचारों को एक साथ उन्मथित कर सके। चातक जी ने अपने आदर्शवादी भावों को सीधे सरल और नैतिकता से पूर्ण भावों में अभिव्यंजित किया है।

इस ग्रंथ की शैली खण्ड काव्य की है। इन्होंने 'चित्रकूट' द्वारा राष्ट्रीय जीवन को एक नवीन उन्मेष प्रदान किया है।

> और मूर्तिमय तीनों का ही
> मिलन यहाँ पर आज हुआ,
> इस कारण इस चित्रकूट तो
> तीर्थराज का राज हुआ।

(चित्रकूट चातक, पृ0 सं– 20)

1.2.घ. रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'–

रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट' मात्र चौसठ पृष्ठों का है। दुबेजी को अनेक महान कवियों के आशीर्वाद प्राप्त हैं। यह एक खण्ड काव्य है। उन्होंने कथा के प्रत्येक पात्र को उसके पारम्परिक रूप को

अक्षुण रखते हुए वर्तमान युग–संदर्भ में उपस्थापित किया है। इसकी भूमिका प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा ने लिखी है। 'रामकथा के मार्मिक स्थलों में चित्रकूट का मिलन पर्व अन्यतम है, क्योंकि इसमें पात्रों के माध्यम से जितने अधिक आर्दश का, जीवन मूल्यों का तथा नीतियों का संगम अनायास होता है, उतनी अधिक विविधता अन्यत्र नहीं मिलती। गुरू–शिष्य, राजा–प्रजा, पति–पत्नी, माता–पुत्र, पिता–पुत्री, भाई–भाई आदि जितने सामाजिक संबंध संभव हैं, वे सब अपने उदात्त रूपों में चित्रकूट की सभा में प्रत्यक्ष होते हैं, किन्तु आश्चर्य यह है कि वे मूलकथा को बोझिल नहीं बनाते, वरन् उसे मर्मस्पर्शी बनाकर विराट जीवन फलक देते हैं।[17] प्राकृतिक परिवेश के चित्रण में कवि को अपूर्व सफलता मिली है। पात्रों की मानसिकता द्वारा उनका आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व स्पष्ट होता चलता है। राम और कैकेयी, सुमित्रा और लक्ष्मण का संवाद भी उनके मूल भावों की ही व्याख्या करता है। कवि के शब्दों में चित्रकूट का निम्नलिखित महत्त्व है—

धन्य हो गयी है धारा, प्रीति का संगम जहाँ हुआ था।
जहाँ धर्म ने छोर कीर्ति का अति उत्तंग हुआ था।।
चित्रकूट, यह धर्म–धारा है, तीर्थ भूमि, जन–जन की।

कर्त्तव्यों के आड़े आयी जहाँ न प्रीति स्वजन की।।

(चित्रकूट, दुबे, भूमिका)

1.2.ड. लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'–

'चित्रकूट चरित' लक्ष्मीकांत वर्मा का वैचारिक काव्य है, इसमें कथा को सर्ग में नहीं बाँटकर छः शिविरों से अनुबद्ध किया गया है। इनका क्रम इस प्रकार है– आदिवासी शिविर, मातृ शिविर, भरत शिविर, जनक शिविर, ऋषि शिविर और श्रीराम शिविर । आदिवासी शिविर में निषाद के साथ अनेक युवकों का वैचारिक संवाद है, जिसका समाधान वाल्मीकि के द्वारा होता है। मातृ–शिविर में समस्त राजमर्हिषियों और अयोध्या के नागरिकों के साथ यहाँ समाधान अत्रि पत्नी अनुसूया करती हैं। भरत शिविर में माण्डवी शत्रुघ्न और भरत हैं, जनक शिविर में जनक के साथ सभी ऋषि एवं पुरोहित हैं। ऋषि शिविर में अत्रि, वशिष्ठ आदि सभी विचार–मंथन में सम्मिलित हैं, श्रीराम शिविर में सभी के द्वन्द्वों का समापन हो जाता है तथा भरत पादुका लेने को मान जाते हैं। 'चित्रकूट–चरित' में मुक्त छन्द के अन्तर्गत शोध को अपने विचार प्रकट करने का सुअवसर मिला और अन्त में सबके संदेह का निवारण श्रीराम के द्वारा हो जाता है–

मुक्त स्वयं तुम हो चुके बन्धु
राज्य किसी का नहीं कभी भी
वह होता सदा प्रजा का।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं.129)

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत 'चित्रकूट संज्ञक' विवेच्य पाँचों कृतियों का सामान्य परिचय सूचनात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः कृतियों के रचनाकाल का उल्लेख करते हुए उसके कलेवर को रेखांकित किया गया है तथा कृतिकार द्वारा कृति के समर्पण, निवेदन, प्रस्तावना इत्यादि को आधार बनाकर व्याख्यायित किया गया है। इन 'चित्रकूट संज्ञक' कृतियों में चित्रकूट स्थान को प्रतीक बनाकर रामकथा के प्रमुख स्वरूप जिसमें धर्म, कर्म और सामाजिक संबंध लोक मर्यादा का अतिक्रमण ही न कर जाए, उसकी व्याख्या हुई है। धर्म के हर अंगों और उपायों की चर्चा की गयी है, उसका विश्लेषण किया गया है और सम्पूर्ण आदर्श को मर्यादा के अर्न्तगत रखकर अभिव्यंजित करने का प्रयास किया गया है। धर्म ही हमारे नैतिक मूल्यों का संरक्षक है। उसके एक सूत्र के टूट जाने पर अनेक अंग–उपांग क्षत–विक्षत हो जाते हैं, इसी से चित्रकूट का जीवन अत्यन्त मर्मस्पर्शी बन गया है। वन और भवन में एकरूपता लाकर दोनों ओर के जीवन को तपस्या से कसने की बात कही गयी है। चित्रकूट में श्रीराम, सीता और लक्ष्मण सहित निवास कर अपने जीवन को मुनियों और ऋषियों–सा ज्ञान लाभ करते हुए राम राज्य के अनुरूप राजा बनने के योग्य होते हैं। तभी तो उन्हें कहा गया हैं कि राम तो धर्म के विग्रह हैं, मूर्ति हैं। अतः हम निष्कर्षतः यही कह सकते है कि चित्रकूट में राम, सीता और लक्ष्मण का जाना, भरत–मिलन तथा वह सभा ही इन शोध काव्यों के वर्णन की विषय वस्तु हैं।

प्रथम अध्याय

संदर्भ तालिका

1. रामचरितमानस, तुलसीदास, अयो. 237–321, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2016 वि
2. चित्रकूट की रामांचकारी यात्रा, शंकू महाराज, पृ.सं. 9
3. चित्रकूट की रामांचकारी यात्रा, शंकू महाराज, पृ.सं. 70
4. चित्रकूट की रामांचकारी यात्रा, शंकू महाराज, पृ.सं. 71
5. गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 50
6. वाल्मीकी रामायण, अयो. 02/88 गीता प्रेस, गोरखपुर, सं.2016 वि
7. वाल्मीकी रामायण, अयो. 02/54/30,गीता प्रेस, गोरखपुर, सं.2016 वि
8. रघुवंश, कालिदास, X1147
9. उत्तर रामचरितम अंक 1, 24
10. वाल्मीकि रामायण अयो. 39
11. भागवत पुराण, अध्याय 19, श्लोक 16
12. जातक, IV 212, पृ.सं. 423–424
13. गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 68
14. सकेत, मैथिलिशरण गुप्त, अष्टम सर्ग
15. चित्रकुट चित्रण, विद्याभूषण 'विभु', प्रस्तावना
16. चित्रकूट, मोहनलाल गुप्त 'चातक', निवेदन
17. चित्रकूट, रामेश्वरदयाल दुबे, भूमिका

******

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

वस्तु–विधान

---

2. उपक्रम–

सभी 'रामायणों' में चित्रकूट प्रसंग रामकथा के अनिवार्य प्रसंग के रूप में वर्णित हुआ है। सामान्यतः इसका नियोजन अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत ही हुआ है।'रामायण'में यह प्रसंग पंद्रह सर्गों में वर्णित है[1] और'रामचरितमानस'के अयोध्याकाण्ड में यह पच्चासी कड़वकों (दोहा–चौपाई)[2] में वर्णित हुआ है। उक्त ग्रंथों में कथावस्तु के रूप में जो प्रख्यात प्रसंग वर्णित हैं, उनमें चित्रकूट में राम से मिलने के लिए अनुरागपूर्वक भरत का पहुँचना, भरत द्वारा राम के राज्य करने का आग्रह करना, राम द्वारा उस आग्रह को अस्वीकार करना तथा भरत को अपनी पादुका देकर पुरवासियों सहित अयोध्या प्रत्यावर्तन हेतु विदा करना मुख्य है। परम्परा से प्राप्त उक्त प्रख्यात प्रसंगों को कल्पना के माध्यम से विवेच्य कृतियों में रचनाकारों ने अपने समकालीन युग की चिन्तन, चेतना तथा प्रासंगिकता आदि के अनुरूप बनाया है अर्थात् विवेच्य कृतियों में वस्तु–विधान के अन्तर्गत कथा–योजना में पारम्परीण तत्व तो निहित हैं ही साथ ही उनमें किंचित् परिवर्तन–परिवर्द्धन भी परिलक्षित होता है। रामकथा में परवर्ती कवियों द्वारा किये गये परिवर्तनों के अनेक कारण गिनाये गये हैं।[3]इन कारणों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों के साथ परिवर्तित युग–चेतना एवं मूल्यबोध प्रमुख है; जिनसे समय–समय पर रामकथा का नवीन कल्प होता रहा है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में युग चेतना को समाविष्ट किया गया चित्रकूट संबंधित कथा प्रासंगिक एवं लोकप्रिय बनी हुई है। आलोच्य कृतियों में वस्तु–विधान अर्थात् कथा योजना का वर्णन निम्नांकित है।

2.क. विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'–

विद्याभूषण 'विभु' द्वारा रचित 'चित्रकूट चित्रण' मूलतः प्रकृति वर्णन प्रधान सरस काव्य रचना है। चित्रकूट की रमणीक प्रकृति को कवि ने शब्द–चित्रों में पिरोया है। इसमें कथा का आश्रय स्थल चित्रकूट है किन्तु रामकथा न तो क्रमबद्ध रीति से प्रस्तुत की गई है और न ही इसमें कथा–योजना का वाल्मीकि रामायण अथवा रामचरितमानस की भाँति स्थूल वर्णन है। 'चित्रकूट चित्रण' का वस्तु–विधान कवि ने पाँच उपखण्डों में विभाजित किया है जिसे कवि ने स्वतः 'छवि'– प्रथम छवि, द्वितीय छवि, तृतीय छवि, चतुर्थ छवि और पंचम छवि की संज्ञा प्रदान की है। 'छवि' शब्द के प्रयोग से स्वतः स्पष्ट है कि कवि की दृष्टि कथा भाग पर उतनी नहीं टिकी है, जितनी उसकी रूचि चित्रकूट का भ्रमण करते समय चित्रकूट के प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन में रम गयी है अर्थात् विद्याभूषण 'विभु' जी द्वारा रचित 'चित्रकूट चित्रण' के वस्तु–विधान में कथा तत्त्व विरल है। उसका प्रवाह अजस्र न हो कर संकुल, सूचनात्मक और संस्कार में

संचित होने के कारण सहज उद्रेक के रूप में है। 'चित्रकूट चित्रण' में वर्णित वस्तु–विधान का छविवार वर्णन अग्रांकित है–

2.क.i प्रथम छवि–

चित्रकूट स्थल का वर्णन कवि ने विन्ध्याचल पर्वत के अंश के रूप में किया है। विन्ध्याचल पर्वत कवि को प्रतीची और प्राची दिशा के मध्य शुभ संयोजक प्रतीत होता है, जो न केवल उत्तर और दक्षिण सीमा में भेदक है अपितु अरब और गंगा सागर के मध्य सुन्दर सेतु भी है। इसी विन्ध्याचल के अंश के रूप में कवि ने चित्रकूट का वर्णन किया है तथा चित्रकूट वर्णन करने वाले पूर्ववर्ती श्रेष्ठ का पुण्य स्मरण *निम्नलिखित पक्तियों शब्दों में किया* है :–

इसी अचल का एक अंश जो चित्रकूट कहलाता है।
कविकुल गुरू की रामायण में जिसका वर्णन आता है।।
काव्य–केसरी–कालिदास ने जिसकी महिमा गाई है।
जिसके गुण की कीर्ति–कौमुदी तुलसी ने छिटकाई है।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0 सं0 2)

प्रथम छवि के अन्तर्गत कथा तत्व के रूप में चित्रकूट के तपोवन का उल्लेख है जिसे देशकाल की दृष्टि से कवि ने श्रीराम और भरत के प्रेम रूप भ्रातृत्व से संयुक्त कर चित्रकूट चित्रण को त्रेतायुग से अधुनातन समय तक जोड़ दिया है–

NORTH-EASTERN HILL UNIVERSITY LIBRARY
Date..........

जहाँ तपोवन बने हुए थे ऋषि–मुनियों के सुखदाई।
जहाँ मिलन श्रीराम–भरत का प्रेम–रूप भाई भाई।।

× × × × ×

जब तोते को राम नाम का पाठ पढ़ाया जाता है।
त्रेतायुग का दृश्य पुराना वही सामने आता है।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0 सं0–03)

चित्रकूट को चित्रपुरी की संज्ञा प्रदान कर कवि ने चित्रकूट में प्रवेश के पूर्व मन्दाकिनी नदी पार करने का उल्लेख किया है और अपनी चित्रकूट यात्रा को पावन तीर्थ स्थली की यात्रा के रूप में वर्णित कर चित्रकूट की पवित्रता के अनेक कारणों में गुरु वशिष्ठ और राजर्षि जनक का योगदान स्वीकार किया है।

2.क.ii द्वितीय छवि –

'चित्रकूट चित्रण' में द्वितीय छवि को कवि 'विभु' जी ने 'चित्रपुरी' की संज्ञा प्रदान की है जहाँ चित्रबाज अर्थात मुर्गा के बाँग देने से चित्रकूट की दिनचर्या प्रारम्भ होती है, वहाँ मन्दाकिनी स्नान विधि की कथा का कवि ने वर्णन किया है। मन्दाकिनी के घाट पर मंदिर, मूर्ति पूजन–अर्चन इत्यादि धार्मिक कृतियों का क्रम अनवरत रूप से चलता रहता है। यहीं 'राघव–प्रयाग' नामक स्थल पर पयस्विनी और स्वर्गंगा के

मिलन को वर्णित कर कवि ने त्रेता युग में घटित राम और भरत के मिलन की पवित्र जगत् प्रसिद्ध कथा को निम्नलिखित पंक्तियों में काव्यांतरित किया है–

पयस्विनी राघव प्रयाग में निजपय लेकर आई है।
स्वर्गंगा के ऊपर उसने सब सम्पत्ति चढ़ाई है।।
दो बहिनों का संगम कैसा पावन और पुराना है।
त्रेता में ज्यों राम भरत का मिलन जगत ने जाना है।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0 सं0–09)

2.क.iii तृतीय छवि–

कवि विद्याभूषण 'विभु' जी ने 'चित्रकूट चित्रण' की तृतीय छवि को 'चित्राचल' की संज्ञा प्रदान की है। चित्रकूट के नामकरण को कवित्व पूर्ण शैली में प्रचलित किंवदन्ती के साथ सम्पृक्त कर कवि ने मर्त्यलोक के मध्य भक्तों के स्वर्ग के रूप में चित्रकूट की चित्रमयता की ओर संकेत किया है:–

चित्रपुच्छ चित्रांग चित्रपद चित्रकंठकी टोली है।
चित्रबाज है चित्रकीटपशु चित्रविहंगम बोली है।।
चित्रित पंडे साधु पुजारी मूर्ति सुरालय पाते हैं।
चित्रकूट है नाम इसी से नर ऐसा बतलाते हैं।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0 सं0–13)

चित्रकूट में पर्यटन हेतु श्रेष्ठ ऋतु के रूप में कवि ने पावस ऋतु का उल्लेख किया है 'चित्राचल' नामक इस तृतीय छवि में कवि ने चित्रकूट के प्रमुख दर्शनीय स्थलों का वर्णन किया है। इन दर्शनीय स्थलों में कामद–गिरि, मुखारविंद, चरण–पादुका, लक्ष्मण–टीला, कोटि–तीर्थ, सीता–रसोई, स्फटिक–शिला, सीता–कुंड, अत्री–आश्रम, गुप्त–गोदावरी, राम–कुंड और भरत–कूप इत्यादि का पारम्परिक कथा के संदर्भ में उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए अत्रि आश्रम में मुनीवरों का समागम, ब्रह्मज्ञान का दान और सत्संग का वर्णन छन्द संख्या पच्चीस में वर्णित है, तो छन्द संख्या इकतीस में भरतकूप के माध्यम से भरत के हृदय की विशालता और भरत के अलौकिक चरित्र से न केवल उसे भ्रातृ–स्नेह का चरित स्मारक कहा है अपितु भरतकूप के जल को मानव क्यों पीता है? उससे क्यों नहाता है इसीके माध्यम से कवि ने आज मानव–मानव के बीच पनप रहे द्वेष भाव को रेखांकित किया है–

भरत–हृदय सा भरत कूप है निर्मल–शीतल जल वाला।
अति गम्भीर विशाल वदन है हरता है ईर्ष्या ज्वाला।।
भरत अलौकिक चरित स्मारक भ्रातृ–स्नेह बहाता है।
द्वेष–भाव से भरा मनुज क्यों पीता और नहाता है।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–19)

तृतीय छवि के अन्तर्गत ही कवि ने राम–झरोखा, ताल–चौपड़ा तथा हनुमान–धारा का उल्लेख किया है। इसमें राम–झरोखा से जुड़ी हुई कथा को उसके कर्मों के अनुसार दण्डित और पुरस्कृत किया जाता है और मानव के कर्मों का साक्षात्कार भगवान राम इसी राम–झरोखे में बैठ कर करते हैं।[4] चित्रकूट का ताल–चौपड़ा नामक स्थल बूदेंला नरेश छत्रसाल की प्यारी रानी चंद्रकुँवरि की लोककथा से सम्बद्ध है। चंद्रकुँवरि स्वयं हरी दर्शन की प्यासी और अचल भक्तिमयी थी। कवि ने चित्रकूट के लोकमानस में चंद्रकुँवरि की कथा और ताल–चौपड़ा घाट का अमिट प्रभाव अंकित किया है उसके अनुसार–

जब तक चित्रकूट का घेरा तब तक चन्द्रकुँवरि रानी।
अमर रहेगी इस अचला पर कथा जगत ने यह जानी।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–15)

हनुमान–धारा से सम्बन्धित कथा जनश्रुति परम्परा से चली आ रही है। यहाँ पहुँचने पर मन को विश्रांति मिलती है। यहाँ का निर्झर तीन कुंडों को जलापूरित करता है तथा ऐसा माना जाता है कि राक्षसों को मरा हुआ जान कर महावीर थक कर मानो यहाँ विश्राम कर रहे हैं। कवि ने सीताकुण्ड में पहुँच कर कन्दरावासी साधुओं के वार्तालाप से मन के आह्लादित होने का वर्णन किया है। मन्दाकिनी के स्रोत स्थल का वर्णन करते हुए मन्दाकिनी नदी की आत्म कथा के माध्यम से कवि अत्रि और अनसूया के आश्रम में सीता को दिये गये सौभाग्य एवं आशीर्वाद के दान की चर्चा करते हैं।[5] मन्दाकिनी पुनः अत्रि, अनसूया और सीता के चरण प्रक्षालन की निम्न शब्दों में कामना करती है–

जा देखो उन गिरि–नयनों को जिनमें से मैं बहती हूँ।
तुम्हें बताऊँ और भला क्या स्वयं व्यथा अति सहती हूँ।।
अत्रि और अनसूया सीता!!! कैसे इन्हें भुलाऊँ मैं।
होगा अति सौभाग्य पुनः जो इनके चरण धुलाऊँ मैं।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–19)

तृतीय छवि का समापन करते–करते कवि चित्रकूट में व्याप्त ठग विद्या, ढोंग इत्यादि से व्यथित हो जाते हैं और यह कहने को विवशहोते हैं कि यदि आज चित्रकूट में व्याप्त इस प्रपंच और कौतुक को भगवान राम स्वयं आकर देखें तो वे अपने अश्रुधारा से निश्चय ही इसे डुबा देगें। कवि त्रेतायुग के चित्रकूट और अपने समय के चित्रकूट की दशा की तुलना करते हुए विलाप कर उठते हैं और इसे दुनिया का ढंग मान कर कि यह रंग बदलता रहता है, कह उठते हैं :–

एक समय था चित्रकूट में भील शील दिखलाते थे।
इस मयंक में यह कलंक भी नहीं नाम को पाते थे।।
'विभु' इतना क्यों विलख रहे हो सुनो गगन क्या कहता है।

इस दुनिया का ढंग यही है रंग बदलता रहता है।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–22)

2.क.IV चतुर्थ छवि–

'चित्रकूट चित्रण' में चतुर्थ छवि को कवि ने 'चित्रवन' की संज्ञा प्रदान की है। इस खण्ड में वन की चित्रमयता का वर्णन अत्यंत मनोहारी है एवं कथा विधान प्रायः ठहर–सा गया है। कवि चित्रवन का वर्णन करने के लिए कल्पना और प्रतिभा दोनों का मानवीकरण कर उनका अह्वान करता है क्योंकि ये ही दिव्य चक्षुओं का उन्मीलन करते हैं और बड़े–बड़े स्वनाम धन्य कवि इनके चेले हैं। कवि के शब्दों में –

(क) जैसे मेल समय सुरभि का स्वांतः कलि खिलाता है।

उच्च कल्पना प्रतिभा संगम कवि को सुधा पिलाता है।।

दूर आवरण हो जाते है दिव्य चक्षु खुल जाते हैं।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–24)

(ख) सूर–सूर तुलसी शशि तू ने काव्य गगन में चमकाये।

भूषण–भूषण देव देव सम केषव केषव कहलाये।।

चन्द और मतिराम बिहारी दास केशव कहलाये।

भातेन्दु सेनापति सुन्दर पद्माकर तेरे चेरे।।

(चित्रकूट चित्रणपृ0सं0–23)

चित्रवन नामक इस चतुर्थ छवि में प्रकृति के नाना रूप व्यंजित हैं। तरुलता गुल्मों से लेकर फलदार वृक्षों तक का व्यापक वर्णन हुआ है। चित्रकूट में प्राप्त होने वाली वानस्पतिक सम्पदा से कीट–भृंग पशु–पक्षियों का साहचर्य स्वाभाविक है। वस्तुतः उक्त सभी अवयव कभी रामकथा से सम्बद्ध होकर विषेषीकृत हुए थे। चतुर्थ छवि में वर्णित वस्तु–विधान प्रकृति वर्णन रामकथा और उससे जुड़े हुए कोल–भीलों की कथा से जुड़ा रहा है। यही तत्व 'चित्रवन' का कथा–तन्तु है जिसकी ओर कवि ने निम्न पंक्तियों में संकेत किया है–

जिनके तले बनाई कुटियाँ जिनके मृदु फल खाये थे।

ले प्रसून जिनके पहनाये जिन भीलों को भाये थे।।

उन वृक्षों से उन बेलों से, उन किरात–सन्तानों से।

परिचित हो ले वेग कल्पने! पद अंकित सुभ स्थानों से ।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–23)

कवि अपने पर्यटन के दौरान चित्रकूट की प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण एवं अंकन करते हैं। कली की पुलक से लेकर पराग कणों की सुगंधि तक वृक्षों की विशेषताओं से लेकर उनके फलों की सुस्वादुता के

वर्णन तक कवि की दृष्टि गई है। जीव–जन्तुओं और पशु–पक्षियों के व्यवहार एवं विशेषता को वर्णित करने में कवि सिद्धहस्त है। उदाहरण के रूप में सरीसृप वर्ग के सर्प की विशेषता निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

सरररररर फुंकार मारता कौन जीव यह जाता है।

पवनाशन! हाँ जीवाशन है जन्तुराज का भ्राता है।।

वाम हुआ वामी में रह कर भूला शुद्ध पवन पीना।

जिसकी लाठी भैंस उसी की वल्मीकों का घर छीना।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–33)

चतुर्थ छवि में आलंकारिक रूप में कुछ पौराणिक कथाओं का समावेशहै किन्तु उनका सम्बन्ध चित्रकूट अथवा राम की कथा से प्रत्यक्षतः नहीं जोड़ा जा सकता। इस संदर्भ में नीचे लिखी पंक्तियों में वर्णित मधुवन, कालिंदी गोवर्धन तथा मुरली–रव का प्रयोग कथा प्रस्तुति के बजाय कवि प्रकृति की काव्यात्मक प्रस्तुति में ही अधिक सन्नद्ध है–

माधव सा यह मंजुल धव है उद्धव सा वह चलदल है।

गूलर चिंचा गोप गोपियाँ मधुवन सा यह वनथल है।।

कालिन्दी सी पयस्विनी है गोवर्धन सा गिरिवर है।

श्याम–धेनु सी नीलगाय है मुरली–रव सा अलिस्वर है।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–39)

चित्रवन नामक छवि की समापन पंक्तियों में कवि चित्रकूट के भाव चित्र सहित प्रत्यावर्त्तन करते हैं और चित्रकूट के कण–कण को प्रभु की महिमा से प्रभावित पाते हैं। अपनी वर्णन तूलिका को यह कह कर विश्राम देते हैं कि प्रभु की महिमा अविगत और उसकी कथा अकथ है। जिस तरह सिन्धु के कुछ बिन्दुओं को गिन कर सिन्धु के अतल की गहराइयों को नहीं नापा जा सकता वैसे ही प्रभु की महिमा से प्रभावित चित्रकूट का समग्र वर्णन भी असंभव है–

विरम यहीं पर वर्णतूलिके! विभु की अकथ कहानी है।

उस अविगत की कथा अन्तलौं नहीं किसी ने जानी है।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–42)

2.क.V पंचम छवि–

'चित्रकूट चित्रण' के पंचम छवि को कवि ने 'उपसंहार' शीर्षक प्रदान किया है। इस खण्ड में चित्रकूट चित्रण करने में कवि अपनी प्रकृति प्रदत्त संसाधनों को अनंत गुणित करने की कामना करते हैं। दृश्यावलोकन करने के लिए दो आँखें उन्हें अपर्याप्त लगती हैं। उनकी लालसा है कि उनके रोम–रोम दृग बन जाते। इस खण्ड में कथा तन्तु अतीत की स्मृति के रूप में विद्यमान है जहाँ कवि आशा और निराशा में डूबते हुए दिखाई पड़ते हैं–

चित्रकूट यह वही वही है छवि विचित्र अनुपम सारी।
मन्दाकिनी वही बहती है वही मधुर कल–कल प्यारी।।
देव सदन से कहाँ तपोवन कहाँ तपोधन नर नारी ?
जो आदर्श अखिल भूतल के विभु–लीला की बलिहारी!!

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–44)

उन्हें आज के चित्रकूट में अत्रि जैसे विज्ञानियों के अभाव से निराशा होती है। तो वहीं इस परिवर्तनशील जगत में कवि वसुन्धरा पर भारत के गौरवशाली अतीत की पुनरावृत्ति के प्रति आशंकित है–

पुनः पुरातन निराकार–व्रत पुनः वही श्रतिरव होगा।
फिर वसुन्धरा पर हे भारत! तेरा अति गौरव होगा।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–44)

परिवर्तन–परिवर्द्धन–

विद्याभूषण 'विभु' द्वारा रचित 'चित्रकूट चित्रण' के वस्तु–विधान में कथा योजना अत्यन्त विरल है। 'चित्रकूट चित्रण' में प्रकृति वर्णन के बहाने त्रेतायुग में चित्रकूट में घटित राम–भरत के मिलन की कथा को ही 'विभु' जी ने स्थान दिया है। इसमें वाल्मीकि रामायण की भाँति कतिपय प्रमुख प्रसंगों का वर्णन नहीं है इन प्रसंगों में भरत को ससैन्य आता देखकर लक्ष्मण का आक्रोश में आना राम को उनको शान्त करना, भरत द्वारा राम को दशरथ मरण का समाचार देना और राम से राज्य ग्रहण का अनुरोध करना, राम द्वारा भरत के अनुरोध को अस्वीकार करना, चित्रकूट में राज्य सभा का आयोजन होना, राम द्वारा वनवास अवधि पूरी कर राज्य ग्रहण का आश्वासन देना तथा ऋषियों की आकाशवाणी सुन कर भरत की पादुकाएं लेकर वापस लौटना उल्लेखनीय है।[6]

'विभु' जी ने 'चित्रकूट चित्रण' के वस्तु–विधान में कामदगिरि पर तैंतीस करोड़ देवताओं का स्थान बताया है। यह यहाँ के तैंतीस तीर्थ स्थलों को कोटि–कोटि देवताओं द्वारा अंगीकृत करने के कारण अस्तित्ववान है–

तीर्थ स्थल तेंतीस यहाँ है सानु तले तटपर पाये।
मानो कोटि–कोटि देवों ने तेतीसो ही अपनाये।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–12)

'चित्रकूट चित्रण' के वस्तु–विधान में चित्रकूट के स्थानों से सम्बन्धित कथा का भी निवेश मिलता है जो कि इतने विस्तार से वाल्मीकि रामायण और तुलसी के 'मानस' में उपलब्ध नहीं है।

'चित्रकूट चित्रण' में वनस्पतियों के वर्णन तथा पाशु–पंक्षियों के स्वभाव वर्णन में कवि की वृत्ति खूब रमी है। उदाहरण के लिए शुष्क फल चिरौंजी के पकने में वर्ण परिवर्तन तथा भालू की भोजन प्रकृति तथा उसकी वृक्षारोपण पद्वति की विशिष्टताएँ क्रमशः निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

(क) पहले लाल हरी फिर होती फिर लोहित जो हो जाती।
क्या न मधुर स्वादिष्ट चिरौंजी अतिथि काम में वह आती।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–31)

(ख) शाकाहारी पर हिंसक है दुनियाँ से यह न्यारा है।
तरूपर उलटा चढ़ जाता है बचना कठिन हमारा है।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–34)

'चित्रकूट चित्रण' के वस्तु–विधान में जहाँ एक ओर ''ताल–चौपड़ा'' की कथा का नियोजन है तो वहीं दूसरी ओर एक छन्द में हिन्दी के कतिपय श्रेष्ठ कवियों की कल्पनां एवं प्रतिभा के आह्वान के बहाने पुण्य स्मरण भी वर्णित है।[7]

विद्याभूषण 'विभु' द्वारा प्रणीत 'चित्रकूट चित्रण' हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की रचना है। अतः इसमें रामकथा के पारम्परीण वस्तु–विधान के साथ–साथ आधुनिकता की झलक भी मिलती है। ये विन्दु रामकथा के मूल स्रोत से सर्वथा भिन्न एवं मौलिक हैं। चित्रकूट पहुँचने की प्रतिस्पर्धा में कवि के मन और रेल की स्थिति तथा इंजन से निकली धूम्र राशि में उड़ते अग्नि स्फुलिंग आदि का वर्णन निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं–

हमसे रेल अधिक उत्सुक है यह धड़कन बतलाती है।
हो उतावली दौड़ रही है पल में कोसों जाती है।।
× × × × × ×
विकल बालिका सी यह बिजली बारम्बार उछलती है।
धूम पुंज में अग्नि शिखा या बुझ–बुझ कर यह जलती है।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–5)

रामकथाओं के स्रोत ग्रंथों में चित्रकूट यात्रियों की प्रतीक्षा करते हुए पंडों के दल नहीं दिखाई पड़ते और न ही वहां अधर्मियों और ढोंगियों की जमात है जो लोगों को ठगने के लिए लालायित रहती है।

(क) पक्षी त्याग घोंसला जाते वैसे उतर पथिक आये।
वहाँ रेल की बाट देखते पंडाओं के दल पाये।।

(चित्रकुट चित्रण, 'पृ0सं0–4)

(ख) लेकर तेरी आड़ अधर्मी ठगते जाल बिछाते हैं।
संत दीन भूखों मरते हैं ढोंगी बैठे खाते हैं।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–20)

'चित्रकूट चित्रण' में कवि विभु जी ने वस्तु विधान के अंतर्गत चित्रकूट के नैसर्गिक सौन्दर्य और उससे सम्पृक्त तत्त्वों का वर्णन किया है। लेकिन चित्रकूट की अनुपम छवि और मन्दाकिनी के मधुर

कल–कल निनाद की अक्षुण धारा के बीच उनका आधुनिक बोध से युक्त चिन्तन कहीं प्रश्नाकूल होता है तो कहीं विशादग्रस्त हो जाता है जो क्रमशः निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

(क) देव सदन से कहाँ तपोवन कहाँ तपोधन नर–नारी।

(चित्रकुट चित्रण, पृ०सं०–44)

(ख) हे भगवान्! मयूर सारिणी अब तो यहाँ विचरती है।
कहाँ पुरंध्री? यहाँ पुंष्चली कभी न अद्य से डरती है।।

× × × × × ×

हे तरूपुंजों! श्वास थाम लो रूदन करें खगमृग! आओ।
हे सरिते! तू भी रोती जा जब तक तेरा जीवश हैं।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ०सं०–20) शास्त्री

2.ख. रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत चित्रकूट'–

करूण रस प्रधान खण्डकाव्य 'चित्रकूट' के रचनाकार रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' हैं और आपने इस काव्य के वस्तु–विधान को सर्गबद्ध रूप में नियोजित किया है। 'चित्रकूट' की कथा–वस्तु सात सर्गों में विस्तृत है तथा सर्गो का नामकरण प्रथम सर्ग, द्वितीय सर्ग, तृतीय सर्ग इत्यादि अभिधानों में क्रमिक रूप से किया गया है। प्रथम सर्ग आरम्भ करने से पूर्व कवि ने "श्री गणेशाय नमः" लिखकर माँ सरस्वती की स्तुति कर मंगलाचरण का निर्वाह निम्न शब्दों में किया है–

जगदम्बे, प्रत्यक्ष, प्रणत हूँ,
मेरे शिर पर हाथ धरो।
प्रस्तुत यह मानस–मराल है,
इसको आज सनाथ करो।

(चित्रकूट, पृ०सं०–2)

2.ख.1 प्रथम सर्ग–

कवि रामानन्द शास्त्री ने प्रथम सर्ग के वस्तु विधान में चित्रकूट के वर्तमान देशकाल पर स्थित होकर निर्वासित सीता, राम और सौमित्र के अतीत काल में पधारने की घटना का उल्लेख किया है–

यहीं पधारे थे निर्वासित–
सीता–राम तथा सौमित्र।
नर–नारायण से लगते थे
गौर–श्याम दोनों धन्वी।

(चित्रकूट, पृ०सं०–3)

चित्रकूट की हरी–भरी पर्वत मालाओं को देखकर कवि भाव समुद्र में गोते लगाने लगते हैं तथा कालिदास के मेघदूत के प्रणयी यक्ष की स्थली चित्रकूट को ही मानते हैं। इतना ही नहीं आदि कवि वाल्मीकि को आलोक प्रदान करने वाला तथा अपनी पत्नी के वचन वाणों से विद्ध हुए तुलसी के सिद्ध होने की भूमिका में चित्रकूट की महिमा का प्रभाव स्वीकार करते हैं। रहीम भी यहीं चिन्ता मुक्त हुए थे। चित्रकूट की चित्रमयता को देखकर तथा उसके गौरवमय प्रेरक स्रोत से प्रभावित होकर कवि चित्रकूट में निवास हेतु पर्ण कुटीर बनाना चाहते हैं। निम्न पंक्तियों से इसका उदाहरण द्रष्टव्य हैः–

जी में आता एक यहीं पर
छा लूँ मैं भी पर्णकुटी।
अपलक देखा करूँ तथा मैं
चित्रकूट की चित्र–पटी।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–7)

मंदाकिनी नदी के कल–कल निनाद में कवि को रामचन्द्र की चारु चंद्रिका की निर्मलता और उनकी कृत्रिमता का अव्याहत स्वर सुनाई देता है। मंदाकिनी के तट पर मनोरम स्फटिक–शिला के वर्णन के बहाने कवि पाषाणी अहिल्या की कथा का पावन स्मरण करते हैं। जनकपुरी की ओर सौमित्र के साथ प्रस्थान करते हुए राम को विष्वामित्र का अभिभावकत्व प्राप्त था। विश्वामित्र के कहने से ही राम ने अपने पद–रज से अहिल्या का उद्धार किया था। स्फटिक शिला को देखकर कवि के मन में यह कल्पना उठती है कि प्रभु के पद रज पाने के लिए क्या पुनः कोई मुनि पत्नी शाप ग्रस्त हुई है ? स्फटिक शिला को नगपति की आत्मजा मानकर कवि ने कल्पना की है कि इसका परिणय मानो चित्रकूट से हुआ है। इसी शिला पर आसीन होकर मीनाक्षी मिथिलेश कुमारी अपने कर–कमलों से मछलियों को धान वितरित करती थी। सीता के वन–विहार और उनकी संरक्षा–सुरक्षा में तत्पर वीर धनुर्धर सौमित्र की सतर्कता का कवि ने ऋतुओं के संदर्भ में वर्णन किया है। इस वर्णन क्रम में लक्ष्मण की कौन कहे वन्य पशु भी कहीं प्रहरी तो कही सहचर स्वभाव के वर्णित हुए हैं–

जहाँ चतुर्दिक प्रहरी बन कर।
रहते निशि–दिन पंचानन।
× × ×
शिक्षित मानो शाखा मृग हैं,
जो सहचर–से लगते हैं।
नहीं किसी के वस्त्राभूषण
लेकर वन में भगते हैं।

(चित्रकूट, पृ0सं0–12–13)

ऋषि–मुनियों की तपोभूमि पर हिंसक जीव–जन्तु भी सन्त स्वभाव के हो गये हैं। चित्रकूट के गगन–मण्डल में शैल शिखरों पर उमड़ते घनश्याम, उनके बीच में कौंधती हुई विद्युत कांति कवि के कल्पना लोक में राघव और सीता के चित्रकूट आगमन का पर्याय प्रतीत होती है:–

ऐसा होता ज्ञात कि मानो
राघव है फिर वन आये,
सती–शिरोमणि सीता को फिर
लेकर जीवन धन आये।

(चित्रकूट, पृ0सं0–15)

पर्ण–कुटीर में राम, लक्ष्मण और सीता के सानन्द निवास को वर्णित किया गया है। लक्ष्मण जब वन में कंदमूल लेने जाते थे तो उनका अनुगमन करते हुए हिरण भी जाते थे जो अपनी सींगों से कन्दमूल को खोद कर निकाल देते। लक्ष्मण उन्हीं कन्दमूल को लाकर अपनी भाभी को प्रदान करते तथा पुलकित–प्रमोदित मन से उन मृगों को अंक में भर लेते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि रघुपति का मंत्र उच्चारण जनक–लली द्वारा हरिणों को भगाने के लिए कमल–कली का प्रहार चित्रकूट के हरिणों की स्मृति में आज भी विद्यमान है। राम चरण चिह्नित पाषाणों पर वे हिरण उन्हीं चरण चिह्नों की सुवाश पाने को व्याकुल है–

उस त्रिमूर्ति को खोज रहे थे
फाँक–फाँक कर वन की धूल,
वे स्मृतियां इनके हृदय ों में
उपजाती हैं अब भी षूल।

(चित्रकूट, पृ0सं0–17)

फणिधरों द्वारा प्रभु के पद–पद्मों में मणियों का अर्पण, केका–रव करते हुए मयूरों का नर्तन, यह सब नृत्यवाद संगीतमय चित्रकूट का परिवेश राम के आराधना में मानों तत्पर व्यक्त हुआ है:–

कहने का तात्पर्य कि सुख के
वन में भी थे सब साधन,
नृत्य–वाद्य–संगीत सदा
करते हरि का आराधन।

(चित्रकूट, पृ0सं0–19)

प्रथम सर्ग के समापन के पूर्व कवि 'शास्त्री' जी ने यह वर्णित किया है कि राम, लक्ष्मण और सीता को जो सुख चित्रकूट की कुटिया में मिला वह साकेत के रम्य निकेत में भी दुर्लभ था। इन्द्रपुत्र जयन्त की

धृष्टता तथा राम द्वारा उसे कृपापूर्वक दंडित कर के एकाक्षी बना देने की घटना का भी कवि ने निम्न पंक्तियों में उल्लेख किया है–

सुरपति–सुत ने भी की यहीं धृष्टता थी
तन धर कर आया काग का था अभागा।
रघुपति दयिता को चंचु से यातना दी,
फिर नयन गँवाया, कर्म का भोग पाया।

(चित्रकूट, पृ0सं0–20)

एक दिन दाशरथी राम ने भयंकर फल देने वाला अपशकुनी स्वप्न देखा। राम ने जगकर दुःस्वप्न की कथा सीता और लक्ष्मण से कही तथा उस शोभाशाली कुटिया को त्याग कर शान्ति पाने की आकांक्षा से अत्रि का चरण–रज लेने के लिए अग्रसर हुए । किन्तु अवध नृप की चिन्ता उन्हें सताती रही वैदेही के माध्यम से शोक हरण का प्रयास करने का भाव वर्णित हैं–

कुंजों–कुंजों अटन करते दिव्य विंध्याटवी की
सीता के वे सहचर चले सौम्य सौमित्र को ले,
चिन्ता भारी अवध नृप की ही उन्हें भी सताती
वैदेही भी हरण करती शोक को सूक्तियों से।

(चित्रकूट, पृ0सं0–21)

कवि रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' ने संस्मरणात्मक यात्रावृत्त के माध्यम से अतीत में झाँकने के शिल्प का प्रयोग कर 'चित्रकूट' खण्डकाव्य के प्रथम सर्ग में राम, लक्ष्मण, सीता के मंदाकिनी तट निवास और स्फटिक शिला से सम्बद्ध कथा का वर्णन किया है। चित्रकूट की झाकियों को प्रस्तुत करते हुए कल्पनाओं के माध्यम से रामकथा के अनेक प्रसंगों को कथा–क्रम में गूँथ दिया है। उदाहरण के लिए पाषाणी आहिल्या उद्वार की कथा, दशरथ मृत्यु की आशंका की ओर संकेत करने वाली दाशरथी राम के दुःस्वप्न की कथा का नियोजन कवि की अपनी मौलिक उद्भावना और परिवर्तन–परिवर्द्धन के तहत उल्लेखनीय है। वाल्मीकि रामायण और 'रामचरितमानस' में स्फटिक शिला और जयन्त का प्रसंग अयोध्यावासियों के चित्रकूट से अयोध्या लौटने के बाद की घटना के रूप में वर्णित हुआ है किन्तु कवि त्रिवेदी जी ने कथा प्रस्तुति के अपने शिल्प–कौशल से उसे औचित्यपूर्ण रीति से स्फटिक–शिला प्रसंग के साथ ही वर्णित कर दिया है।

2.ख.II द्वितीय सर्ग–

'चित्रकूट' खण्डकाव्य के द्वितीय सर्ग का प्रारम्भ कवि 'शास्त्री' जी ने अत्रि–अनुसूया आश्रम के वर्णन से किया है। प्रेक्षकगण को आश्रम देखने का आमंत्रण देते हुए कवि ने राम के वन निर्वासन की कथा को अग्रांकित पंक्तियों में व्यक्त किया है:–

लक्ष्मण–सीता संग आये थे
रघुकुल के अवतंस यहाँ
रानी कैकेयी का भी हा,
पाहन–तुल्य कलेजा है,
जिसने दासी के कहने से
तुमको वन में भेजा है।

(चित्रकूट, पृ0सं0–24)

अनुसूया द्वारा सीता के प्रति आशीष एवं सहानुभूति व्यक्त करने पर सीता अपने वनवास अवधि और अनुभव के प्रति संतोष व्यक्त करती हैं। राम और लक्ष्मण के वार्तालाप में वन वैभव और वन्य–जन्तुओं का स्नेहमय साहचर्य वर्णित हुआ है। स्वभावतः जन्मजात वैरी माने जाने वाले जीव–जन्तु भी वहाँ मधुर–मिलाप करते हुए वर्णित हुए हैं। वे वानर हैं तो क्या हुआ उनमें नर से भी अधिक मानवता वर्णित हुई हैं–

मृग–शावक को देखो व्याघ्री
निज–सुत–संग पिलाती स्तन्य
शिखी परों से धर्माकुल–अहि–
फण पर छाया करता धन्य!

(चित्रकूट,पृ0सं0–26)

चित्रकूट की दिनचर्या आश्रमों में व्यतीत होने वाली यज्ञ–हवन, सतसंग इत्यादि से परिपूर्ण है। सीता और लक्ष्मण के वार्तालाप में कवि ने वन निवास के प्रति संतोष की भावना का वर्णन किया है। लक्ष्मण तो यहाँ तक कहते हैं कि यद्यपि माताएं यह सोच रही होगी कि हम लोग वनवास में दुःखी हैं किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न है। वन में उन्हें अपार सुख मिल रहा है और कुल मिला कर मझली माँ कैकेयी ने उनके ऊपर उपकार ही किया है–

लक्ष्मण ने फिर कहा–कि मझली
माँ ने किया बड़ा उपकार।
भाग्योदय है आज हमारा
पाया वन में सौरभ अपार।

(चित्रकूट, पृ0सं0–29)

लक्ष्मण और वैदेही कभी–कभी अयोध्या की स्मृतियों में खो जाते हैं। कवि ने उनके वार्तालाप के अन्तर्गत अयोध्या के राजनिकेतन और चित्रकूट के आश्रमों की तुलना भी प्रस्तुत की है। वैदेही कहती हैं:–

अवध–जनकपुर से कम है यह
वैभवशाली शैल नहीं
यही खटकती एक कमी है
यहाँ चतुष्पथ मैल नहीं।

(चित्रकूट, पृ०सं०–36)

राजभवन में फव्वारें थे तो चित्रकूट में रम्य प्रपात है, अवधपुरी में यदि सरयू के अद्भुत घाट हैं तो चित्रकूट में भी पयस्विनी ने पत्थरों को काट कर नैसर्गिक घाटों का निर्माण किया है। सीता तो यहाँ तक कहती है कि राजभवन का शृंगार राज चिह्न के रूप में प्रचलित छत्र और चँवर नरपतियों को वनश्री से ही प्राप्त होते हैं। वार्ता के क्रम में सीता कहती हैं कि उन्होंने जनकपुर में अपने पिता के भवन में जब चित्रकूट के चित्रित दृश्य देखे थे तो मानो वह उनके भव्य भविष्य की ओर इंगित कर रहे थे–

मैंने देखा पितृ–भवन में
चित्रकूट के चित्रित दृश्य
इंगित करता था लाने को
मुझे यहीं पर भव्य भविष्य।

(चित्रकूट, पृ०सं०–39)

सीता की युक्तियों को सुनकर राम मनोरंजन के हित जनकपुर की राज–वाटिका का प्रसंग छेड़ देते हैं। सीता के अनुपम सौंदर्य का यशोगान करवाने के इस प्रसंग के माध्यम से स्वयंवर की घटना का कवि ने उल्लेख किया है। कथा वर्णन की पूर्वदीप्ति पद्धति का आश्रय लेकर कवि ने जनकपुर की रंगभूमि में शिव–धनुष को देखकर दशकंधर का डरना, दुर्धश योद्धाओं द्वारा धनुष को टस से मस न कर पाना, शिव–गिरिजा की कृपा से शिवकोदण्ड का खण्ड–खण्ड होना तत्पश्चात्, परशुराम का प्रचण्ड क्रोध प्रकट करना तथा किसी विधि से वह संकट दूर होकर राम–सीता का परिणय होना इत्यादि का वर्णन किया है। रघुकुल मणि श्रीराम उक्त घटनाओं का स्मरण कर जब सुकुमारी सीता के वन–वन विचरण करने की बात सोचते हैं तो विकल हो जाते हैं। इन भावुक क्षणों में सीता स्वयं को भूमिजा कह कर राम का परितोष करती है–

बोली–प्रियतम, समझ रहे हो
क्या मुझको तुम छुई मुई?
मैं तो पृथिवी की पुत्री हूँ,
सुलभ रहे यह माँ की गोद।

(चित्रकूट, पृ०सं०–42)

राम, सीता और लक्ष्मण का निवास तथा उनके वार्तालाप परस्पर सहानुभूति, समर्थन और अनुमोदन से पुष्ट थे अतः उनकी वनवास अवधि मोदपूर्वक व्यतीत हो रही थी। अत्रि ऋषि से जब तीनों शिक्षा–दीक्षा लेकर कामदगिरि लौटते हैं तो उस बेला में प्राकृत जन की ही भाँति अत्रि–अनुसूया तथा राम लक्ष्मण और वैदेही सिसकते विलखते वर्णित हुए हैं–

प्राकृत जन–सम–तापस रोये
रोई अनसूया माता
सिसक–सिसक वैदेही रोई
रोये राम लषण भ्राता।

(चित्रकूट, पृ0सं0–43)

कवि शास्त्री जी ने उस वियोगाक्रांत रूदन की घटना को अपने पर्यटन काल तक जोड़कर चित्रकूट के शिलाखण्ड पयस्विनी सर, निर्झर इत्यादि के रोदन–रणन में प्रतिबिम्बित किया है।

'चित्रकूट' खण्डकाव्य के द्वितीय सर्ग के वस्तु–विधान में कथा प्रस्तुति के संदर्भ में कवि त्रिवेदी जी ने स्रोत ग्रंथों वाल्मीकि रामायण एवं 'रामचरितमानस' की तुलना में अनेक परिवर्तन–परिवर्द्धन किया है। जनकपुर के स्वयंवर की घटना पूर्वदीप्ति पद्धति से विस्तार सहित प्रस्तुत की गई है। यह 'चित्रकूट' खण्डकाव्य कवि की मौलिक उद्भावना है। संवेदनशीलता के क्षणों में जब सीता के वन विचरण पर राम विह्वल हो जाते हैं तो सीता द्वारा स्वयं को भूमिजा कहना उनके जन्म से सम्बन्धित कथा का वर्णन आदि। इसी प्रकार अत्रि–अनुसूया आश्रम से विदा होते समय प्राकृत जन की भाँति अत्रि–अनुसूया तथा राम–लक्ष्मण–सीता का रूदन भी स्रोत ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होता।

2.ख.iii तृतीय सर्ग–

'चित्रकूट' खण्डकाव्य के तृतीय सर्ग के वस्तु–विधान में कवि शास्त्री जी ने चित्रकूट के वन, पर्वत, निर्झर इत्यादि का रघुकुल की कथा से साहचर्य वर्णित किया है। उनके अनुसार यह चित्रकूट अरण्य वह पुण्य स्थल है जहाँ समस्त अवधपुरी आयी थी और यहाँ के वृक्ष विह्वल होकर युग–युगान्तर से रघुकुल की कथा सुना रहे हैं। कवि ने रघुकुल की अकथ कहानी में रघुवंश के महान् राजाओं का वर्णन किया है–

सगर–भागीरथ–रघु–दिलीप–सा
कौन हुआ नृप दानी है?
हरिश्चन्द्र ने पत्नी तक को
बेचा, किन्तु न मोह किया।

(चित्रकूट, पृ0सं0–47)

दशरथ मृत्यु की घटना का उल्लेख कर कवि ने मंथरा दासी के षड्यंत्र की बातों का उल्लेख किया है जिसके परिणाम स्वरूप राघव को राजतिलक के स्थान पर वनवास दिया गया था। वह पाषाण

हृदय कैकेयी भी चित्रकूट में आकर द्रवित हो गई थी। अनुताप और आत्मग्लानि से परिपूर्ण होकर वह राम से अयोध्या लौट चलने का निवेदन करती है तथा समस्त दुर्घटना का कारण स्वयं को स्वीकार करती है–

राजभवन में उपवन में मैं
उपजी हूँ सत्यानाशी
मति न बदलती मेरी ही तो
क्या कर लेती वह दासी ?

(चित्रकूट, पृ0सं0–49)

कंटकाकीर्ण विपिन में सीता के कष्टों का अनुमान कर तथा सुमित्रा और कौशल्या के वैधव्य का कारण स्वयं को मानकर कैकेयी धरती पर रूदन करते हुए धड़ाम से गिर पड़ती है तो राम उन्हें अवलम्ब प्रदान करते हैं–

बचपन में तुमने पाला था
मुझको अंक बिठा कर अम्ब।
आज दयामयि, पुत्र तुम्हारा
राम तुम्हें देता अवलम्ब।

(चित्रकूट, पृ0सं0–51)

कैकेयी को ढाढ़स बंधाते हुए राम यह कहते हैं कि कौशल्या ने भले ही उन्हें जन्म दिया हो लेकिन वास्तविक लालन–पालन तो कैकेयी ने ही किया है और चित्रकूट से लेकर अवध तक अपना ही तो राज्य विस्तार है। अतः पश्चाताप व्यर्थ है। राम यहाँ तक कहते हैं कि राम के रहते कैकेयी को काल भी नहीं डरा सकता, यमराज को भी वे मार भगायेंगे। इतना कहते–कहते राम अत्यंत भावुक हो जाते हैं तथा उनकी दशा का कवि ने इन शब्दों में वर्णन किया है–

गोद बिठा जननी को यों ही
राम विलाप लगे करने,
और भ्रमित हो असम्बद्ध वे
प्रचुर प्रलाप लगे करने।

(चित्रकूट, पृ0सं0–53)

राम के प्रलाप से समस्त जनता विकल हो जाती है यहाँ तक कि पशु–पक्षी, जीव–जन्तु जैसे प्राणियों की कौन कहे वनस्पतियाँ, निर्झर, शिला–खण्ड, धरती, वायु और आकाश सभी अधीर हो हाहाकार कर उठते हैं–

पीला पड़, रो गिरा भूमि पर
पात–पात कँपता– कँपता

रो–रो गिरि से गिर कर निर्झर
अति चीत्कार लगा करने,
मारूत सिर धुन–धुन इस वन में
हा–हा–कार लगा करने।

(चित्रकूट, पृ0सं0–53)

गुरू वशिष्ठ ने मंत्रपूत जल से सबका सम्मोहन, सम्भ्रम दूर किया। वशिष्ठ के समक्ष कैकेयी विक्षिप्ता–सी बन कर स्वयं का दोष देती है। भरत द्वारा भर्त्सना करने की बात कहकर वह इस सत्य का उन्मीलन करती है कि जिस भरत के कारण उसने चोरी की वह भी तो उसको चोर कहता है। वह अपने को डायन, पिशाचिन आदि अनेक सम्बोधन प्रदान करती तथा वर याचना के समय अपनाये गये त्रिया चरित्र का स्मरण करती है। कवि शास्त्री जी ने कैकेयी के रुदन से चित्रकूट में करूणा की कालिंदी बहने का वर्णन किया है–

यो ही डहक–डहक कर रानी
सबको यहाँ रूलाती थी,
गिरि–उपत्यका में करूणा की
कालिन्दी बह जाती थी।

(चित्रकूट,, पृ0सं0–57)

गुरू वशिष्ठ ने कैकेयी को सान्त्वना देने के लिए जीवन, कर्म और जगत की दार्शनिक व्याख्या की तथा उन्हें क्षत्राणी होने का शपथ देकर धैर्य धारण करने को कहा। उनके अनुसार ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो जन्म लेने के बाद कुछ न कुछ पाप न करता हो जन्म और मृत्यु जीवन के चक्रयुग्म हैं। जिस प्रकार गंगा के सागर में विलीन हो जाने पर तथा बादलों में चन्द्रमा के छिप जाने पर भी उनकी महानता और अस्तित्व की सत्ता विद्यमान रहती है, उसी प्रकार मरण आत्मा के शुद्ध सनातन स्वरूप को समाप्त नहीं कर सकता। गुरू वशिष्ठ यह भी कहते हैं कि दशरथ की मृत्यु को लेकर शोक करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि "आत्मा वै साक्षात् जायते पुत्रः"[8] के सिद्धान्त के अनुसार राजा दशरथ अपने चार पुत्रों के रूप में विद्यमान हैं। वशिष्ठ राम के वनवास का पार्थिव कारण बताते हैं तथा दशरथ की मृत्यु की घटना को पूर्व जन्म के श्राप का परिणाम बताते हैं–

दुष्ट–दमन–हित देवि, राम को
वन में तो आना ही था,
पूर्व–शाप–वश नर–पति को भी
सुरपुर में जाना ही था।

(चित्रकूट, पृ0सं0–60)

कैकेयी अंजलिबद्ध हो कर गुरू वशिष्ठ से शाप प्रसंग का वर्णन करने का अनुरोध करती है। गुरू वशिष्ठ यह कहकर कि यद्यपि वह आख्यान मर्मान्तिक है फिर भी हृदय व्यथा का निवारण करेगा। अतः संध्योपासना के बाद कैकेयी की जिज्ञासा का श्रवण करने हेतु शाप प्रसंग की कथा कहेंगे।

तृतीय सर्ग के कथा–विधान में कवि शास्त्री जी ने वाल्मीकि रामायण और 'रामचरितमानस' के कथा–विधान में कतिपय परिवर्तन–परिवर्द्धन किया है। इन घटनाओं में चित्रकूट के तरू, भूधार जीव–जन्तुओं द्वारा रघुकुल की कथा का वर्णन, कैकेयी को ढाढ़स बन्धाते हुए राम का विलाप तथा उसे प्रभावित होकर चित्रकूट की जनता और प्रकृति का हाहाकार वर्णन और कैकेयी को सांत्वना देते हुए गुरू वशिष्ठ द्वारा दशरथ मरण के हेतु रूप में पूर्व–जन्म के शाप प्रसंग का संकेत उल्लेखनीय है।

2.ख.iv चतुर्थ सर्ग–

'चित्रकूट' खण्डकाव्य के चतुर्थ सर्ग के वस्तु–विधान में कवि शास्त्री जी ने गुरू वशिष्ठ द्वारा दशरथ मरण के हेतु रूप में शाप प्रसंग का वर्णन किया है। आषाढ़ मास और पावस ऋतु के प्रारम्भ में सरयू नदी के तीर पर अवधपति अजनन्दन दशरथ मृगया हेतु आये थे। अनेक प्राकृतिक अपशकुनों एवं झंझावातों ने भावी अनिष्ट की सूचना दी। उसी समय सरयू के तीर पर 'बुदबुद' शब्द की आहट पाकर यह अनुमान करके कि कोई मृग पानी पीने आया है दशरथ ने शब्दवेधी बाण चला दिया। परिणामतः कातर स्वर में श्रवण कुमार मृत प्राय होकर भूमि पर यह कहते हुए गिर पड़ा–

कंद–मूल–फल पर जीता हूँ,
किसका विधे किया अपराध,
मेरी हत्या करने को छिप
कौन कहाँ बैठा था व्याध।

(चित्रकूट, पृ0सं0–65)

मातृ–पितृ भक्त श्रवण कुमार मर्मान्तक पीड़ा से विकल होकर माँ की गोद और पिता के चरण स्पर्श करने की कामना करते हुए सुरधाम जाने की बात करता है। राजा दशरथ अपने को हत्यारा कहते हुए भ्रमवश तीर चलाने की बात कहते हैं तथा श्रवण कुमार का परिचय पूछते हैं। श्रवण कुमार बताता है कि वह अपने प्रज्ञाचक्षु जनक–जननी का एक मात्र आधार है, उनकी प्यास बुझाने के लिए निकट के आश्रम से वह जल लेने आया था। श्रवण कुमार यह भी निवेदन करता है–

और कृपा कर मेरे उर से
आप निकालें विषमय बाण,
अंधे तृषित पिता–माता है
उनके शीघ्र बचा लें प्राण।

(चित्रकूट, पृ0सं0–69)

राजा दशरथ कम्पित कर से श्रवण कुमार के तन से ज्यों ही वाण निकालते हैं, माता–पिता का ध्यान करते हुए श्रवण कुमार प्राण त्याग देता है। राजा दशरथ पीठ पर श्रवण कुमार का शव लादकर दाहिने हाथ में जल पात्र लेकर मुनि दम्पति के पास पहुँचते हैं तथा निवेदन करते हैं–

'जल–पूरित घट लाया हूँ मैं,
पीकर हो लें दोनों षान्त,
मैं दशरथ हूँ, अन्य न समझें,
मत चिन्तित हो, मत उद्भ्रान्त।

(चित्रकूट, पृ0सं0–71)

श्रवण कुमार के माता–पिता और दशरथ का वार्तालाप होता है। दशरथ को चाण्डाल पुरूष–पिशाच, हत्यारा, पाषाण हृदय तथा प्रजाहन्ता कहकर श्रवण कुमार के माता–पिता धिक्कारते हैं तथा निवेदन करते हैं कि जहाँ श्रवण कुमार की दिवंगत देह है वहीं ले जाकर उन दोनों के प्राणों का हरण उसी वाण से दशरथ कर लें। राजा दशरथ के यह कहने पर कि वह श्रवण कुमार के शव को साथ ले आये हैं। श्रवण कुमार का शव प्राप्त कर उसके बूढ़े अन्धे माता–पिता वात्सल्य से परिपूर्ण होकर श्रवण कुमार की सेवा धर्म का बखान करते हैं–

तू सर्वस्व हमारा था रे,
इन आँखों का तारा था,
हम लोगों के ऊपर तू ने
अपना सब कुछ बारा था।

(चित्रकूट, पृ0सं0–74)

अन्धे मुनि दम्पति की दशा अत्यन्त हृदय विदारक थी। वे कभी दाँत पीसते हुए दशरथ पर क्रोध व्यक्त करते थे तो कभी हाथ–पैर पटक कर अपने–आप से युद्ध करते थे। कभी दशरथ को धिक्कारते थे तो कभी दशरथ से अनुनय करते थे कि वे उनकी कुटिया में आग लगा दें। मुनि दम्पति रो–रो कर बेहाल थे उनकी मर्मान्तिक पीड़ा अन्ततः उनका प्राणान्त कर देती है किन्तु मरने के पूर्व वे दशरथ को श्राप देते हैं

हम जैसा तेरा भी होगा
पुत्र–विरह ही काल कराल।

(चित्रकूट, पृ0सं0–76)

दशरथ उनके शाप को शिरोधार्य कर उनकी अन्त्येष्टि करते हैं जड़–जंगम सभी इस कारूणिक दृश्य के साक्षी बनकर मर्माहत थे। कर्म–फल का सिद्धान्त निरूपित करते हुए दशरथ की मृत्यु का मुनि दम्पति के शाप से कार्य कारण सम्बन्ध बताते है–

अनजाने में पाप हुआ था,

किन्तु मिला उसका परिणाम
पुत्र–शोक से तड़प–तड़प कर
नृप भी हाय, गए सुरधाम।

(चित्रकूट, पृ0सं0–77)

श्रवण कुमार की कष्ट भरी इस कथा को सुनकर सभा अपना सिर धुनती रही। हाँ, कैकेयी को थोड़ा सम्बल अवश्य मिला। इस प्रतीति के उद्‌बोध होने पर कि दशरथ मरण का एकमेव कारण वह नहीं है, कवि ने उसकी मनः स्थिति के निरूपण में ये पंक्तियां लिखी हैं–

सुनी कहानी अब मत सोचो–
'की है मैंने कोई भूल।'
भस्म त्वरित कर डालो उनको
कसक रहे जो उर में शूल ।

(चित्रकूट, पृ0सं0–78)

चतुर्थ सर्ग का कथा विधान स्रोत ग्रंथों में प्राप्त वस्तु–विधान से सर्वथा परिवर्तित एवं परिवर्द्धित है। स्रोत ग्रंथों में श्रवण कुमार की कथा का प्रसंग दशरथ के दिवंगत होने के समय वर्णित है न कि चित्रकूट स्थल में। इसके अतिरिक्त श्रवण कुमार का कथा–प्रसंग स्रोत ग्रंथों में प्रकटित अथवा अवान्तर प्रसंग के रूप में वर्णित है। जबकि कवि रामानन्द शास्त्री जी ने इसे 'चित्रकूट' खण्डकाव्य में अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है और 'चित्रकूट' खण्डकाव्य का चतुर्थ सर्ग इसी के निमित्त सृजित किया।

2.ख.v पंचम सर्ग–

'चित्रकूट' खण्डकाव्य के पंचम सर्ग के प्रारम्भ में कवि ने वर्णन किया है कि गुरू वशिष्ठ के उपदेशों का वर्णन किया है जिससे जब कैकेयी को थोड़ा परितोष होता है तो राघेवेन्द्र केवल कैकेयी को निर्दोष कहते हैं अपितु यह भी कहते हैं कि वे भरत से भी कहेंगे कि भरत कैकेयी पर रोष न करें। निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य हैः–सच कहता हूँ, सपने में भी

दे न सकूँगा तुमको दोष,
बन्धु भरत से भी कहता हूँ,

ये न करेंगे तुम पर रोष।

(चित्रकूट, पृ0सं0–80)

राम अपना दृढ़ संकल्प व्यक्त करते हुए कहते हैं कि जब वे राज प्रासाद से निकल पड़े हैं तो दीन–दलितों के दुःख का निवारण कर ही वापस लौटेंगे। वे माँ कैकेयी के प्रति कृतज्ञता भी व्यक्त करते हैं कि उनकी कृपा से ही राम को जनता रूप जनार्दन का साक्षात्कार हुआ है। ग्राम–ग्राम, जनपद–जनपद में

दुर्दान्त दैत्यों के अनाचार–अत्याचार की काली छाया को निस्तेज एवं निर्मूल करने का राम संकल्प व्यक्त करते हैं। उनके कथन में सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति, निरक्षरता के विरूद्ध साक्षरता का प्रसार, कुपोशित नौनिहालों के प्रति सरोकार, निर्धन ग्रामीणों के लिए चिकित्सकीय सहायता की व्यवस्था करना इत्यादि वे अपनी प्राथमिकता बताते हैं। उपेक्षित कोल–किरातों शबरों और निषादों की सेवा में ही वे अपने पितृ शोक की विस्मृति का मार्ग ढूँढ़ने की बात करते हैं। माँ कैकेयी से वह अपना संकल्प निम्न शब्दों में व्यक्त करते हैं–

ग्राम–ग्राम को कर देना है
माँ, मुझको साकेत–समान,
विपद–विपन्नों को करना है
मुझको अति सम्पत्ति–निधान।

(चित्रकूट, पृ0सं0–85)

गुरूजन माताओं और नागरिकों को प्रणाम कर वे उनसे अयोध्या लौट जाने का निवेदन करते हैं। गुरू वशिष्ठ और विदेहराज जनक राम के अटल निश्चय को जानकर केवल प्रेमाश्रु बहाते हैं। लक्ष्मण भी माँ कैकेयी से जब घर लौट जाने के लिए कहते हैं तो भरत यह निवेदन करते हैं कि कुछ निर्णय लेने से पहले उनको भी सुन लिया जाय। राम भरत के प्रेमाग्रह को स्वीकार करते हुए कहते हैं–

"कहो–कहो हे भरत! न रोको
तुम अपना उद्‌गार अहो!
नयन–नीरनिधि के पहना दो
मुझको मौक्तिक–हार अहो!"

(चित्रकूट, पृ0सं0–86)

भरत के ननिहाल से अयोध्या लौटने की घटना का वर्णन करते हैं। उस अवसर पर अयोध्या में प्रवेश करते समय चतुर्दिक अपशकुन हो रहे थे तथा भयानक सन्नाटा पसरा हुआ था। भरत की यह आशंका की कोई भीषण अनिष्ट हुआ हो और यह आशंका सचिव सुमन्त्र द्वारा दी गई दशरथ मरण की सूचना से सिद्ध हुआ :–

जब सुमन्त्र के द्वारा हमको
प्रकृत वृत्त सब ज्ञात हुआ
मूर्च्छित हो तब गिरे धरा पर
दारूण वज्राधात हुआ ।

(चित्रकूट, पृ0सं0–90)

पितृ मरण की घटना को भरत के मुख से सुन कर राम पुनः रो पड़ते हैं तथा भरत को अपने वनवास जाने की घटना का विवरण सुनाते हैं कि किस तरह वात्सल्य सम्बलित दशरथ मणिरहित फणिधर की भाँति अपना सिर धुन रहे थे। वन जाने से राम को रोकते हुए उन्होंने यहाँ तक प्रस्तावित कर दिया था कि हे राम, तुम शिव–पार्वती का नाम लेकर वीर कौशल नरेश की भाँति आचरण करो और मुझे बंदी बना लो–

वन को मत तुम जाओ, लौटो,
बन्दी मुझे बना दो राम,
वीर कोसलाधीश बनो तुम
लेकर हर–गिरिजा का नाम।

(चित्रकूट, पृ०सं०–93)

राम ने भरत को यह भी बताया कि दशरथ को भाइयों के मध्य प्रेम भाव का पूर्ण अभिज्ञान था। अपनी चिन्ता उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त की थी–

भरत तथा शत्रुघ्न–युग्म जब
मातुल–गृह से आयेंगे,
सुनकर तब वे समाचार यह
धरती पर गिर जायेंगे।

(चित्रकूट, पृ०सं०–94)

दशरथ को इस बात का भी कष्ट था कि जनकपुरवासी जब वैदेही के वनगमन की घटना सुनेगें तो उन्हें धिक्कारेंगे। उन्होंने वन की भीषण परिस्थितियों एवं कष्ट का उल्लेख कर वैदेही को रोकने की अप्राण से चेष्टा की थी। उस अवसर पर गुरूदेव वशिष्ठ आ गये थे। कर्तव्य की कठोरता को अंगीकार कर और भावीत्व के समक्ष पराधीनता को स्वीकार कर राम ने स्वयं ही रथ के अश्वों को हाँका था। उस समय राम ने मुड़ कर देखा तो गुरू वशिष्ठ दशरथ को दूसरे रथ पर बैठा रहे थे। राम ने कहा उसके बाद क्या हुआ दशरथ घर कैसे गये उनका कोई समाचार न मिल सका। इतना कहते–कहते कि दशरथ का प्रण पूर्ण हो रहा है इस पर संतोष व्यक्त कर के राम अवधि पूरी हो जाने पर ही अयोध्या लौटने की बात करते हैं और अपनी इन बातों से सभा को शोकमग्न कर देते हैं–

नहीं मिलेगी तब तक उनकी
किन्तु चिता की हमको धूल,
यही खटकती बात सदा है,
चुभ जाता है उर में शूल।

(चित्रकूट, पृ०सं०–98)

कथा विधान में परिवर्तन–परिवर्द्धन की दृष्टि से 'चित्रकूट' खण्डकाव्य का पंचम सर्ग महत्त्वपूर्ण है। इसमें कथा प्रस्तुति के स्तर पर कवि शास्त्री जी ने न केवल आधुनिकता के तत्त्वों का समावेश किया है अपितु कुछ मौलिक उद्भावनाएं भी की हैं। वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण ने कहा था कि दशरथ को बन्दी बना लिया जाय। कवि त्रिवेदी जी ने दशरथ द्वारा स्वयं को बन्दी बनाये जाने की पेशकश करायी है। स्रोत ग्रंथों में भरत के ननिहाल से अयोध्या लौटने पर अपशकुनों का घटित होना तथा अयोध्या का भयावह दिखना तो वर्णित है किन्तु उसका कथा स्थल त्रिवेदी जी ने बदल दिया है। पूर्ववर्ती ग्रंथों में कहीं भी चित्रकूट में भरत द्वारा इस घटना का राम के समक्ष वर्णन नहीं मिलता। वाल्मीकि रामायण एवं 'रामचरितमानस' में सुमंत्र राम की प्रेरणा से रथ हांकते हैं जबकि कवि त्रिवेदी जी ने यह वर्णित किया है कि यद्यपि सुमन्त्र राम, लक्ष्मण, वैदेही को वन पहुँचाने गये हैं किन्तु रथ के अश्वों को हांकने का काम स्वतः राम ने किया है।

2.ख.vi. षष्ठ सर्ग–

'चित्रकूट' खण्डकाव्य के षष्ठसर्ग के प्रारम्भ में वस्तु विधान के अन्तर्गत कवि शास्त्री जी ने राम और भरत के वार्तालाप को सचिव सुमंत्र द्वारा शोक विह्वल होकर श्रवण करते हुए वर्णित किया है। उन्हें चुप कराते हुए राम पूछते हैं कि जब सुमन्त्र अयोध्या पहुँचे तो क्या उस समय दशरथ की मृत्यु हो चुकी थी। सुमन्त्र ने अपने आँसू पोंछते हुए इसका उत्तर देते हुए बताया–

कहा कि–'जब मैं पहुँचा धाम,
तब अचेत होकर लेते थे
नृप हे राम, तुम्हारा नाम।'

(चित्रकूट, पृ0सं0–100)

सुमंत्र ने विस्तार सहित राज दशरथ की विकलता का वर्णन किया है। दशरथ को किसी भी प्रकार से चैन नहीं मिल पा रहा था। वे संज्ञा शून्य से हो गये थे। उनमें जब कभी–कभी उनकी चेतना उद्बुद्ध होती थी तो वे राम, लक्ष्मण, वैदेही के साथ–साथ भरत और शत्रुघ्न का भी नाम लेकर शोकाकुल हो जाते थे–

राम–राम लक्ष्मण वैदेही
रो रोकर तब भी कहते।
कभी भरत–रिपुसूदन का भी
शोकाकुल लेते थे नाम।

(चित्रकूट, पृ0सं0–101)

सुमन्त्र ने दशरथ की मानसिक विकलता के वर्णन के साथ–साथ उसे संदर्शित करने वाली आंगिक चेष्टाओं का भी सजीव वर्णन किया है। दशरथ की आँखें राम के वियोग में मूँदी हुई थी, स्वर

अस्फुट था, कभी हाथ पैरों को पटकते थे, करवटें बदलते थे तो कभी राम को बाहों में भरने के लिए शून्य में हाथ बढ़ाते थे। मृत्यु के पूर्व जीवन की स्मृतियाँ ताजी हो जाती हैं। उन स्मृतियों में खोकर दशरथ कभी मग्न हो जाते थे तो कभी रूदन करने लगते थे। दशरथ की प्रलापोन्मादमयी उद्वेग पूर्ण दशा को सुनकर राम ने सुमंत्र से दशरथ के अन्तिम उद्गारों को सुनने की इच्छा व्यक्त की–

राघवेन्द्र ने कहा कि– "कहिए
उनकी अन्तिम बातों को,
हाथ हृदय पर रख सह लूँगा
मैं सारे आघातों को।

(चित्रकूट, पृ0सं0–102)

राम के वियोग में दशरथ की मर्मान्तक दशा का वर्णन कवि त्रिवेदी जी ने मनोयोग पूर्वक अत्यन्त विस्तार से किया है। दशरथ का हृदय अत्यन्त अधीर था राम के वनगमन के पश्चात उन्हें प्रतीत हो रहा था मानो सब खेल खत्म हो गया है। मध्य रात्रि के अन्धकार में मानों हाथ से तोता उड़ गया हो। अयोध्या को भस्मसात करने वाली चिन्गारी मन्थरा की मति थी जिसने कैकेयी को अपनी दुर्नीति और छल–छद्म के पाश में बांध दिया था। सुमंत्र बताते हैं कि दशरथ को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था जिसे निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है:–

रह न सकेगी अब केकयीं सुहागिनी,
डंस गई मुझे वह बन कर नागिनी
उसने ही ढा दिया है भरत को खोह में
राज्य न करेंगे वे भी राम के ही मोह में।

(चित्रकूट, पृ0सं0–104)

सुमंत्र ने यह भी बताया कि राम, लक्ष्मण और सीता के वनवास का स्मरण करते हैं और इस बात से चिन्तित होते हैं कि इस घटना को जब तत्वज्ञानी विदेह राज जनक सुनेंगे तो परम धीरवान होते हुए भी अपना सिर धुन लेंगे। दशरथ प्रलाप करते हुए यह भी कहते हैं कि काश भरत–शत्रुघ्न ही इस समय अयोध्या में आ जाते वे राम लक्ष्मण के प्रतिबिम्बवत हैं। उन्हें देखने से ही नैनों को विश्रान्ति मिलती है। यदि भरत अयोध्या आ जाते उनके साथ वन में जाकर ही जहाँ भी राम लक्ष्मण होते उनके पास पहुँच कर सीता को साकेत लौटाने का उपक्रम किया जाता। राम को निर्मोही कहते हुए वे कहते हैं कि वस्तुतः राम तो राजनीति की चक्की के पाटो में दले गये हैं। दशरथ का स्वर आत्म भर्त्सना से युक्त था–

मैं वृद्ध बना हूँ यहाँ गृही
वे युवक बने हैं तपस्पृही
मुझको तो भूल–भुलैयों में

भुला गये, वे भुला गये।

रूला गये, वे रूला गये।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–109)

मृत्यु की आहट पाकर दशरथ कौशल्या से यह कह रहे थे कि उनसे जीवन की गाड़ी आगे खींची नहीं जाती और करवट बदलकर उन्होंने सुमन्त्र की ओर देखा था। अविरल अश्रु प्रवाह के मध्य प्रश्नावली उपस्थित हो गई थी :–

सखे लाड़िले आ गये औध में क्या ?

यहाँ सौध में आ गई मैथिली क्या ?

खड़े मौन हो, क्यों नहीं बोलते हो ?

बची आश भी भूल में ही मिली क्या?

(चित्रकूट, पृ0सं0–111)

सुमंत्र ने राम और भरत को बताया कि अपने प्रश्नका उनसे उत्तर न पाकर राजा दशरथ का दुख दुःसह हो गया। काल की करालता और कपाल के अंक की अपरिहार्यता के सामने दशरथ की राम मिलन की आशा से प्रेरित जिजीविशा ने हथियार डाल दिये। राम के लौटने की आशा समाप्त हो जाने पर दशरथ ने सुमन्त्र से कहा कि अब उनका जग से नाता छुटा जाता है। उनके इस जड़गात्र को भूशय्या प्रदान की जाये और मुँह में गंगा जल और तुलसी दे दी जाय।

"जग से नाता छूटा भय्या,

अब दे दो मुझको भू–शय्या।

देह अरे, मेरी यह झुलसी,

दो मुझको गंगा–जल–तुलसी।

(चित्रकूट, पृ0सं0–114)

राजा दशरथ का निर्देश पाकर सुमंत्र ने उसी के अनुरूप आचरण किया। राजा दशरथ राम–राम कहते हुए गोलोकवासी हो गये। सुमन्त्र ने कहा इसके आगे रूदन की ही कथा शेष रह जाती है। सुमंत्र द्वारा दशरथ मरण की घटना के करूणापूर्ण वर्णन प्रवाह में हरि के धैर्य का पोत भी बह गया तथा सभा में चतुर्दिक करूणा की सरिता प्रवाह का प्लावन आ गया।

त्रिवेदी जी कृत 'चित्रकूट' खण्डकाव्य का षष्ठसर्ग कथा प्रस्तुति की दृष्टि से स्रोत–ग्रंथों वाल्मीकि 'रामायण' एवं 'रामचरितमानस' की तुलना मे परिवर्तित एवं परिवर्द्धित है। कथा की दृष्टि से कवि त्रिवेदी जी ने षष्ठ सर्ग का सम्पूर्ण कलेवर दशरथ मरण घटना के वर्णन के निमित्त सृजित किया। सुमन्त्र द्वारा राम और भरत के समक्ष दशरथ की मृत्यु पूर्व मनः स्थिति का चित्रकूट में वर्णन कवि की निजी उद्भावना है।

2.ख.vii.सप्तम सर्ग–

'चित्रकूट' खण्डकाव्य के सप्तम सर्ग का प्रारम्भ कवि त्रिवेदी जी ने चित्रकूट आये हुए अयोध्यावासियों की दिनचर्या के वर्णन से किया है। अयोध्यावासियों के चित्रकूट आ जाने से विपिन की नीरवता के स्थान पर चहल–पहल का वातावरण हो गया था। वहाँ राजसभा, रनिवास और नागरिकों के अस्थाई आवास निर्मित किए गये थे। भोजन–भजन–भ्रमण के अतिरिक्त लोगों को अन्य काम नहीं था। वहाँ लगा हुआ हाट भी विशिष्ट थी जिसमें अभीष्ट वस्तु लेने के लिए कोई दाम नहीं देना पड़ता था–

ऐसी हाट लगी थी, जिसमें
देना पड़ता दाम न था;
भोजन–भजन, भ्रमण को तज कर
मानों कोई काम न था।

(चित्रकूट, पृ0सं0–117)

निशा आगमन पर कवि ने पौरजनों की सभा का वर्णन किया है जिसमें सूर्यवंश के गुरू वशिष्ठ तथा मिथिलापति जनक विद्यमान थे। सभा में राम और भरत का वार्तालाप वर्णित हुआ है। भरत अपनी किंकर्त्तव्यविमूढ़ता तथा दैन्य का वर्णन करते हैं। उनके कथन में व्याज स्तुति के माध्यम से गंगा तट पर केवट द्वारा प्रभु के पाद प्रक्षालन की कथा वर्णित हुई है–

हे कृतार्थ कैवर्त्त सभी विधि
जिसने प्रभु के पद धोये,
जह्नु–सुता के तट पर उसने
कोटि पुष्य–पादप बोये।

(चित्रकूट, पृ0सं0–118)

सभा के मध्य में भरत सत्ताधीषों की अहंकार वृत्ति का उल्लेख करते हैं। गुरूजनों के समक्ष मुँह को खोलने के लिए क्षमा याचना चाहते हैं तथा राज्य को अनर्थ का कारण निरूपित करते हुए अपने लिए त्याग बताते हैं:–

राज्य अरे, तू त्याज्य सदा है,
तू करता है नित्य अनर्थ,
तेरे कारण जगतीतल में
रक्त–पात होता है व्यर्थ।

(चित्रकूट, पृ0सं0–119)

भरत के निवेदन को सुन कर मुनि वशिष्ठ की आज्ञा से मिथिला नरेश जनक संसार में जीवन निर्वाह के प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग की मीमांसा प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार में दोनों मार्ग क्रमशः कर्म

और ज्ञान प्रधान होने के कारण भिन्न–भिन्न प्रतीत होते हैं लेकिन वस्तुतः दोनों का लक्ष्य एक ही है आनन्दानुभूति में विलीन होना। अपने दार्शनिकविचारों को व्यक्त करते हुए जनक निष्कर्ष रूप में कहते हैं वे संसार को निस्सार नहीं कहेंगे क्योंकि यहाँ उन्हें राम और भरत जैसे दिव्यतम उपहारों की उपलब्धि हुई है–

हम कृतज्ञ हैं, नहीं कहेंगे–
'है निस्सार सकल संसार'
रात–भरत–सा जिसने हमको
दिया दिव्यतम है उपहार।

(चित्रकूट, पृ०सं०–122)

दशरथ के कथन द्वारा कवि ने विंध्याचल के सोये रहने की कथा, ध्रुव तारे का परहित चिन्ता का उल्लेख तथा शिव द्वारा विषपान की घटना का अपने कथन के युक्ति–युक्त पोषण में वर्णन किया है। राम–भरत के अतुलनीय प्रेम का वर्णन करते हुए जब मिथिलापति जनक का कंठ अवरूद्ध हो जाता है तब गुरू वशिष्ठ स्थिति को सम्भालते हैं तथा सभा के मध्य राम को बोलने के लिए निर्देश देते हैं। राम पूज्य पिता के प्रण की रक्षा को ही धर्म मानते हैं तथा गुरू वशिष्ठ इस संकल्प पूर्ति हेतु आशीर्वाद की याचना करते हैं–

"मान्य, धर्म में और कर्म में
मैं न समझता हूँ कुछ भेद;
यदि न करूँगा धर्म–विहित मैं
पुण्य–कर्म तो होगा खेद।"

(चित्रकूट, पृ०सं०–126)

गुरू वशिष्ठ के प्रति राम कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं कि कौशलनरेश दशरथ के महाप्रयाण के पश्चात जब उनका परिवार विपत्ति के सागर में डूब रहा था तो गुरू वशिष्ठ की कृपा रूपी पतवार ही कर्णधार बनी। राम अपना निर्णय सुनाते हुए कि उन्हें पूज्य पिता की आज्ञा का पालन करना ही अभीष्ट है गुरू वशिष्ठ भरत को अयोध्या लौट चलने के लिए कहते हैं–

दृढ़ निश्चय लख राघेवेन्द्र का
रघुकुल गुरू बोले साह्लाद–
"हे रामानुज, लौट चलो अब
अग्रज का ले आशीर्वाद।

(चित्रकूट, पृ०सं०–127)

अर्ध निशा में गुरू वशिष्ठ द्वारा दिये गये इस निर्णय पर कि प्रातः अयोध्या के लिए प्रस्थान करना है। अवधपुरी के रनिवास के अतिरिक्त सब लोग अपने–अपने प्रशंसा में चले गये। माँ कौशल्या

करूण क्रन्दन करती रही कि वह अपने तीन–तीन अनुपम रत्नों को वन में छोड़ कर कैसे चली जाये। चौदह वर्षों की लम्बी अवधि जिसमें बारम्बार पुण्य पर्व तथा अन्य साधन राम, लक्ष्मण, सीता की स्मृतियों को प्रतिक्षण करा देगी तब वैधव्य के साथ–साथ सुत शोक के क्षण कैसे पार हो पायेंगे–

चौदह वर्षों में आयेंगी
कितनी उषा, निशा, सन्ध्या ?
तब कैसे सुत–शोक सहूँगी।
बन कर अनपत्या–वन्ध्या !

(चित्रकूट, पृ0सं0–129)

राम दुखार्त माँ से यह कहते हैं कि विश्वामित्र प्रदत्त दिव्यायुध, वशिष्ठ की अनुकम्पा तथा तुम्हारे पुण्यों से रक्षित राम अनाथ नहीं है। वह गौरव के षिखर पर आरूढ़ होने के लिए माँ से आशीष की याचना करते हैं ताकि वनवास की अवधि को बिता कर वह शीघ्र लौटें और माँ के पद–पद्मों का वन्दन कर सके। राम द्वारा प्रबोध का यह प्रयत्न भी रनिवास के विलाप कलाप को शान्त न कर सका। माँ कौशल्या भी राम को छोड़ कर प्रशंसा में नहीं गई और सुमित्रा भी चुप–चाप रोती रही। अयोध्या के लिए प्रस्थान करने का क्षण आ पहुँचा। सम्बल के रूप में कैकेयी नन्दन भरत को प्रभु राम ने चरण पादुकाएँ प्रदान की–

श्री केकयी–नन्दन को पुनीता
दो पादुकायें हरि ने पदों को,
छिपे कहीं बादल देख शोभा
साकेत के श्यामल नीरदों की।

(चित्रकूट, पृ0सं0–133)

जनक, वशिष्ठ तथा अयोध्या के जन समुदाय चित्रकूट कानन के पथ पर दृगंबु से करूणा की धारा प्रवाहित कर रही थी। सप्तम सर्ग का समापन करते हुए कवि ने उल्लेख किया है कि इसके उपरान्त राम, लक्ष्मण तथा सीता थोड़े ही दिन वहाँ रहे। उनके जाने से कामदगिरि और चित्रकूट का वन परान्तर अनाथ तो हो गया किन्तु वहाँ का कण–कण प्रणम्य तथा पुनीत हो गया। यह पावनता प्रभु राम के पद–रज का ही परिणाम थी। कवि त्रिवेदी जी ने अपने कथन की पृष्टि में मुनि गौतम की प्रिया पाषाणी अहिल्या के उद्धार की कथा को उद्धृत किया है–

जिनके पुण्य पदों की रज से
पाषाणी मुनि–प्रिया तरी।

(चित्रकूट, पृ0सं0–133)

चित्रकूट के उसी पुण्य वन पथ पर चलकर कवि दैविक, दैहिक और भौतिक संताप के निराकरण का उल्लेख करते हैं । अग्रांकित पंक्तियों में चित्रकूट को सर्वतोभावेन प्रणम्य बताते हैं–

प्रणम्य–चित्रकूट है, प्रणाम्य है वनस्थली
प्रणम्य है सबन्धु राधवेन्दु और मैथिली
प्रणम्य है कुरंग में विहंग–वृक्ष वल्लरी
प्रणम्य है पवित्र पल्वलादि और निर्झरी।

(चित्रकूट, पृ0सं0–134)

सप्तम सर्ग के कथा विधान में कवि ने वाल्मीकि 'रामायण' और 'रामचरितमानस' के चित्रकूट सभा प्रसंग और भरत के अयोध्यावासियों सहित प्रत्यावर्तन की घटना के वर्णन में कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन किया है। मिथिलापति जनक का जीवन और कर्म का दार्शनिक विवेचन जैसा रामानन्द शास्त्री कृत 'चित्रकूट' में वर्णित किया गया है वैसा विस्तार स्रोत ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होता। त्रिवेदीजी द्वारा रचित 'चित्रकूट' खण्डकाव्य में जनकपुर के रनिवास का उल्लेख नहीं है जिसमें भरत राम से चरण पादुका की याचना नहीं करते, अपितु राम उन्हें स्वयं पादुकाएं प्रदान करते हैं। स्रोत ग्रंथों में अयोध्यावासियों के चित्रकूट से लौटने के निर्णय के बाद अयोध्या के लोग कुछ दिनों तक 'चित्रकूट' के पावन स्थलों का दर्शन करते हैं तथा भरतकूप की स्थापना करते हैं। कवि त्रिवेदी जी ने इन प्रसंगों को चित्रकूट खण्डकाव्य से अलग कर दिया है। चित्रकूट खण्डकाव्य के कथा–विधान में स्रोत ग्रंथों की तुलना में दशरथ मरण के प्रसंग को अतिरिक्त विस्तार देकर कवि ने करूणा की धारा प्रवाहित कर दी है।

2.ग. मोहनलाल गुप्त कृत 'चित्रकूट'–

'चित्रकूट' खण्डकाव्य के वस्तु–विधान में कवि मोहन लाल गुप्त 'चातक' ने कथा वस्तु को सर्गों में बद्ध न कर के अविरल रूप से प्रस्तुत किया है। भरत शत्रुघ्न एवं निषादराज के साथ राम का पावन आश्रम ढूँढ़ने के लिए अग्रसर होते हैं। वन्य परिवेश में मन्दाकिनी नदी के तट पर राम,लक्ष्मण,सीता के निवास स्थल के रूप में पर्णकुटीर के परिवेश वर्णन से खण्डकाव्य की कथा प्रारम्भ होती है। यह पर्णकुटीर पाकड़, जम्बु और रसाल वृक्षों की शीतल सुखद छाया के मध्य में स्थित है उसके समक्ष वट वृक्ष के नीचे यज्ञ वेदिका बनी हुई है जिससे आश्रम की पावनता का बोध होता है। लक्ष्मण तपस्वी वेश में बिरवों के सिंचन के लिए जल लाते हुए वर्णित हैं तथा राम प्रमोदित मुद्रा में स्फटिक शिला के ऊपर आसीन हैं और वैदेही मृग विहगों को न केवल भोग वितरण कर रही हैं अपितु उनके सान्निध्य में वन वैभव के अलौकिक आनन्द का अनुभव भी करती हैं। चातक की 'पिय–पिय' की ध्वनि और कोयल की 'कूहू–कूहू' की कुहक के मध्य सारिकाओं और सुग्गों की राम और सीता से अंतरंगता इन पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं–

वैदही से लिपट सारिका
कहती सीते! सीते! गा,
राज अंक में रामचन्द्र के

आर्य! आर्य! बोला सुग्गा !

(चित्रकूट, पृ0सं0–6)

राम जानकी से प्रश्न करते हैं कि उन्हें वन में कैसा प्रतीत हो रहा है? उत्तर में सीता संतोष व्यक्त करती हैं । उन्हें प्रकृति से मुनियों के स्वभाव एवं आचरण लक्षित होते हैं। शुक–सारिका मानों वेद ऋचाओं का पाठ करती हों तथा वृक्ष कहीं एक पैर से खड़े होकर तो कहीं हाथ उठाये वे इष्टों को आकृष्ट करते हैं तो कहीं समाधिस्थ–से प्रतीत होते हैं। जीव–जन्तुओं का वैर रहित भाव सीता को सर्वाधिक प्रभावित करता है–

सभी विहंगम यहाँ बैठते

वैर स्वभाविक विस्मृत कर,

व्याघ्र–हरिण दोनों जल पीते

नित्य इसी निर्झरणी पर।

(चित्रकूट, पृ0सं0–8)

पर्णशाला के निकट निर्झरिणी के तट पर राम और सीता प्रसन्न एवं प्रफुल्लित होकर प्रकृति के सौन्दर्य का अनुभव कर ही रहे थे कि उत्तर दिशा के व्योम में गर्द–गुबार लक्षित होता है। जीव–जन्तुओं में अप्रत्याशित हलचल और तुमुल कोलाहल होता है। यह कोलाहल क्यों है, यह जानने के लिए राम और सीता अग्रसर होते ही हैं कि कोल–किरात भरत के आगमन की सूचना देते हैं–

किंचित् कोल्ह किरातों ने तब

आकर सत्वर सभय कहा,

साथ लिए चतुरंग वाहिनी,

नाथ, भरत आ रहे यहाँ।

(चित्रकूट, पृ0सं0–12)

इस सूचना से राघव को एक ओर तो पिता का वचन पालन और दूसरी ओर भरत के भ्रातृत्व का संकोच घेर लेता है किन्तु, लक्ष्मण क्रोध से विदग्ध हो जाते हैं। वह मानते हैं कि कैकेयी पुत्र भरत राम को वन में अकेला जानकर उन्हें मारने के लिए चतुरंगिणि सेना ले कर आ रहे हैं। लक्ष्मण उग्र से उग्रतर होते जाते हैं। अपनी प्रत्यंचा के नाद से धरती और अम्बर प्रतिध्वनित करते हैं और राम से आज्ञा माँगते हैं कि वे उन्हें अपना बाहु–विक्रम दिखाने की अनुमति दे। लक्ष्मण रौद्र रूप धारण किये हुए भरत शत्रुघ्न और उनकी वाहिनी को अकेले ही पराभूत कर देने की बात कर देते हैं–

प्रथम निकलते हैं लक्ष्मण के

कटि–त्रोण से बाण यहाँ,

या सानुज वाहिनी भरत के

तन–त्राण से प्राण यहाँ।

(चित्रकूट, पृ0सं0–15)

किन्तु राम लक्ष्मण की आशंका से सहमत नहीं हैं। उनका तर्क है कि धर्मशील गुण एवं बुद्धि से सम्पन्न भरत मर्यादा का परित्याग नहीं कर सकते। असम्भव नहीं कि भरत राज–वैभव को ठुकरा कर विरह, विषाद और स्नेह भाव से परिपूर्ण होकर वन में इसलिए आ रहे हों कि हम लोगों को वन से वापस लेकर पूज्य पिता जी को प्रसन्न करना चाहते हैं। इसी वार्तालाप के मध्य शत्रुघ्न और निषाद के साथ भरत वहाँ पहुँच जाते हैं । उनकी दशा अत्यन्त दीन है। कवि चातक जी ने भरत की दशा का वर्णन इन शब्दों में किया है–

शिर पर जटा–जूट धूसर थे,
तन पर थे धारण वल्कल
नील जलज–मुख आज हुआ था
सना पंक में पांडु–कमल।

(चित्रकूट, पृ0सं0–17)

भरत भाव–विभोर हो कर राघव का चरण–स्पर्श करने के लिए बढ़ते हैं और उन्हें अपने ह्रदय से लगा लेने के लिए अग्रसर होते हैं। शोक और कृशता के कारण भरत आर्य कहते हुए लड़खड़ाकर राम के चरणों में गिर पड़ते हैं। रूदनरत शत्रुघ्न भी प्रभु का चरण स्पर्श करते हैं। राम दोनों भाइयों को विह्वल भाव से अपने ह्रदय से लगा लेते हैं। कवि चातक जी इन त्रिभूतियों के मिलन को चित्रकूट में तीर्थराज की संज्ञा प्रदान करते हैं–

और मूर्ति मय तीनों का ही
मिलन यहाँ पर आज हुआ,
इस कारण इस चित्रकूट तो
तीर्थराज का राज हुआ।

(चित्रकूट, पृ0सं0–20)

सौमित्र ने जब व्यग्र भरत को नतमस्तक होकर नमन किया तो भरत ने उन्हें ह्रदय से लगा लिया तथा लक्ष्मण के विभ्रम की सुधि करके सीता खाँसने के बहाने मुस्कुराई। रघुकुल के इन सदस्यों ने निःशब्द होकर कुछ क्षण यथोचित पद–वन्दन स्नेहाशिश में व्यतीत किये । शोक विरह की दावाग्नि को अश्रु जल से प्रशमित किया। इसके अनंतर राम ने भरत से परिजन–पुरजन की कुशल–क्षेम के बारे में पूछा–

भरत भ्रातृ वर, धर, पुर में है
सब प्रकार सब कुशल वहाँ?

"कैसी कुशल? कौशल में?

कुशल रूप जब आप यहाँ।"

(चित्रकूट, पृ०सं०–23)

राम ने भरत से माताओं और रघुकुल की वधुओं का भी कुशलक्षेम जानना चाहा तथा भरत के चित्रकूट आगमन का कारण पूछा। प्रत्युत्तर में भरत ने रौद्र स्वर से कैकेयी के कुचक्र के कारण दशरथ की मृत्यु का समाचार कहा। भरत ने कैकेयी को माता नहीं बल्कि पितृभक्षिणी कहते हुए अपशब्द कहे–

मातृ नहीं, वह पितृ–भक्षिणी

अति विषाक्त अहिनी से भी

सुअर, श्वान की मृत्यु मरे वह

मिले न जगह नरक में भी।

(चित्रकूट, पृ०सं०–25)

राम की शरणागत वत्सलता की दुहाई देते हुए भरत ने अपने चित्रकूट आने का कारण यह बताया कि समस्त अयोध्यावासी उन्हें अयोध्या वापस ले चलने के लिए आये हैं क्योंकि यही धर्म सम्मत और न्याय संगत है। पिता दशरथ के महाप्रयाण का समाचार सुनकर राम कुछ क्षण तक अवाक रह जाते हैं और उसके बाद व्याकुल होकर फूट–फूटकर बिलखने लगते हैं। उनके रुदन से पशु–पक्षी और लता–वृक्ष सभी रोने लगते हैं। जड़ और चेतन के रूदन का वह तुमुल नाद सुनकर राजमाताओं को यह निश्चय हो गया कि भरत ने राम का आश्रम ढूँढ़ लिया है और राम तथा भरत की भेंट हो चुकी है। माताए वात्सल्य भाव से राम के पर्ण कुटीर की ओर अग्रसर होती हैं। उनके साथ गुरू वशिष्ठ भी हैं। राम गुरू पत्नी अरुंधती के चरणों में प्रणाम करते हैं तथा गुरू पत्नी उनका परितोष करती हैं। राम की व्यथित दशा का कवि चातक जी ने मार्मिक वर्णन किया है। गुरू वशिष्ठ, सुमित्रा, कौशल्या सभी ने कातर मना राम को प्रबोधित करने का उपक्रम किया किन्तु, इस प्रक्रिया में वे लोग स्वयं भी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे–

किंकर्तव्य–विमूढ़ हुए सब

किंचित् सी मूर्च्छा आई,

उर में भार, गिरा में जड़ता

नयनों में दृढ़ता छाई।

(चित्रकूट, पृ०सं०–31)

आत्मग्लानि से परितप्त कैकेयी राम से कहती है हे राम तुम्हारे लिए हर्ष और विषाद, वरदान और शाप सभी समतुल्य है। इसलिए तुम विकलता का परित्याग कर रघुवंश के कलंक का प्रक्षालन करो। वह अपने को पाप शिरोमणि कहती हैं–

अघ में अघ के अघ से भी तो

और बड़ा है मेरा अघ,

दण्ड–संहिता की असह्य में,

कौन कहेगा मुझे अनघ।

(चित्रकूट, पृ0सं0–32)

राम माँ कैकेयी के ग्लानियुक्त वचनों को सुनकर अयोध्या में घटित दारुण घटनाओं के पीछे विधाता अर्थात् भाग्य का ही हाथ बताते हैं। वह कहते हैं कि उन्हें क्या मालूम था कि राजा दशरथ प्रण पालन के पीछे प्राणों का परित्याग कर देंगे। राम ने विनत भाव से समस्त आगन्तुकों का यथायोग्य सत्कार किया तथा दिवंगत पिता को जलांजलि देने की इच्छा प्रकट की। शोक–स्नेह से व्याकुल समस्त समाज मंदाकिनी के तट पर सुमंत्र के नेतृत्व में प्रभु का अनुसरण करता है। कैकेयी राम से कहती हैं कि गुरू वशिष्ठ जैसा कहें उसी प्रकार तर्पण इत्यादि की क्रिया सम्पन्न करो। गुरू वशिष्ठ बताते हैं कि श्राद्ध वस्तुतः श्रद्धा पर ही आधारित होता है। राम को गुरू वशिष्ठ यह भी निर्दिष्ट करते हैं कि मनस्ताप का त्याग कर पिण्ड–दान और पितृ–तर्पण करना उचित होगा। हृदय में श्रद्धा भाव धारण कर दशरथ का ध्यान करते हुए राम ने परिजन–पुरजन के साथ श्राद्ध की प्रक्रिया पूरी की। राम जब श्राद्ध क्रिया सम्पन्न करके आश्रम लौटे तो इसी बीच कोल–किरातों ने झाड़ियों और वनस्पतियों को काट कर न केवल पर्णनिकेतन का निर्माण कर दिया था अपितु वहाँ कन्द–मूल–फलों के हाट भी लगा दिया था जहाँ समस्त वस्तुएं निर्मूल्य ही प्राप्त थीं। चित्रकूट का दण्डक वन अपनी ही सुन्दरता से मुदित था। वह रात्रि राजा दशरथ के पावन संस्मरणों में व्यतीत हुई।

अगले दिन गुरूजन से प्रेरित होकर पुरजनों ने संध्या वन्दना के उपरान्त गंगा से राम के अयोध्या प्रत्यागमन की याचना की। वन्यचरों ने अपनी शक्ति और सीमा भर अयोध्यावासियों का स्वागत–सत्कार किया। राम और भरत के घनश्याम रूप को देखकर मयूर नर्त्तन कर रहे थे तथा मधुपगण मानों अपने गुंजार से रघुकुल का गुण–गान कर रहे थे–

राम–भरत घनश्याम देखकर

करने लगी केकि नर्त्तन

गुन–गुन करने लगे मधुप गन

गुन–गुन–गुन–गुन रघुकुल–गुण।

(चित्रकूट, पृ0सं0–41)

अपराह्न काल में अयोध्यावासियों की एक सभा का आयोजन हुआ जिसमें गुरू वशिष्ठ ने भरत को निर्देश दिया कि वह राम के समक्ष अपना अभीष्ट प्रस्तुत करें। भरत अत्यन्त विनम्र स्वर में करबद्ध

निवेदन करते हैं कि यद्यपि पिता दशरथ ने कैकेयी को वरदान देकर संतुष्ट किया और कैकेयी द्वारा उनको अयोध्या राज्य का आधिपत्य प्रदान किया है किन्तु वे इस दायित्व का वहन करने में सर्वथा असमर्थ हैं–

बल विहीन साधारण विषधर
कर सकता महि–भार–वहन?
शशक श्रृंग से कर सकता क्या
मैं वंध्यासुत का मर्दन?

(चित्रकूट, पृ0सं0–43)

अपनी समर्थता व्यक्त करते हुए भरत का स्वर रूद्ध हो जाता है तथा उनकी सम्पति का प्रजाजन एवं गुरू अनुमोदन करते हैं। राम भरत को धर्मध्वज कहते हुए भ्रातृत्व प्रेम का मानदण्ड मानते हैं तथा यहाँ तक कहते हैं कि हे भरत में तुम्हारे आग्रह पर गृह प्रत्यागमन की कौन कहे अयोध्या का राज्य भी ग्रहण कर सकता हूँ किन्तु, यह उचित नहीं है। धर्म और कर्तव्य मार्ग पर चलना ही औचित्य पूर्ण होगा–

भ्रातृ, किन्तु है उचित यही तज
कंपित पद कुठार–घालन,
प्रमुदित मन से हम–तुम दोनों
करें पितृ–आज्ञा पालन।

(चित्रकूट, पृ0सं0–45)

राम भरत को यह भी समझाते हैं कि भरत को तो केवल अनुवर्ती प्रतिनिधि बन कर रहना है, बाकी अयोध्या का राज्य जिन पौर, पंच, मंत्री एवं गुरूवर हैं, वे ही उसका संचालन करेंगे। भरत विज्ञजनों की सभा में यह कहते हैं कि राजमाता बनने के लोभ में उनकी अनुपस्थिति में माँ कैकेयी ने जो कुछ किया वह उन्हें कदापि अभीप्सित नहीं था। अत्यन्त भावुक हो कर भरत यह कहते हैं कि उन्होंने मृत दशरथ के मुख पर मुद्रित उनके हृदय की अभिलाषा को पढ़ा है। उनकी अन्तिम अभिलाषा यही थी कि आप अयोध्या लौट आयें। राम को लौटाने के लिए भरत अनेक युक्तियाँ प्रस्तुत करतें हैं। गुरू और माँ का पद पिता से श्रेष्ठ बताकर भरत आग्रह करते हैं कि राम उनकी इच्छाओं का पालन करते हुए अयोध्या लौट चलें। भरत की युक्तियों का समस्त जन समर्थन करते हैं। भरत की युक्तियाँ तर्क, ज्ञान एवं नम्रता से परिपूर्ण थी जिसे गुरू वशिष्ठ तथा ऋषि–मुनि भी अत्यन्त प्रभावित हुए। भरत के वचनों को सुनकर जब सारी माताएं अश्रुमोचन करते हुए अचेत होने लगीं तब कौशल्या ने यह कहा कि उन्हें राम के वन जाने का रंच मात्र भी शोक नहीं हैं, उन्हें तो शोक भरत की दशा का है। कौशल्या के यह कहने पर कि–

स्वाती के घनश्याम करो अब
इसे प्रतिगमन–विंदु प्रदान,

या सौमित्र–भरत का कर दो

परिणत पारस्परिक स्थान।

(चित्रकूट, पृ0सं0–54)

सुमित्रा स्तब्ध होती है और लक्ष्मण उदास हो जाते हैं। कैकेयी की ग्लानि से परिपूर्ण मनोदशा का चित्रण हुआ है–

लुटी–पिटी केकयी देखती

पुनः–पुनः धरती अंबर,

किन्तु सूझता नहीं उसे कुछ

धरती कहाँ?कहाँ पुष्कर?

(चित्रकूट, पृ0सं0–55)

कैकेयी की विवश दशा को देखकर राम मंत्रबद्ध सर्प की भाँति प्रश्वांस भरते हैं तथा भरत को कौशल्या का राज्य तथा स्वयं को वनवास दिये जाने सम्बन्धी दशरथ के निर्णय के पीछे कारणभूत दो अन्तर कथाओं का उल्लेख करते हैं। एक तो मातृमह कैकेयी द्वारा कैकेयी–विवाह के अवसर पर ही कैकेयी पुत्र के राज्याभिषेक की दशरथ द्वारा प्रतिस्तुति तथा दूसरे देवासुर संग्राम में दशरथ का कैकेयी को दो वरदान प्रदान करने हेतु प्रतिज्ञावद्ध होना। राष्ट्र–धर्म और पुत्र–धर्म दोनों के मध्य संतुलन स्थापित करते हुए राम दशरथ की इच्छा को भरत के समक्ष इन शब्दों में व्यक्त करते हैं–

वे दे गए भरत से सुत को

भार राज्य–संरक्षण का,

और मुझे मुनियों का रक्षक

अनुशासन दण्डक–वन का।

(चित्रकूट, पृ0सं0–59)

भरत और शत्रुघ्न दोनों को कैकेयी के प्रति पूर्ववत् स्नेहपूर्ण एवं भेदभाव रहित व्यवहार करने का राम आग्रह करते हैं। उनके अनुसार कैकेयी ने जो कुछ किया वह राम के यश, मुनियों के आनन्द की वृद्धि, पृथ्वी पर दुराचरण के निवारण के लिए किया है। वह यहाँ तक कहते हैं कि कैकेयी के प्रति किया गया अभद्र व्यवहार वह अपने ऊपर किये गये प्रहार के तुल्य मानेंगे–

सौम्य, किया यदि तुमने उनसे

किंचित भी अभद्र व्यवहार,

तो समझूँगा मैं तुमने वह

मेरे ऊपर किया प्रहार''।

(चित्रकूट, पृ0सं0–61)

कौशल्या द्वारा उठाये गये प्रश्नकि कौन भाई किसके साथ रहे का समाधान राम यह कहकर करते हैं– "भरत सहायक रहे शत्रुघ्न, मेरे सह लक्ष्मण हैं ही।" रघुनन्दन के सम्भाषण से सभा आत्मविभोर हो जाती है। शोक से मलिन माँ कैकेयी को मूर्च्छित होता देख शोक विह्वल राम भी जब चेतना विहीन होने लगते हैं तो सब लोग पंखा झलकर और जल छिड़क कर उनकी चेतना लाने का उद्योग करते हैं। राम माँ कैकेयी को परितोष और प्रबोध देने के प्रयत्न करते हैं तथा कहते हैं कि हे माँ तुम्हारी बात मैंने पहले कब नहीं मानी कि अब नहीं मानूँगा। वे यहाँ तक कहते हैं–

त्याग अवध को मात्र एक दिन
वन में नहीं रहूँगा मैं,
इष्ट तुम्हें यदि यही अवध पर
निश्चय राज्य करूँगा मैं"।

(चित्रकूट, पृ0सं0–64)

राम के इन शीतल, सुधादायक वचनों को सुनकर कैकेयी की मूर्च्छा दूर हुई। वह आत्मग्लानि से युक्त होकर कहती हैं कि उनके कारण ही अयोध्या नरेश दशरथ मृत्यु को प्राप्त हुए तथा उनके कीर्ति मोह और साहस से निर्मित पतन–कूप में वे स्वयं गिर पड़ी । यहाँ तक की वे मातृत्व पद से भी वंचित हो गई है। कैकेयी कहती है कि उनकी तो केवल यही विनती है कि राघव अभी–अभी कहे अपने वचनों का प्रमाण प्रस्तुत करें और अयोध्या लौट चले। राम कैकेयी के वात्सल्य की दुहाई देते हैं और अपना निर्णय सुनाते हैं–

जैसा मैंने किया निवेदन
विपिन–अवधि होते अवसान,
आकर राज्य ग्रहण कर लूँगा
अन्य दिवस के ही दिन मान"।

(चित्रकूट, पृ0सं0–67)

कैकेयी को भी राम की शिशु लीलाओं की स्मृतियाँ हो आती हैं। ढुलकते अश्रु विन्दुओं, पुलिकत प्रेम भाव एवं ललकते हुए ह्रदय से कैकेयी यही कामना करती है–

सौ जन्मों तक बनूँ तुम्हारी
मैं अम्बा गैया, मैया
सौ कल्पों तक जिया करे तू
मेरा चपल, पूत, भैया। (चित्रकूट, पृ0सं0–69)

वह राम से यह भी कहती हैं कि राम को वनगमन देने वाले वचनों का वह प्रतिग्रहण करती हैं तथा उनकी इच्छा है कि राम और भरत के सन्दर्भ में याचित वर का परस्पर विनिमय हो जाये अर्थात् राम

भरत का प्रभार ग्रहण करें तथा भरत राम का व्रत पालन करें तथा भरत के साथ रहकर कैकेयी अपने पापों का परिहार करे। राम माता के प्रस्ताव से सहमत नहीं होते और कहते हैं कि जगत नियन्ता ने तो कैकेयी को निंदित करने का निमित्त मात्र बनाया है। राम के वनवास के पीछे पंचवटी पम्पासर इत्यादि स्थानों पर कुटिल, काम रूपी, अत्याचारी, निशाचरों को दण्डित कराना ही विधाता का उद्देश्य है। राम द्वारा यह कहे जाने पर कि सौ जन्मों तक उन्हें कैकेयी का ममत्व एवं सहज स्नेह मिलता रहे । सभा में उपस्थित सभी सदस्य कैकेयी के प्रति दयालुता से द्रवित हो जातें है। भरत की वाणी, बुद्धि और विवेक अवगुंठित होने लगते हैं वह करूणा सागर राम से ही समस्या का समाधान करने को कहते हैं–

अब करूणाकर स्वतः बतायें
साधन ऐसा कोई आर्य,
रहे धर्म कर्त्तव्य आपका
और न बिगड़े मेरा कार्य''।

(चित्रकूट, पृ0सं0–74)

राम के मुख का भव ताड़ कर गुरू वशिष्ठ निर्णय देते हैं कि :–

शासन भार समर्पित कर सब
प्रभु की चरण–पादुका पर
रहो राम की विपिन अवधि तक
अनुवर्ती प्रतिनिधि बनकर।

(चित्रकूट, पृ0सं0–75)

गुरू के आदेशानुसार भरत राम की चरण पादुकाओं को शिरोधार्य करते हैं किन्तु यह भी निश्चय करतें हैं कि वे भी चौदह वर्ष की अवधि तक नगर की परिधि के बाहर निवास करेंगे। राज कार्य का दायित्व पादुकाओं पर होगा और उनका कार्य तो केवल उन पादुकाओं की सेवा करना मात्र होगा। अत्यन्त भावुक होकर भरत प्रतिज्ञा करते हैं कि अवधि व्यतीत होने पर दूसरे दिन ही वे सरयू के जल में राम के पुर प्रत्यागमन न करने की स्थिति में जल समाधि ले लेंगे। गुरू वशिष्ठ राम से कहते हैं कि हे राम देखो भरत ने अन्ततः तुम्हारे लिए राज्य और अपने लिए वनवास लिया है। मुनि वशिष्ठ यह भी घोषणा करते हैं–

वैदेही से वधू उर्मिला
कर्त्तव्य–स्पर्द्धा में ज्येष्ठ,
रामचन्द्र के चारू वृत्त से
भरत, चरित्र तुम्हारा श्रेष्ठ।''

(चित्रकूट, पृ0सं0–79)

गुरू वशिष्ठ के मुख से राम के आचरण की चारूता तथा भरत के चरित्र की श्रेष्ठता को सुनकर सबकी विरह व्यथा नष्ट हो जाती है। जन–जन के हृदय में आनन्द प्रवाहित होता है तथा ब्राह्मणों, देवताओं और मुनियों की शंकाओं का भी समाधान हो जाता है। चतुर्दिक भरत के गुणों का गान होता है। जन–समुदाय के साथ–साथ प्रकृति भी इन यशोगान में निमग्न हो जाती है। राम और भरत के जय–जयकार का स्वर धरती से आकाशतक गुंजायमान हो जाता है:–

हुआ घोर रव राम–भरत के
शाश्वत रहो, विजय जय का
प्रकृति, धरित्री, अंबर ने भी
किया ध्वनित स्वर जय–जय का।

(चित्रकूट, पृ0सं0–80)

परिवर्तन–परिवर्द्धन

'चित्रकूट' खण्डकाव्य के वस्तु–विधान में कवि मोहनलाल गुप्त 'चातक' ने कथा को सर्गबद्ध रूप में प्रस्तुत न करके अविरल प्रवाह के रूप में प्रस्तुत किया है। कथा की मूल्यगत चेतना विवेच्य कृत्ति में वाल्मीकि 'रामायण' एवं 'रामचरितमानस' के अनुरूप ही है पर कहीं–कहीं कवि ने मूल कथा की तुलना में प्रयोग के रूप में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन उपस्थापित किया है। 'रामचरितमानस' में भरत के चित्रकूट आगमन के पूर्व सीता एक स्वप्न देखती हैं। स्वप्नफल बताते हुए राम कहते हैं कि कोई कठिन कुचाह सुनायेगा। इतनें में ही कोल–किरात आकर भरत का ससैन्य आगमन की सूचना देते हैं। 'चित्रकूट' खण्डकाव्य में राम–लक्ष्मण और सीता पर्णकुटीर में बैठे हैं। उसी समय कोल–किरातों ने आकर भरत के ससैन्य आगमन की सूचना दी है किन्तु वहाँ 'स्वप्न विमर्ष' प्रसंग नहीं है। इसी प्रकार गुरू पत्नी अरूंधती द्वारा राम को प्रबोधित करना चित्रकूट में सभा का अपराह्न में आयोजित होना आदि घटनाऐं कवि चातक जी की मौलिक उद्‌भावनाएँ हैं। स्रोत ग्रंथों में कही भी यह उल्लेख नहीं मिलता कि राम भरत को समझाते हुए अयोध्या प्रत्यागमन की भी बात करते हों जबकि कवि चातक जी ने चित्रकूट खण्डकाव्य में राम के मुख से यह कहलवाया है–

सौम्य जानता भली भाँति मैं
भाव तुम्हारा जितना भव्य,
और गुरूजनों के प्रभाव से
विदित भव्य कितना कर्त्तव्य।

(चित्रकूट, पृ0सं0–44)

कथा–विधान के अन्तर्गत कैकेयी की वर याचना से सम्बन्धित दो कथाऐं चातक जी ने प्रसंग वश वर्णित की है। इनमें से एक कथा कैकेयी विवाह से सम्बद्ध है जिसके अनुसार दशरथ कैकेयी सुत के

राज्याभिषेक के लिए प्रतिज्ञा वद्ध थे तथा दूसरी कथा देवासुर संग्राम की है, जहाँ कैकेयी द्वारा वीरता पूर्ण रीति से प्राण रक्षा किये जाने पर दशरथ ने उन्हें दो वरदान देने का वचन दिया था। 'चित्रकूट' खण्डकाव्य में पंचवटी, पम्पासर इत्यादि स्थानों पर हो रहे राक्षसी अत्याचारों का वर्णन है जबकि स्रोत ग्रंथों में इन घटनाओं का वर्णन अथवा संकेत चित्रकूट प्रसंग तक उपलब्ध नहीं होता। स्रोत ग्रंथों में चरण–पादुका प्रसंग का उल्लेख तो है किन्तु चातक जी ने इसे किंचित् भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है। 'चित्रकूट' खण्डकाव्य में गुरू वशिष्ठ ही निर्णय देते हैं–

शासन–भार समर्पित कर सब अंश
प्रभु की चरण–पादुका पर
रहो राम की विपिन–अवधि तक
अनुवर्ती–प्रतिनिधि बनकर।

(चित्रकूट, पृ0सं0–75)

मोहनलाल गुप्त 'चातक' द्वारा रचित 'चित्रकूट' खण्डकाव्य में वाल्मीकि 'रामायण' और 'रामचरितमानस' में वर्णित चित्रकूट से संबंधित कथा प्रसंगों का उल्लेख तक नहीं है। इन प्रसंगों में रनिवास सहित मिथिला नरेश जनक के चित्रकूट आगमन तथा अयोध्या प्रत्यागमन के पूर्व भरत एवं अयोध्यावासियों द्वारा भरतकूप की प्रतिष्ठापना उल्लेखनीय है।

2.घ. रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'–

रामेश्वरदयाल दुबे रचित 'चित्रकूट' का वस्तु–विधान सर्गबद्ध है। कवि ने इस खण्डकाव्य को पांच सर्गों में नियोजित किया है। प्रत्येक सर्ग में निहित कथा विधान एवं वस्तु–वर्णन क्रमशः प्रथम सर्ग, द्वितीय सर्ग, तृतीय सर्ग के क्रम में अभिहित है। प्रत्येक सर्ग में निहित कथा विधान एवं वस्तु–वर्णन क्रमशः अग्रांकित है–

2.घ.i. प्रथम सर्ग–

'चित्रकूट' के प्रथम सर्ग का प्रारम्भ कवि दुबे जी ने चित्रकूट की प्रकृति एवं निवासियों की उस संदेशके प्रति प्रतीक्षारत उत्कंठा के रूप में किया है जिसमें निर्वासित राम अपने अनुज एवं वधू के साथ चित्रकूट पधारने वाले हैं। दूर से ही उनकी आकृतियाँ दृष्टि गोचर होती हैं–

दूर बहुत ही दूर तीन आकृतियाँ दीख रहीं हैं।
पद चिह्नों की जहाँ सरणियाँ भिक्षा मांग रही है।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–5)

जनसमूह के साथ उक्त तीनों आकृतियाँ चित्रकूट की ओर शोभा यात्रा के रूप में अभिमुख हैं। कवि ने श्रीराम के शील और सौजन्यमय व्यवहार का चित्रण करते हुए दाशरथी राम के आगमन को चित्रकूट के भाग्योदय की संज्ञा प्रदान की है। आबाल वृद्ध नर–नारी ऋषि–मुनि आदि को राम के स्वागत

के लिए समुत्सुक रूप में वर्णित किये गये हैं। कोल–किरात भावुकता और भोलेपन से अभिभूत हो कर अपनी अकिंचनता निम्न शब्दों में व्यक्त करते हैं–

चक्रवर्ति के पुत्र, कहाँ हम निर्धन निपट अकिंचन।
कहाँ नागरिक श्रेष्ठ, कहाँ हम अर्द्ध नग्न हैं गिरिजन।।
कन्द–मूल फल–फूल, छाँह है केवल चटनी जल ही।
राजोचित आसन क्या होगा, बोलो शैल–उपल ही ?

(चित्रकूट, पृ0सं0–7)

कोल–किरातों को सान्त्वना देते हुए वृद्ध मुनि ज्ञानियों ने संसार में भाव की प्रधानता का निरूपण किया और राम के शील सौजन्य की कीर्ति कहानी कह कर निम्न शब्दों में प्रबोधित करते हैं–

चक्रवर्ति के पुत्र? वहाँ थे, जब ये अवध निवासी।
श्री पुरूषोत्तम राम किन्तु हैं अब केवल वनवासी।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–7)

त्रिमूर्ति (राम, लक्ष्मण, सीता) की झाँकी देखकर सभी चित्रकूटवासी चकित रह जाते हैं। अत्रि आदि महामुनियों तथा अनुसूया जैसी तपस्विनियों के स्नेहाशीष से राम लक्ष्मण और सीता विभोर हो जाते हैं। राम ने कोल–किरातों को भी अपने अंक में भर लिया–

कोल–किरातों को भी बढ़कर समुद राम ने भेंटा।
मानो करूणा को ममता ने दोनों हाथ समेटा।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–8)

अयोध्या में घटी घटना का समग्र वर्णन न करके कवि ने राम के चित्रकूट आगमन के प्रति उसी घटना का कारण रूप में संकेत किया है। अत्रि महामुनि द्वारा यह कहने पर कि हे राम, हम तुम्हें चित्रकूट से नहीं जाने देंगे, राम अपने चित्रकूट आगमन का श्रेय चित्रकूट के आकर्षण और वाल्मीकि ऋषि के निर्देशन को प्रदान करते हैं–

मैं क्या आया, चित्रकूट ही मुझे खींच है लाया।
बाल्मीकि ऋषि ने भी मुझको ठौर यही बतलाया।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–10)

मन्दाकिनी के तट पर उन्मुक्त आकाश के नीचे एक शिला पर इन त्रिमूर्तियों ने रात्रि विश्राम का निर्णय लिया मुनियों को प्रणति भाव से और कोल–किरातों के कन्द–मूल फल को स्वीकार करने बाद स्नेह भाव से विदा किया। उस दिन मन्दाकिनी के तट पर उन्मुक्त आकाशके नीचे सोने से पहले राम, लक्ष्मण और सीता तीनों को अयोध्या की याद में विह्वल वर्णित किया है:–

सोने से पहले तीनों को याद अवध की आई।

पूज्य पिता की, माताओं की दशा दृगों में छाई।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–11)

चित्रकूट वासियों के पास राम के चित्रकूट आगमन का संदेश आना यह 'दुबे' जी की मौलिक कल्पना है। प्रथम सर्ग में वर्णित शेष अन्य कथा प्रसंग स्रोत ग्रंथों पर आधारित है। प्रथम सर्ग की कथा प्रस्तुति में 'चित्रकूट' खण्डकाव्य के कवि निश्चयतः 'रामचरितमानस' के कथा विधान के ऋणी हैं। प्रमाण में एक उदाहरण प्रस्तुत करना अनुचित न होगा–

जब–जब राम अवध सुधि करहीं। लोचन वारि विलोचन भरहीं।[9]

2.घ.ii. द्वितीय सर्ग

द्वितीय सर्ग में कथा का प्रारम्भ मन्दाकिनी के हरितांचल में बाँस–फूस से निर्मित कुटिया के वर्णन से होता है। राम की दिनचर्या में रीति–नीति, ज्ञान–भक्ति की चर्चा का उल्लेख कर कवि ने आश्रम के साप्ताहिक स्वच्छता कार्यक्रम का उल्लेख किया है। एक दिन राम जब सत्संग हेतु मुनियों के आश्रम में जाते हैं तो कुटिया के साप्ताहिक सफाई कार्यक्रम में लक्ष्मण और सीता का सम्वाद वार्तालाप के रूप में वर्णित हुआ है। भाभी–देवर के इस वार्तालाप के बहाने कवि ने जहाँ एक ओर श्रम के महत्त्व पर प्रकाश डाला है वहीं सीता द्वारा लक्ष्मण से निम्न शब्दों में परिहास भी कराया है–

राज भवन में क्या कामों की कमी पड़ी दिखलाई।

जिन्हें खोजने इस निर्जन में क्रियाशीलता लाई?

(चित्रकूट,पृ0सं0–13)

प्रत्युत्तर में लक्ष्मण के भीतर जहाँ भाभी के प्रति सम्मान एवं सहानुभूति व्यक्त हुई है, वहीं कैकेयी के प्रति आक्रोश भी व्यक्त हुआ है–

फूल रहे सहते ही तो फिर काँटों की बन आई।

घर–घर में फिर पैदा होंगी कैकेयी सी माई।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–14)

इसी वार्तालाप में अयोध्या के पुरजन और प्रियजन के दुःख का उल्लेख हुआ है भावुकता से भरकर लक्ष्मण राम के बिना पिता दशरथ की मृत्यु की आशंका भी व्यक्त करते हैं। उर्मिला का प्रसंग आने पर लक्ष्मण टालमटोल करते हैं। किन्तु सीता बाल वियोगिनी उर्मिला की याद कर अश्रुपूरित हो जाती है।

ऋषि–मुनियों के साथ राम संस्कृति और विधि के विधान जैसे विषयों पर तात्त्विक चर्चा करते हैं इस विचार मंथन से राम का तन मन पुलकित हो जाता है :–

विविध विषय पर चर्चा होती, होता गहरा मन्थन।

ज्ञानामृत नवनीत निकलता, पुलकित होता तन–मन।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–16)

चित्रकूट के वन प्रान्तर में अनुज और सीता के समेत राम विचरण करते हैं। वानस्पतिक सम्पदा का परिचय प्राप्त करते हैं; मर्यादित हास–परिहास के मध्य एक दूसरे की मनःस्थिति का ध्यान भी रखते हैं। शालवृक्ष से लिपटी हुई वल्लरियों के प्रति जब सीता यह कहती हैं कि ये एक दूसरे से शोभित हैं तो सहसा इस बात का विचार कर कि उनके देवर लक्ष्मण एकाकी हैं, सीता सहम उठतीं हैं और सीता को उद्विग्न देखकर राम बात का विषयान्तर करते हैं।[10]

स्रोत ग्रंथों में दो राजकुमारों के साथ वन में विचरण करती हुई सीता को देखकर सीता के पति कौन हैं? यह जानने की जिज्ञासा 'वधूटी प्रसंग' के रूप में वर्णित है। दुबे जी ने इसमें किंचित् परिवर्तन करके वनवासिन के मुख से यह कहलवाया है कि उसे पूछने की जरूरत नहीं। वह जानती है कि सीता के पति दोनों राजकुमारों में कौन हैं। सीता के यह पूछने पर कि यह उसने कैसे जाना। वह बोल उठती है–

वनवासिन बोली– "मैं भी तो अपने पति की रानी।
जिस चितवन से उन्हें देखती, वह मेरी पहचानी।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–18)

वनवासिन और सीता के वार्तालाप क्रम में ही राजभवन की करूण कथा वर्णित हुई है। राजभवन का जीवन घुटनमय होता है, इससे कहीं अच्छा विपिनवास है। यह भावना सीता के निम्न कथन में उभरी हुई है–

क्षमा करें अब राजभवन का मुझको मोह नहीं है।
विपिन अलम् है मुझे, यहाँ पर कोई लोभ नहीं है।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–19)

सीता और वनवासिन के उक्त वार्तालाप के बाद कवि ने प्रकृति के साहचर्य में सीता की अनेक अठखेलियों का वर्णन किया है। वह फटिकशिला पर बैठ कर मछलियों को साठी चावल फेंकते हुए अपने बचपन में लौट जाती हैं। कभी–कभी राम स्नेहपूर्वक सीता के समीप बैठ कर निर्झर के अविरल प्रवाह को देखते हैं। शश–शावकों की निश्छल क्रीड़ा, शुक झुंड का उड़ना, कपोती के प्रति कपोत का न्यौछावर होना, चातक का मौन और कोकिला की कूक, ये सब कुछ हृदय हारी एवं मर्मस्पर्शी हैं। कोल–किरात समाज के साथ राम का अपनत्व हो जाता है। प्रकृति की छटा में ब्रह्म–कुण्ड से निःसृत पयस्विनी और मन्दाकिनी के संगम स्थल पर–पूत प्रयाग तथा उसके निकट स्थित गुप्त–गोदावरी पावन तीर्थों का कवि वर्णन करते हैं। राम चित्रकूट के भूमि पुत्रों के नैसर्गिक जीवन की प्रशंसा करते है और उनके बीच रहना अपना सौभाग्य मानते हैं। चित्रकूट खण्डकाव्य के द्वितीय सर्ग की समाप्ति पर कवि ने यह वर्णन किया है कि चित्रकूट के सुरम्य प्रदेशमें राम, लक्ष्मण और सीता आनन्द पूर्वक दिन बिता रहे थे–

चित्रकूट की रम्य थली में बीत रहे यों दिन थे।

तन पुलकित थे तीनों के ही प्रमुदित मोहित मन थे।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–23)

2.घ.iii. तृतीय सर्ग–

'चित्रकूट' के तृतीय सर्ग में कथा का विकास गतिशील हो जाता है। लक्ष्मण अत्यन्त आवेश में उत्तेजित होकर भरत के प्रति क्रोध व्यक्त करते हैं, क्योंकि उन्हें सशंकित कोल–किरातों ने यह सूचना दी है कि भरत चतुरंगिनी सेना के साथ चित्रकूट की ओर आ रहे हैं। वह सीता और राम के समक्ष आशंका व्यक्त करते हैं कि कैकेयी युद्ध नियन्ता बनकर अपने पुत्र भरत को निष्कंटक राज्य देने के उद्देश्य से आ रही है। भरत में कैकेयी की ही राज्य–लिप्सा का संचार हो गया है। राम–लक्ष्मण को शान्त कराते हुए भरत की निन्दा करने से उन्हें प्रतिवारित करते हैं–

बोले राम– "मौन हो, करना निन्दा अब न भरत की।
उपमा नहीं मिलेगी जग में उसके विमल चरित की।।"

(चित्रकूट,पृ0सं0–26)

किन्तु लक्ष्मण को परितोष नहीं होता राम के यह कहने पर कि भरत के आगमन में द्वेष–लिप्सा, विग्रह इत्यादि के स्थान पर स्नेह का तत्त्व है। लक्ष्मण व्यंग्य पूर्ण यह उत्तर देते हैं–

जो हो, आज भरत से रण में होंगी दो–दो बातें।
अरिमर्दन के साथ सहेंगे वे लक्ष्मण की घातें।।
राजभवन में क्रोध हमारा प्रकट नहीं हो पाया।
आज उसीने अनायास ही सुन्दर अवसर पाया।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–27)

सीता लक्ष्मण को शान्त करने के लिए अपनी शपथ दिलाती है किन्तु लक्ष्मण परिकर बाँधकर धनुष–बाण लेकर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। लेकिन लक्ष्मण की अशंका निर्मूल और राम का विश्वाससत्य सिद्ध होता है। भरत नंगे पाँव, नतसिर, आबद्धकर और आर्तमन से हारे हुए जुवारी की भाँति करूणा की मूर्ति बने पहले राम के चरणों पर और फिर सीता के चरणों पर गिरते हैं। निम्न पंक्तियाँ इस संदर्भ में द्रष्टव्य है–

भरत गिरे चरणों में, प्रभु ने हाथों उन्हें उठाया।
भुज–बन्धन में बांध भरत को अपने गले लगाया।।
× × × × × ×
भरत बढ़े सीता–चरणों को दृग–जल से नहलाया।
कोमल हाथ पीठ पर पाकर सुखमय आशीष पाया।

(चित्रकूट,पृ0सं0–28)

भरत माताओं परिजन–पुरजन और गुरू वशिष्ठ के साथ चित्रकूट पधारें हैं। वे भावपूर्ण होकर जब चित्रकूट में अयोध्या वासियों के साथ वनवासी राम से मिल रहे थे तो ऐसा प्रतीत होता था मानों काल ठहर गया हो। गुरू वशिष्ठ के चरण स्पर्श करने के बाद जब राम ने सितवसना माताओं को दूर से देखा दौड़ कर उनके चरणों में गिरे तो वह शोकार्त और करुण का क्षण रघुकुल पर हुए नियति की क्रूरता का क्षण था। राम अपने को हतभाग्य कहते हैं, क्योंकि वे पिता के अन्तिम दर्शन नहीं कर सके थे–

पिता! मुझे क्यों भेज विपिन में सुरपुर स्वयं सिधारे।
कर न सके अन्तिम दर्शन भी, हा! दुर्भाग्य हमारे।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–29)

गुरू वशिष्ठ यद्यपि स्वयम् शोकार्त एवं करूणाविगलित थे लेकिन उन्होंने राम को यह कहकर समझाया कि राजा दशरथ सत्य–अनुरागी, न्याय–परायण, नीतिज्ञ, शासन प्रबन्धन में अक्षय कृतिधारी तथा पौरूष बल और पराक्रम में अतुलनीय थे। लेकिन नियति पर किसी का वश नहीं, उसे टाला नहीं जा सकता। वे राम को दशरथ का श्राद्ध करने का निर्देश भी देते हैं–

पूर्णकाम वे गए जगत से निश्चित सब का जाना।
श्रद्धा–सहित श्रादध करके अब तुमको धर्म निभाना।

(चित्रकूट,पृ0सं0–30)

अयोध्या के रनिवास का जब चित्रकूट में सीता से मिलन होता है तो वहाँ मानों करूणा का प्लावन हो जाता है। गुरू वशिष्ठ सीमित शब्दों में दशरथ की मृत्यु की घटना का उल्लेख करतें हैं कि सुमंत्र ने लौट कर जब यह बताया कि राम नहीं लौटे तो 'राम राम' रटते हुए राजा दशरथ ने अपना प्राण त्याग दिया। उस घटना से सम्पूर्ण अयोध्या में हाहाकार मच गया था। भरत के ननिहाल से लौटने तक शव को सम्हाल कर रखा गया। भरत ने आकर दाह–संस्कार की क्रिया सम्पन्न की। गुरू वशिष्ठ द्वारा सुनायी गई इस व्यथा को सुन कर राम के नेत्र पुनः अश्रुपूरित हो जाते हैं। दिवसावसान होता है, पितृशोक की छाया की भाँति सन्ध्या घिर आती है। लक्ष्मण कोल–किरातों के सहयोग से पहुनाई करने में लग जाते हैं। उस रात्रि सभी वृक्षों के नीचे कहीं कुंज में और कहीं शिलापर लोगों ने अपना वास स्थान बनाया। काँवरों में भरकर कोल–किरात कन्द–मूल लाये, लेकिन व्यथा से आक्रांत लोगों को क्षुधा नहीं थी–

कन्द मूल की कहाँ कमी थी, भर–भर काँवर आई।
किन्तु क्षुधा भी कहाँ, व्यथा ने आज विजय थी पाई।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–32)

दुबे जी द्वारा वर्णित तृतीय सर्ग के वस्तु–विधान में स्रोत ग्रंथों के अनुरूप ही कथा वर्णित हुई है। इसमें परिवर्तन–परिवर्द्धन के रूप में लक्ष्मण द्वारा भरत के चित्रकूट आगमन में कैकेयी का निर्देशन तथा सौमित्र का उर्मिला को देखकर सहम उठना उल्लेखनीय है।

2.घ.IV. **चतुर्थ सर्ग–**

'चित्रकूट' खण्डकाव्य के चतुर्थ सर्ग की कथा का प्रारम्भ वशिष्ठ के निर्देशन में राम द्वारा पिता दशरथ के श्राद्धकर्म और पिण्डदान की घटना से होता है। गद्–गद् कंठ से राम पितृ अभाव की पूर्ति हेतु गुरू वशिष्ठ पर अपना दायित्व सौंपते हैं। राम के मिल जाने पर यद्यपि अयोध्यावासियों को विपिनवास का जीवन भी सुखमय प्रतीत होता है किन्तु उनका मन संकल्प–विकल्प के माध्यम से यह प्रश्न करता है–

मानेंगे क्या बात भरत की राम अवध आएँगे?

पुण्य उदय क्या होगा सबका, राम साथ जाएँगे?

(चित्रकूट, पृ0सं0–34)

राम सोचते हैं कि वन में रहने से अयोध्यावासियों को असुविधा हो रही है। अतः उनका अयोध्या लौट जाना उचित है। किन्तु वे चिन्तित इस बात से हैं कि कोई लौटने की बात नहीं करता और वे स्वयं उन्हें लौटने को कैसे कहें। लेकिन सीता को इस प्रकार की कोई चिन्ता नहीं है, वे कहती हैं–

मुझको तो संतोष कि सबका कुछ सहवास मिला है।

तीनों माँ–बहनों को पाकर मानस–कमल खिला है।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–35)

सीता को राम माताओं–बहनों की सुख–सुविधा की व्यवस्था का निर्देश देते हैं। सीता दक्ष सुगृहिणी की भांति उनके निर्देश का पालन करतीं हैं तथा माताओं के समक्ष अपने चित्रकूट वास के सुख का वर्णन करती है। जिसमें वे कहती हैं कि यहाँ के खग–मृग की केलि–क्रीड़ाएँ, ताड़ और खजूर–पत्र के आभूषण, वन फूलों और फलियों की पायल, कन्दमूल फल का स्वाद उन्हें खूब रास आ रहा है और इतना ही नहीं किरात बालाओं का स्नेह और साथ उनके लिए मनोरंजक हैं–

"आती हैं किरात बालाएँ लोकनृत्य दिखलातीं।

हाथ पकड़कर आग्रह करके मुझको नृत्य सिखातीं।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–36)

सीता के उक्त आत्मतोष पर जब मां कौशल्या यह कहकर की जिसके लिए राजसदन के संचित भोग नियत होने चाहिए उसकी नियति में विपिनवास का दुर्भाग्य आ गया है, भावुक हो जाती हैं तो सीता उन्हें विशाद करने से रोकती है आशीर्वाद की याचना करती हैं और अपना सम्बल निम्न शब्दों में व्यक्त करती हैं–

आर्यपुत्र का साथ और देवर की सच्ची निष्ठा!

मन को कर पूरिपूर्ण रहा, तब दुख की कहाँ प्रतिष्ठा?

(चित्रकूट, पृ0सं0–37)

चतुर्थ सर्ग में आलोच्य कवि ने कैकेयी के पश्चाताप का वर्णन किया है। इस घटना का वर्णन करते हुए कवि ने उल्लेख किया है कि माँ कैकेयी को एकाकी और गुमसुम देखकर जब राम उनसे यह कहते हैं कि हे माँ, तुम अपना मौन तोड़ो और मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा करो। कैकेयी मर्मभेदिनी पीड़ा को निम्न शब्दों में व्यक्त करती है तथा सारी विपत्ति का मूल स्वयं को निरूपित करती है–

बेटा ! बैठो निकट, तुम्हें मैं अपनी कथा सुनाऊँ।
चले गए 'वे' तुमसे कहकर, जी की जल मिटाऊँ।।
× × × × × ×
घटी घोर घटना रघुकुल में अभी –अभी जो भारी।
उसका मैं हूँ मूल, सभी पर डाली विपदा सारी।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–38)

इस घटना के वर्षों बाद कवि ने चित्रकूट में जुटे समाज की दिनचर्या का वर्णन किया है। कई दिन बीत जाने पर राम गुरू वशिष्ठ के समक्ष अपनी चिन्ता व्यक्त करते हैं :–

भरत सहित परिवार यहाँ हैं, वहाँ अयोध्या सूनी।

यहाँ विपिन के कष्ट सहें सब, यह चिन्ता है दूनी।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–42)

गुरू वशिष्ठ राम के प्रस्ताव का अनुमोदन कर भरत को निर्देश देते हैं कि भरत समाज को एकत्रित कर के अपने हृदय का भाव स्पष्ट करें और अपना मौन तोड़ें। मन्दाकिनी नदी के तट पर समाज के जोड़ने पर जन मानस की कौन कहे निर्णय जानने के लिए प्रकृति भी निस्तब्ध हो गयी थी, समीर सहम गया था और पीपर पाल का डोलना भी ठहर गया था। भरत हाथ जोड़ कर सभा के मध्य रूद्ध कंठ और अश्रुपूरित नेत्रों से यही निवेदन करते हैं कि उनकी प्रार्थना को गुरू वशिष्ठ ही वाणी दें। गुरू वशिष्ठ यह बतातें हैं कि भावुक भरत, राम वनवास, पितृ मरण तथा कैकेयी के आचरण के लिए स्वयं को उत्तरदायी मानते हैं तथा उन्हें राज्य स्वीकार नहीं है। राम यह बात सुनकर चौंक उठते हैं। उन्हें विश्वासनहीं होता कि पिता की आज्ञा का उल्लंघन हो ऐसा विचार भी भरत के मन में उठ सकता है। अतः वह इस बात को भरत के ही मुख से सुनना चाहते हैं–

भैया भरत, कहो निज मुख से जो कुछ तुमको कहना।
उचित नहीं होकर विशेषण, यों आवेशों में बहना।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–45)

विचार विमर्श में, कथन–उपकथन में कौन वन में रहे, कौन अयोध्या लौटे की चर्चा के मध्य सदा मौन रहने वाले शत्रुघ्न अचानक मुखर हो जाते हैं तथा गणतंत्र की वकालत करते हुए यह समाधान प्रस्तुत

करते हैं कि अयोध्यावासी अयोध्या का राजा जिसे चाहे उसे चुन लें हम लोग चारों भाई राज्य, राजतंत्र, राजभवन को प्रणाम कर, विपिनवास का ही मार्ग चुनें :–

अच्छा है जनतन्त्र चले अब, मिटे राजसी सत्ता।
जाग्रत हो जन में जनमत की महिमामयी महत्ता।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–45)

शत्रुघ्न के प्रस्ताव पर राम ने गणतंत्र और राजतंत्र दोनों के ही नेतृत्व करने के लिए के मन में संयम एवं कर्त्तव्यबोध का होना आवश्यक बताया तथा भरत से यह कहा कि विषाद की घटाएँ छट जायेंगी, चौदह वर्ष देखते ही देखते कट जायेंगे। उन्होंने अपने लिए तथा भरत के लिए वनवास अवधि की आचार संहिता इन शब्दों में कह दी–

पालूँ आज्ञा इधर पिता की, मैं वन में ही रहकर।
पालो प्रजा, करो तुम सेवा माताओं की घर पर।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–47)

राम की निस्पृह वाणी सुनकर गुरू वशिष्ठ गद्‌गद् हो जाते हैं। वे राम की बात का अभिनंदन निम्न शब्दों में करते हैं–

राम! तुम्हारी इच्छा ही हो पूरी सदा जगत में।
भ्रातृ–प्रेम की भूरि भव्यता छलके सदा भरत में।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–47)

राम और भरत के भ्रातृत्व प्रेम की जय–जयकार के साथ सभा भंग हो जाती है। कवि दुबे जी ने उक्त सभा के बाद मिथिलापति जनक का चित्रकूट आगमन वर्णित किया है। अयोध्या के दुःखद घटनाक्रम को सुनकर जनक परिजन महर्षि और सुनयना के साथ चित्रकूट आते हैं। गुरू वशिष्ठ के निर्देश पर राम उनके स्वागत हेतु अग्रसर होते हैं। विपिन वेश में सीता को देखकर और सितवसना कौशल्या आदि रानियों को देखकर विदेह राजा जनक और सुनयना अत्यन्त हृदय द्रावक करुणा से अभिभूत हो गये। ऋषि वशिष्ठ ने होनहार की प्रबलता बताकर अयोध्या में घटी घटनाओं को जनक के सामने वर्णित किया। 'चित्रकूट' के चतुर्थ सर्ग में कवि ने लक्ष्मण और उर्मिला के परस्पर साक्षात्कार का वर्णन किया है। दीप जलाने के बहाने जब सीता ने उर्मिला को कुटिया में भेजा तो वहाँ कुश–शैय्या को गूँथते हुए लक्ष्मण उसे दिख जाते हैं। लेकिन मार्मिकता के इस क्षण में भी दोनों कर्तव्य बोध से युक्त हैं। अतः निम्न कथन को कहकर वे दोनों विलग होते हैं–

पदरज शीश चढ़ाकर बोली– "मुझको दीप जलाना।"
लक्ष्मण बोले–"बाहर मुझको सेवा–धर्म निभाना।।"

(चित्रकूट, पृ0सं0–51)

चारों बहनें चित्रकूट में हास–परिहास और चिन्तन–मनन करते हुए वर्णित की गई हैं। उर्मिला के यह कहने पर कि चित्रकूट में उसे कपि–लीला का वह प्रसंग आमोदप्रद लगा जिसमें मर्कटी कीश की पूँछ पकड़कर खींच रही थी, श्रुति यह कहने से नहीं चूकती–

हँस बोली श्रुति– "किन्तु पुरूष के पूँछ नहीं है होती।
होती तो क्या, उसे पकड़कर नारी हर्षित होती?"

(चित्रकूट, पृ0सं0–52)

बहनें परस्पर वार्तालाप में जब यह कहती हैं कि कल की पंचायत के अनुसार यदि राम और उनके कारण सीता भी अयोध्या नहीं लौटती हैं तो लक्ष्मण भरत का हाथ बँटाने के लिए अयोध्या लौट चले अथवा उर्मिला वन में ही लक्ष्मण के साथ रह जाये। तब उर्मिला इस प्रस्ताव को नकारते हुए दृढ़तापूर्वक कहती है :–

चौदह वर्षों की जब दी है मैनें उन्हें विदाई।
तब चर्चा लौटने आदि की जाती व्यर्थ चलाई।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–53)

चतुर्थ सर्ग के समापन में राजा जनक और उनकी पत्नी सुनयना अपने जामाताओं और दुहिताओं को स्नेह और आशीर्वाद देकर विदा होते हैं। यह विदा की बेला अत्यन्त मार्मिक है। उल्लेखनीय है कि इससे पहले जब सुनयना सीता की स्थिति पर विचार करती हैं तो भावुक हो जाती हैं, सिसक उठती हैं अपनी लाडली को वन में छोड़कर भवन में लौटने कल्पना ही उन्हें विचलित करती है। उनकी यह भावुकता तब और अधिक करूणामय हो जाती है जब सीता उन्हें यह कह कर समझाती हैं–

अम्बर पिता, धरित्री माँ–सी, गिरि गुरूजन से अविचल।
सरिता भगिनि, विटप है बान्धव, झरने शिशु हैं चंचल।।
विहग मीन, चंचल मृग–शावक सुखद खिलौना मेरे।
नव कुटुम्ब के प्राणी सारे निशि–दिन रहते घेरे।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–55–56)

चतुर्थ सर्ग इस प्रकार मिलन और वियोग की इस टिप्पणी के साथ पूर्ण होता हैं–

मिलन मधुर, होता वियोग है असह्य दुख का दाता।
किन्तु न कोई अब तक इनका तोड़ सका है नाता।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–56)

'चित्रकूट' खण्डकाव्य के चतुर्थ सर्ग में कवि ने वाल्मीकि रामायण और 'रामचरितमानस' में वर्णित पारम्परीण चित्रकूट कथा के ढाँचे और मूल्यों का अनुपालन किया है। इसके वस्तु–विधान में परिवर्तन–परिवर्द्धन के रूप में किरात बालाओं द्वारा सीता को लोक–नृत्य सीखाना, चित्रकूट की सभा में

शत्रुघ्न का बोलना और समस्या के समाधान रूप में गणतंत्र का सिद्धान्त प्रस्तुत करना, उर्मिला–लक्ष्मण मिलन का प्रसंग तथा सीता का चारों बहनों के साथ मिलकर हास–परिहास और चिन्तन मनन उल्लेखनीय है।

2.घ.V. पंचम सर्ग–

'चित्रकूट' खण्डकाव्य के पंचम सर्ग का प्रारम्भ अयोध्यावासियों के मन की उच्चाटन स्थिति से होता है। "मथने लगा विचार कि होगा चित्रकूट से जाना" के भाव से आन्दोलित होने के बाद अयोध्या वासी कामदगिरी की परिक्रमा और चित्रकूट भ्रमण की कामना करते हैं। राम अपने अनुजों का मन्तव्य जानकर उन्हें सीमित दिनों में ही चित्रकूट पर्यटन की अनुमति देते हैं–

बोले राम– "तुम्हारी इच्छा, किन्तु रहें दिन सीमित।
माताओं को विपिन–बास में होता कष्ट अपरिमित।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–58)

चित्रकूट की पावनता में सबका चित्त रम जाता है। सीता माताओं–बहनों को दृश्यावलोकन कराते हुए जब लता–गुल्म, जड़ी–बूटियों और पक्षियों के स्वभाव का परिचय देती हैं तो विह्वल भाव से कौशल्या कहती हैं "कितनी चतुर हो गयी वन में मेरी भोली रानी।"[10] भरत राम के समक्ष अत्रि मुनि के दर्शन की लालसा व्यक्त करते हैं। राम भरत सहित मंदाकिनी के तट पर स्थित अत्रि मुनि के आश्रम में जाते हैं। सभा के निर्णय को जान चुके अत्रि मुनि, भरत के आचरण की स्नेहपूर्वक प्रशंसा करते हैं–

मुनि बोले "आचरण का सदा धर्म से संयत।
मात्र आचरण में ही होता सदा धर्म प्रतिबिम्बित।

(चित्रकूट, पृ0सं0–60)

अत्रि मुनि इस मिलन बेला में चित्रकूट की महिमा गोदावरी के आगमन का प्रसंग कामदगिरि के सुरम्य स्थलों का परिचय और मन्दाकिनी नदी के जल कि पातकहरता का वर्णन करते हैं। सती अनुसूया का पदवन्दन कर के राम और भरत आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। इसके साथ भरत यह कहते हैं कि वे चित्रकूट में जो कामना लेकर आये थे उसे विधि के विधान ने स्वीकार नहीं किया। अतः राम के राज्याभिषेक के लिए विभिन्न तीर्थों से मँगाये गये जल का क्या उपयोग किया जाये? ऋषि इसका अत्यंत सुन्दर सामाधान निम्न शब्दों में प्रस्तुत करते हैं–

ऋषि बोले– "कुछ दूर यहाँ से एक कूप है सुन्दर।
सघन वृक्ष की छाया भी है, सुखदा शीतल रूचिकर।।
मेरा मत है तीर्थ सलिल को वही कूप अपनाए।
भरत आगमन सुस्मृति में यह "भरतकूप" कहलाए।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–61,62)

अत्रि मुनि के प्रस्ताव का सभी अभिनंदन करतें हैं राम और भरत अत्रि आश्रम से पुनः कुटिया में लौटते हैं। सरिता तट पर सभी पुरजन–परिजन की उपस्थिति में भरत गद्गद कण्ठ, उद्वेलित मन और अश्रुपूरित नयन से चौदह वर्ष की अवधि को पार करने के लिए और अयोध्या का राजकाज सँभालने के लिए प्रतीक के रूप में राम के चरण पादुका की याचना करते हैं–

किन्तु कठिन जो भार आ पड़ा, कैसे वहन करूँगा।
बिना नाव यह नदी अवधि की, कैसे पार करूँगा।।
मिले काठ की चरण पादुका, कुछ तो हो अवलम्बन।
बन प्रतीक के करे अलंकृत रिक्त अवध–सिंहासन।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–63)

राम भरत को धैर्य बंधाते हैं और उन्हें आलिंगन बद्ध कर के यह कहते हुए कि हे भरत! तुम्हारे लिए कुछ भी अलभ्य नहीं है और यदि दारू पादुका लेकर ही तुम्हें संतोष है तो उसे देने में मुझे भी सुख ही होगा। हर्ष विभोर होकर भरत पादुका को बहुत बड़ी निधि समझ कर ले लेते है तथा गुरू वशिष्ठ के आज्ञा से चित्रकूट की स्मृतियों को सँजोए विदा का क्षण आ ही जाता है। कवि ने राम और भरत के संदर्भ में निम्न शब्द–चित्र में बाँधा है–

साश्रु वदन फिर किया भरत ने अग्रज का पद–वन्दन।
वार–वार ही किया राम ने भाई को भुज–बन्धन।।
मौन रहे दोनों कुछ क्षण, फिर अविरल अश्रु बहाकर।
विदा भरत को किया राम ने अतिषय स्नेह दिखाकर।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–64)

चित्रकूट की धूलि शीश पर धारण करके उसे अपना प्रणाम अर्पित कर उधर भरत लौट रहे थे और इधर राम उन्हें खड़े खड़े तब तक देखते रहे जब तक वे दिखाई दिये। भ्रातृ प्रेम की अनुपम झाँकी से चित्रकूट की धरा धन्य हो गई। कवि ने स्वार्थ और परमार्थ में, कर्तव्य और स्वजन प्रीति में चित्रकूट की धर्मधारा को परमार्थ और कर्तव्य निष्ठा की साक्ष्य स्थली के रूप में वर्णित एवं प्रणवित किया है–

कोटि–कोटि है नमन, धर्म की ध्वजा जहाँ फहराई।
कीर्ति भरत की जहाँ राम से भी आगे बढ़ छाई।।
चित्रकूट, यह धर्म–धरा है तीर्थ–भूमि जन–जन की।
कर्त्तव्यों के आड़े आई जहाँ न प्रीति स्वजन की।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–64)

'चित्रकूट' खण्डकाव्य के पंचम सर्ग के वस्तु–विधान में कथा वस्तु का संयोजन स्रोत ग्रंथ वाल्मीकि 'रामायण' एवं 'रामचरितमानस' के अनुरूप ही हुआ है। इसमें स्रोत ग्रंथों में वर्णित कथा में किंचित् विस्तार के अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन–परिवर्द्धन लक्षित नहीं होता।

2.5. लक्ष्मीकांत वर्मा कृत चित्रकूट चरित –

'चित्रकूट चरित' की कथा का आरम्भ अंधकारपूर्ण अर्द्धरात्रि यानी निशा के वातावरण से होता है–

बीत चुकी थी अर्द्धरात्रि
फिर भी घाटी में जाग रही थी
सभा आदिवासी जन की।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–16)

और इसका अन्त दीप्तमान सूर्योदय यानी आशा से–

हो गई विसर्जित सभा।
सब उठे चले निज प्रशंसा और,
प्राची में उगता दीप्तमान
वह सोम कलश तमतिमिर तोर।

(चित्रकूट–चरित,पृ0सं0–136)

सम्पूर्ण कथा को कुल छह शिविरों में क्रम दिया गया है, यथा–

(क) आदिवासी शिविर
(ख) मातृ शिविर
(ग) भरत शिविर
(घ) जनक शिविर
(ङ) ऋषि शिविर और
(च) श्रीराम शिविर

ये शिविर जहाँ कथा को क्रम देने के लिए 'सर्ग' के सूचक हैं, वहीं शिविरों में टिके हुए लोगों की रूचि और प्रवृत्ति के भी। आगामी पंक्तियों में कथा को शिविरानुसार क्रम दिया जाता है।

2.ङ.i. आदिवासी शिविर–

चित्रकूट की घाटी में आदिवासी शिविर लगा है। निषादराज के सभापतित्व में सभी वनवासियों का विचार–विमर्श चल रहा है। निषादराज समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि भरत और राम में किसी प्रकार का भेद नहीं है। निषादराज की यह बात आदिवासी वृद्धजनों को मान्य होती है, पर युवजन इसे अस्वीकार करते हैं। दो भावुक युवजन मंच पर उपस्थित होते हैं और निषादराज से प्रश्न करते हैं–

कहाँ गया वह रोष तीव्र।

आक्रोश आपका।

कहाँ गई वह भक्ति राम की।

जिसके लिए युयुत्सा को ललकारा।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–16)

वे जानना चाहते हैं कि–

"क्या राम राज्य के बदले

भरत–राज्य नैतिक हो लेगा?

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–18)

युवकों को समझा–बुझाकर शान्त करने का प्रयत्न निषादराज ही नहीं कतिपय वृद्धजन भी करते हैं। एक वृद्ध का कथन है–

भेद कर रहे राम भरत में? राम भरत के अनुयायी हैं,

भरत राम की छवि–छाया है।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–18)

किन्तु वृद्धजन की यह बात तरूणों को मान्य नहीं इसके दो कारण हैं। पहला कारण यह है कि भरत को ससैन्य आते देखकर निषादराज के आदेशपर भरत की सेना को रोकने के लिए उन्होंने अस्त्र उठा लिए थे। दूसरा कारण है, राजा दशरथ की मृत्यु के पश्चात विगत पन्द्रह दिनों के कैकेयी शासित राज्य में कैकय सेनाओं द्वारा किया गया उत्पीड़न। निषादराज उन्हें समझाना चाहते हैं कि–

भरत भाव जगत के प्राणी हैं।

x x x x

तो पाओगे भरत नीति का अमृत पावन।

राजनीति की नयी भूमिका।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–21)

वे इसे मानने को तैयार नहीं हैं। उनका निश्चय है–

पर हम सब विद्रोह करेंगे।

अपदस्त भरत को करके

कैकेयी को निर्वासन दे।

अवध राज के सिंहासन पर

राम भद्र को ही लाएंगे।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–23)

इस पर निषादराज उन्हें फटकारते हैं–

बन्द करो यह बातें युवजन
भरत, भाव की प्रतिमा निश्चय
उस प्रतिमा का भंजक मेरा शत्रु बनेगा।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–24)

निषादराज और निषाद युवकों में युद्ध–विरत करते हुए समझाते हैं–

निर्वासित किया नहीं राम को वृद्ध पिता ने
निर्वासन लिया राम ने स्वयं आप ही।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–26)

एक युवक विगत पन्द्रह दिनों के आपातकाल का वर्णन करता चलता है–

और हुआ आपत्काल फिर ऐसा।
खड़ी मंथरा करे ठिठोली
कौशल्या के शयनकक्ष में।
पागल महिलाएँ भरी गईं लाल–लाकर।
× × ×
हुए राजगुरू भी बन्दी
फिर भी हम हैं गूँगे बहरे
लुंज–पुंज हैं
टूटे–फूटे राज खिलौने
जब जो चाहे जैसा चाहे
हमें वना ले।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–28–29)

वाल्मीकि स्वयं को रामकथा का दृष्टा बताकर समझाते हुए यह कहते हैं–

भरत रत्न हैं राम नेह के,
भरत यत्न हैं पूर्णकाम के
भरत मुक्ति हैं, स्नेह भक्ति के
भरत मुक्ति हैं तेज ताप के
भरत धुरी हैं विनय धर्म के
देखोगे यदि भरत भाव को।
× × ×
भरत भाव की छाया में ही

राम भाव है।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–31–32)

वाल्मीकि की उक्ति में युवकों को लगता है कि वे निषादराज के मत का ही समर्थन कर रहे हैं। उनका परितोष नहीं होता अंततः सभी समवेत स्वर में स्वीकार करते हैं कि– "चले भरत की प्रशंसा और हम।" और सबके सब भरत–प्रशंसा की ओर प्रयाण कर जाते हैं।

2.ङ.ii. मातृ शिविर–

कामदगिरि की तलहटी में लगा अवध–प्रशंसा कई उपशिविरों में बँटा था। उन्हीं में एक मातृ–प्रशंसा था। उक्त प्रशंसा में राज माताओं के अतिरिक्त गुरूपत्नी अरून्धती, ऋषि पत्नी पतिव्रता अनुसूया, सुमन्त पत्नी वसुमती एवं अनेक गण्य–मान्य नगर–श्रेष्ठियाँ भी उपस्थित थीं। जनक–प्रशंसा से महाराज जनक की पत्नी सुनयना भी वहीं आ गयी थीं। प्रशंसा में व्याप्त मौन को तोड़ते हुए कैकेयी ने आगे कहना आरम्भ किया कि मुझे अपने कर्म पर तनिक भी ग्लानि नहीं है। मैंने सब कुछ परमार्थ भाव से किया। रघुकुल में भक्ति और भाव की रसधारा में कर्म छूटा जा रहा था। इसीलिए मैंने आज यह अपयश लिया है। इस कलुष को वरण करने के मूल में "राम सुअन को गहन मुक्त कर" पुरुषार्थ प्रदान करना है। मेरा दृढ़ निश्चय है कि इससे–

वीर तपस्वी वेश राम का।
दीप्तमान होकर निखरेगा,
अजर–अमर यश होगा उसका
वश्व रूप होकर चमकेगा।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–39)

कैकेयी कहती है कि लोक लांछन मेरे लिए उज्जवल थाती है। तब भद्र राम को भरत–भाव की यह रस–धारा कहाँ से मिलती।

प्रसव किया है जिस देह पिण्ड का
वही हमारी कीर्ति क्रिया है
मैंने उसको रक्खा पाला
अपना ही तनमन सब कसकर
मेरे–तन से ही निकली है
भक्ति भाव की धारा बनकर।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–41)

सुनयना के अनुसार यश-अपयश, हानि–लाभ आदि केवल भाग्य के खेल हैं। सुमित्रा के अनुसार कैकेयी के ये कथन लोक–लांछन के उत्तर भर हैं। उन्हें यह सब लोक–रंजन के लिए की जाने वाली राम

की लीला भर प्रतीत होती है। कौशल्या भी कैकेयी को प्रबोधित करती है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि राम और भरत में भेद नहीं है। दोनों में भेद करना पाप है। उनकी घोषणा है–

पूछो मुझसे भरत कौन है?
मैं तो राम भरत में पाती
सदा देखती राम भरत–मय
राम भरत में भेद न करना
महापाप है भेदभाव यह
राम भरत एक हैं सुन लो
परम तत्व का है स्वभाव यह।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–42)

कैकेयी को भी ज्ञान का यह चरम रूप स्वीकार्य है। अरून्धती भी राम और भरत में भेद नहीं मानती। गूढ़ बातों से सामान्य नागरिकाओं को कुछ भी लेना देना नहीं है। माताओं से उनका एक ही आग्रह है–

आए हैं हम यहाँ राम को वापस लेने
फिर विवाद यह कैसा
भरत रहे बन में, या राम रहें
दोनों स्थिति बड़ी भयावह
× ×
सोचें मातृ, निकालें ऐसा
दोनों ही रहें अवध में
यही हमारा तो निश्चय है।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–46–47)

इस पर कैकेयी, सुमित्रा एवं कौशल्या अपने मत व्यक्त करती हैं। वार्तालाप लम्बा खींचता चला जाता है। अनुसूया यह मानती है कि भरत की इस मर्मपूर्ण भक्ति और राम की मर्यादामय प्रीति को भावी पीढ़ियाँ ही सही रूप में आँक सकेंगी। सुनयना को लगता है कि राम और भरत में अभेद अस्वीकार कर कैकेयी अपनी मूल बात से हट गयी हैं। तभी उन्हें "भरत–सत्य" और "राम–सत्य" में भेद नहीं दिखता। अनुसूया के अनुसार इसका कारण भेदमयी बुद्धि का भक्तिमयी हो जाना है। तर्क–वितर्क को बढ़ते देख सुनयना बीच का रास्ता निकालती है–

व्यर्थ तर्क करने में क्या है?
छोड़ें बातें राम भरत पर,
हम तटस्थ होकर देखें

वह ही कर ले निर्णय अपना

हमको तुष्टि उसी में होगी"।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–52)

2.ङ.iii. .भरत शिविर–

भरत अपने शिविर में चिंतित हैं। गुरू वशिष्ठ उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि तुम्हारा निर्णय ही राम को मान्य होगा–

जो तुम कह दोगे वही राम को मान्य रहेगा

राम न्याय भी भरत पक्ष में ही नत होगा।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–57)

इसके बाद वशिष्ठ वहाँ से अपने ऋषि–शिविर की ओर चले गये। उनके वहाँ से जाते ही चिन्तित मन शत्रुघ्न भरत के निकट आ गये, भीतर से माण्डवी भी आ गयी। माण्डवी उन्हें सम्बोधित करती है कि आर्य को धीरज धरना चाहिए। शत्रुघ्न भी उन्हें समझाते है कि अपराध भावना व्यर्थ है। भरत की चिन्ता यह है कि भक्ति उनकी निजी साधना है। वह व्यक्ति विशेष ही होकर सबसे भला कैसे व्याप्त हो सकेगी, किन्तु माण्डवी की मान्यता है–

निर्णय यदि है राम समर्पित

तो वह मंत्र बनेगा

जीवन देगा।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–61)

वह कर्म को महत्वपूर्ण बतलाती हुई कहती है कि मानव जीवन पुरूषार्थ जन्य है। देववर्ग तो पुरूषार्थ हीन, कर्म हीन और सुख–दुख से वंचित सर्वदा भावहीन है। इसीलिए उसके अनुसार भरत की दिशा अभेद है–

यदि प्रभु राम भरत का भेद मिटा दें

देखें भरत राममय होकर

रामः भरत रूप में होकर

अवध राज्य का त्राण इसी में।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–62)

माण्डवी की बात का समर्थन शत्रुघ्न भी करते हैं। किन्तु, भरत को चिन्ता सताती है–

मेरे कारण राज्य अवध का

हुआ मसान सा निर्मन निर्जन।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–67)

तभी बाहर से उसी ओर बढ़ते हुए जनसूमह का कोलाहल सुनाई पड़ता है। शत्रुघ्न अनुमान कर बताते हैं कि सम्भवतः वनवासियों की भीड़ इधर ही चली आ रही है। प्रशंसा के द्वारा पहुँचते ही भीड़ से कुछ स्वर प्रश्नके रूप में गूंज उठते हैं– "हमें स्पष्ट निर्णय चाहिए कि क्या राम और भरत एक ही हैं? अथवा दोनों भिन्न–भिन्न हैं? हम किसका अनुशासन स्वीकार करें? राम का? कैकेयी का? भरत का? या गुरूजन का? भरत प्रशंसा से बाहर जाकर उनसे मिलने को प्रस्तुत होते हैं। शत्रुघ्न उन्हें हाथ में आयुध रख लेने की सलाह देते हैं, पर वे उसे स्वीकार नहीं करते–

अपने ही से डरना
महा रोग है
मेरी रक्षा प्रजा करेगी
मैं हूँ सेवक।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–72)

वे बाहर निकल जाते हैं। उत्तेजित भीड़ भरत पर व्यंग करने लगती है। वाल्मीकि वर्जित करते हुए भीड़ को संबोधित करते हैं–

बन्द करो ये कटु भाषाएँ
दूर करो सारी शंकाएं
मत यह व्यंग वचन तुम बोलो
भाषा पर संयम सीखो।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–72)

प्रजा की उत्तेजना को स्वाभाविक स्वीकार करते हुए उसके निमित्त भरत अपने को ही दोषी घोषित करते हैं। भीड़ के युवकगण केकय सैनिकों द्वारा किए गये उत्पीड़नों का वर्णन करते हैं। भरत उनकी सारी बातों को स्वीकार करते हैं सबका उत्तरदायी वे अपने को मानते हुए कहते हैं कि तुम सब मेरे रोम–रोम को अस्त्र–शस्त्रों से बींध दो। वे कहते हैं मुझे विश्वास है कि यदि तुम सब में यह निर्भीकता और तेवर बने रहे तो राम राज्य निश्चय ही आएगा। भरत के विचारों को सुनकर उत्तेजित युवक आश्वस्त हो चुके थे। निषादराज भरत को "राजन" शब्द से संबोधित करते हैं तो भरत पुनः प्रतिवाद कर उठते हैं–

राजा भरत नहीं हो सकता
उसका प्रण है प्रभु की सेवा,
राजा वह है जो सक्षम हो
योग–क्षेम का जो हो वाहक।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–76)

किन्तु वाल्मीकि का दृढ़ स्वर गूंज उठता है– "सबके स्रोत भरत ही होंगें।" योग्य समाधान के लिए निषादराज सबको ज्ञानी और परम तपस्वी जनक के पास चलने के लिए आग्रह करते हैं। फलतः पूरा जनसमूह जनक–प्रशंसा की ओर बढ़ जाता है।

2.ङ.iv. जनक शिविर–

जनक भी अपने शिविर में चिन्तित बैठे थे। उन्हें लग रहा था कि वन में आकर मैंने ठीक नहीं किया– यहाँ आकर भवसागर में पड़ने के कारण तो मैंने "ज्ञान गांठ की पूंजी खोई, देख भक्ति निष्कर्मक।" तभी उनकी दृष्टि मातृ–प्रशंसा से अभी लौटी सुनयना की ओर गयी। सुनयना ने मातृ–प्रशंसा में हो रही चर्चा से उन्हें अवगत कराते हुए बताया कि :

(क) बहुत व्यथित है मझली रानी
फिर भी दृढ़ हैं
चट्टानी आभा से मंडित
वज्र हृदय पर रखकर अपने।
अब भी कहतीं– "मैं निश्छल हूँ।"

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–82)

(ख) कौशल्या की दशा भयानक
भूल गयी है सब चिन्ताएँ
चिन्ता केवल एक भरत की
ज्ञान बन गया कवच महिर्षी का
भरत–भक्ति की मर्यादा का
परम ज्ञान ही
भक्ति भाव है।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–83)

सुनयना की बातें सुन याज्ञवल्क्य अपना मंतव्य देते हैं–

भरत प्रशांत महासागर हैं
अन्तर मन में रत्न छिपाये
भरत धर्म की धुरी सुधर हैं
राम, "तथास्तु" शक्ति है जिसकी।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–83)

उनके अनुसार मूलशक्ति जानकी सही अर्थों में विदेह की वैदेही है। इसी बीच श्रीराम–प्रशंसा से जानकी वहां आ जाती हैं और सबकी दृष्टि उन पर जा टिकती है–

सन्मुख खड़ी जानकी थीं या स्वयं ज्ञान की पुत्री सीता
वल्कल वसन, बनी योगिनी, सिद्ध कामना–पूरित–प्रीता।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–86)

जानकी के उस रूप को देखकर जनक को उसके पिता होने के गौरव का अनुभव होता है। माता सुनयना का वात्सल्य उमड़ पड़ता है। जानकी को चित्रकूट में वनवासी ही नहीं, जड़–चेतन, पशु–पक्षी आदि सभी माता रूप में ही स्वीकार कर "माता" शब्द से सम्बोधित करते हैं। रात अधिक होने पर जानकी वहाँ से विदा ले श्रीराम शिविर में लौट जाती हैं। जानकी के जाते ही सूचना मिली कि वाल्मीकि के नेतृत्व में पुरवासी प्रशंसा की ओर आ रहे हैं। कुछ ही क्षण में वे सभी जनक के समक्ष आ जाते हैं। जनक उन्हें समझाते हैं कि प्रजा को राम या भरत से क्या लेना–देना है। उन्हें तो केवल अच्छा शासक चाहिए। प्रजा की ओर से एक युवक कहता है जब महाराज दशरथ मोहग्रस्त हो गये तो क्या ऐसा सोचना संगत नहीं लगता कि सत्ता की प्राप्ति के पश्चात भरत भी सत्ता–मद से ग्रस्त हो जाय। युवकों के समक्ष अजीब स्थिति है कि राम और भरत दोनों ही त्यागी हैं। वाल्मीकि उन्हें सलाह देते हैं कि वे भरत से राज्य सँभालने का आग्रह करें। जनक भी उसकी पुष्टि करते हैं, किन्तु भरत को वह मान्य नहीं है। भरत कहते हैं–

तो क्या सत्ता भोगी होकर मैं
भक्त बनूँ राम भद्र का?

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–92)

पर भरत की एक भी नहीं चलती और निषाद एवं सभी युवजन भरत से आग्रह कर उठते हैं–

उठो भरत
मैं वृद्ध और यह युवजन,
वरण कर रहे तुमको इस क्षण
एक तपस्वी राजा बन

कर सकता है राज्य अवध का।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–93)

तभी भीड़ से आवाज आती है जनता आप सब के निर्णय को जानने की इच्छुक हैं। भरत निर्णय के लिए श्रीराम प्रशंसा की ओर चल पड़ते हैं। वाल्मीकि को लगता है कि मार्ग तो मिल गया है, उसे केवल और प्रशस्त करना है।

2.ङ.v. ऋषि शिविर–

ऋषि–शिविर में वशिष्ठ , याज्ञवल्क्य, कौशिक, अत्रि, वामदेव आदि के अतिरिक्त चार्वाक के अनुयायी जावालि भी हैं। जाबालि ने मत दिया कि वृद्ध पिता दशरथ की आज्ञा काम–प्रेरित थी। अतः राम

के लिए उसकी अवज्ञा करना न तो पाप है और न अनुचित ही। जाबालि के अनुसार भक्ति भाव की बात उठाना राज धर्म की निन्दा करना है, परन्तु भरद्वाज के अनुसार राजधर्म के लिए देशभक्ति आवश्यक है वामदेव के अनुसार वही "भरत प्रणीत–सवधर्म धर्म है", जिसकी सीमा को वशिष्ठ के अनुसार विस्तृत करने में ही सबका हित है–

व्यष्टि आस्था उत्सर्गित कर
समष्टि की सीमा दर्शाऐं।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–104)

और अत्रि ऋषि का भी मत है–

अनुशासित भरत भाव ही
हमें सत्य तक ले जाएगा।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–105)

तभी वहाँ वनवासी और पुरवासियों के साथ भरत आ जाते हैं।

ऋषियों के समक्ष भरत आत्मग्लानि प्रकट करते हैं। वे सारे कामों का दोषी अपनी माता को मानते हुए कहते हैं कि इतिहास इसे नहीं भूल पाएगा कि सबके जीवन का केतु एवं सबकी शंकाओं का हेतु मैं ही हूँ। वशिष्ठ उन्हें प्रबोधित करते हैं तथा वाल्मीकि भी उसी मत का पोषण करते हैं–

राम–भरत में भेद नहीं कुछ
राम कर्म की मर्यादा हैं।
भरत धर्म की धुरी मनोरम।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–106)

भरत ऋषियों के समक्ष अपनी एक मात्र आकांक्षा व्यक्त करते हुए कहते हैं–

मैं अब केवल यही चाहता
मिले मुझे राम की छाया।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–107)

वशिष्ठ उनसे पूछते हैं कि जिस अवधराज और उसकी सम्पत्ति राम की है, उसकी रक्षा करना क्या उसका धर्म नहीं है। भरत कहते हैं, मेरी सम्पत्ति घोषित कर रहे हैं जो वस्तुतः मेरी है ही नहीं भरत की बातें सुन जनक उन्हें साधुवाद देते हुए स्वीकारते हैं–

जब तक यह स्थिति होगी
तब तक समाधान है मुश्किल ।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–107)

यह बात उपस्थित जन को ठीक लगती हैं। प्रजाजन और युवकों से निषादपति का आग्रह है कि भाव के इस विवाद को हमें राम–भरत पर ही छोड़ देना चाहिए। जनक उस वनवासी युवक को भी साधुवाद देते हैं जिसके प्रश्न–प्रति प्रश्न से यह मार्ग मिला है। वे मानते हैं कि जब भी पीढ़ियाँ प्रश्नों से टकराती हैं तो युवा पीढ़ी ही मार्ग खोजती है। वशिष्ठ की राय है सही उत्तर राम की शरण में जाकर ही पाया जा सकता है। वामदेव उनका समर्थन करते हुए कहते हैं–

राम शरण जाने का निश्चय
स्वयम् निवारण है प्रश्नों का
आयें चले राम प्रशंसा में
समाधान हो जहां सप्त ही
सब प्रश्नों का।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–110)

और फिर सभा विसर्जित हो जाती है, आह्लादित हो सभी राम की शरण में जाते हैं।

2.ङ.VI. श्रीराम शिविर–

राम अपने शिविर में निशच्छल ध्यान में बैठे है उनके हृदय में उद्वेलित भाव–प्लावन अश्रु बूँदों के रूप में छलक पड़ा। कंपित स्वर में सीता ने प्रश्न करते हुए कष्ट का कारण जानना चाहा। सीता के प्रश्नों ने राम को और भी बोझिल बना दिया। तभी लक्ष्मण ने आकर वनवासियों, पुरवासियों, ऋषियों आदि के आने की सूचना दी। परिणामतः सीता सहित राम कुटी के द्वार पर आ गये। भरत ने आते ही राम और सीता के चरणों पर अपना मस्तक टिका दिया। भरत को राम ने उठा लिया एवं ग्लानि से मुक्त करने के लिए उनसे कहने लगे–

हे भरत बन्धु मत हो अधीर
मैं राम साक्षी दे कहता,
मेरे मन में नहीं मोह,
तुम ऋजु पावन हो सरल बन्धु
मेरे मन में कुछ नहीं कोह।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–118)

जिसके लिए भरत को आत्मग्लानि थी– "मैं कुल कलंक मैं" और उसे भी राम महान कहते हैं। राम की वाणी से कैकेयी को प्रसन्नता होती है। पुनः वह दोनों की शुभाशंसा करती है–

हे दीप कलंकित आँचल के
तुम दोनों हो पवमान सदा।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–120)

वाल्मीकि, वशिष्ठ और वामदेव कैकेयी की सराहना करते हुए उसे राम और भरत दोनों पक्षों को आलोकित करनेवाली स्वीकारते हैं। कैकेयी का राम से आग्रह है कि उसी के निर्णय पर जन–जन की लाज टिकी है। राम का तर्क है कि वचनबद्ध पिता और माता की इच्छा को मैंने "आदेश" स्वीकार कर स्वधर्म बना लिया है। फिर राजा की "इच्छा" ही "आदेश" भी है। मंथरा कहती है–

मैंने जो विष बोया था
उसमें हाथ नहीं था मेरा,
तुम सबका प्रारब्ध वहाँ पर
मोह–निशा में मौन पड़ा था,
विधि ने मुझको यंत्र बनाया
मैं केवल असहाय माध्यम।

(चित्रकूट–चरित,पृ0सं0–124)

भरत क्रोधित हो मंथरा को आजीवन शान्ति नहीं पाने का शाप देते हैं। राम का मंथरा से आग्रह है कि वह भरत के शाप को अन्यथा न लें। कालचक्र की गति बड़ी निर्मम होती है। कौशल्या उस कथन का पोषण करती हुई कहती है कि कैकेयी का कर्म भी प्रभु की इच्छा के अनुरूप ही हुआ है। मंथरा तो केवल निमित मात्र ही है। वाल्मीकि स्वीकारते हैं कि मंथरा को जो भी लांछन मिल रहा है। उसके लिए वे ही उत्तरदायी हैं। सभी राममय हो रहे थे। एक मात्र मंथरा ही कैकेयीमय थी। साथ ही वह अवध की भी नहीं थी। इसीलिए उन्होंने इस निमित्त मंथरा को चुन लिया और वह कलंकिनी बनी। वाल्मीकि कहते हैं कि कर्म भावमय होता है और भाव कर्ममय, तपस्या की यही स्थिति होती है। राम भरत को समझाते हैं कि पुत्र चाहे जितना बड़ा भी तपस्वी क्यों न हो, माता न तो कभी छोटी होती है और न खोटी अथवा कुमाता ही। भरत का आग्रह अब भी शेष नहीं हुआ है। वे निवेदन करते हैं–

किन्तु आर्य!
मुक्त नहीं हो पाया मैं,
अवध राज्य को स्वीकारें प्रभु
मुक्त करें मुझको बंधन से।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–129)

और राम उन्हें आश्वस्त करते हैं–

मुक्त स्वयं तुम हो चुके बन्धु
राज्य किसी का नहीं कभी भी
वह होता सदा प्रजा का।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–129)

तत्पश्चात भरत से राम अपने विराट विश्वरूप का विस्तार पूर्वक स्पष्टीकरण करते हैं। विराट् विश्वरूप को पहचानने पर स्पष्ट हो सकेगा कि–

माता ने निर्वासन दिया
राम–काया को,
ताकि विश्वरूप राम का
जागे सब में।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–133)

राम के उस विराट् विश्वरूप को देखकर पूर्णतः रस प्लावित हो रहा था। सबकी आंखें नम हो गयी थीं। सबके मानस पट पर पड़ा अन्धकार अब नष्ट हो चुका था और–

ले लिया भरत ने चरण पादुका कर–कमलों में दो कमल खिले
उस अंधकार में साथ–साथ दो कमल नयन, दो कमल खिले।

(चित्रकूट–चरित, पृ0सं0–135)

वशिष्ठ ने भरत को प्रबोधित करते हुए कहा कि यह पादुका ही तुम्हारा अवलंब है। यह वह आधार है जिसे धारण कर तुम राम–भाव का वरण करो। राम की पादुका को प्राप्त कर वे अवध लौटने को प्रस्तुत हुए। तदुपरांत, ऋषिगण की शुभाशंसा एवं सब प्रकार से प्रसन्न वातावरण में सभा विसर्जित हुई। इधर सबके मुखमण्डल पर प्रसन्नता की आभा थी और उधर पूर्वी क्षितिज पर प्रातःकालीन अरुणिमा छा रही थी।

परिवर्तन परिवर्द्धन–

चित्रकूट–प्रसंग का मूल रूप'वाल्मीकि रामायण'में मिलता है। आलोच्य कृति के कवि वर्मा जी ने पर्याप्त परिवर्तन और परिवर्द्धन किया है।'वाल्मीकि रामायण'के निम्नांकित प्रसंग इसमें पूरी तरह छोड़ दिये गये हैं :–

(क) लक्ष्मण के क्रोध को शान्त करने के लिए भरत के सद्भाव का राम द्वारा वर्णन।

(ख) भरत–शत्रुघ्न का श्रीराम–आश्रम में जाना एवं उनसे मिलना।

(ग) श्रीराम का भरत से वन में आने का प्रयोजन–पूछना, भरत का उनसे राज्य–ग्रहण करने का आग्रह और राम का उसे अस्वीकार करना।

(घ) भरत का राम को पिता की मृत्यु का समाचार कहना, रामादि का विलाप और पिता के लिए जलांजलि एवं पिण्डदान।

ये सभी प्रसंग "चित्रकूट–चरित" में वर्णित नहीं हैं । इस कृति में जाबालि ने ऋषियों के समक्ष नास्तिक मत से श्रीराम को अयोध्या लौटकर राज्य ग्रहण करने की बात की है। इस रचना को नवीन युगबोध के अनुकूल बनाने के लिए कई नवीन तथ्य भी कल्पना के आधार पर उपस्थापित किए गए हैं–

(क) दशरथ की मृत्यु के पश्चात पन्द्रह दिनों तक आपतकालीन कैकेयी–शासन में केकय–सैनिकों का प्रजा पर अत्याचार।

(ख) माताओं और पुरवासियों में राम–भरत की समस्या के समाधान के लिए चर्चा।

(ग) कैकेयी के कर्म निष्ठ रूप, कौशल्या के ज्ञानी रूप, माण्डवी के तपस्विनी रूप, मंथरा की आत्मा–स्वीकृति आदि का प्रत्यक्षीकरण।

स्पष्ट है कि कथा–योजना के कवि ने मूल प्रसंगों में से अनेक का परित्याग एवं अपनी ओर से कई नवीन प्रसंगों का ग्रहण किया है।

*****

द्वितीय अध्याय

संदर्भ तालिका

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड 97–112, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 2014 वि0
2. रामचरितमानस,तुलसीदास, अयोध्याकाण्ड 237–321, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 2016 वि0
3. रामचरितमानस और पूर्वांचलीय राम काव्य, रमानाथ त्रिपाठी,पृ0 सं0 6
4. चित्रकुट चित्रण, विद्याभूषण, 'विभ' पृ0 सं0 14,प.स. ; कला कार्यालय, प्रयाग प्रं0 सं0 1981 वि0
5. चित्रकुट चित्रण, विद्याभूषण, 'विभु' पृ0 सं0 17, प.स. कला कार्यालय, प्रयाग प्रं0 सं0 1981 वि0
6. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड 97–112, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 2014 वि0
7. चित्रकुट चित्रण, विद्या भूषण 'विभु:पृ0 सं0 23, द्वि.स.
8. चित्रकूट, रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री', पृ.सं. 60 तृ.स.
9. रामचरितमानस,अयोध्याकाण्ड, दोहा सं.140, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 2016 वि0
10. चित्रकूट' रामेश्वरदयाल दुबे, पृ0 सं0 17 द्वि.सर्ग, शीला देवी दुबे, निराला नगर, लखनऊ, 1966 ई0
11. चित्रकूट' रामेश्वरदयाल दुबे, पृ0 सं0 57 पंचम सर्ग, शीला देवी दुबे, निराला नगर, लखनऊ, 1966 ई0

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चरित्र विधान

किसी कविता में कथानक के पश्चात् चरित्र पर ही कवि की दृष्टि रहती है क्योंकि कथा में जीवन को सम्पूर्ण रूप से व्याख्यायित करने के लिए चरित्र ही होते हैं। चरित्र स्वाभाविक हो, कुशल हों और वास्तविक लक्ष्य तक पहुँचने में सफल हों, अक्सर यही धारणा होती है। इस अध्याय में 'चित्रकुट' संज्ञक कृतियों के प्रमुख पात्रों एवं उनके चरित्र–विधान पर प्रकाश डाला गया है। मुख्य पुरूष पात्र के रूप में राम,भरत,लक्ष्मण, जनक तथा वशिष्ठ के नाम उल्लेखनीय हैं, जबकि प्रमुख स्त्री पात्रों के रूप में सीता, सुनयना, कैकेयी एवं कौशल्या प्रमुख हैं। उक्त सभी पात्रों के सन्दर्भ में कवि मानस में "रामःरामादिवत्, रावणः रावणादिवत्" का सिद्धान्त संस्कार के रूप में विद्यमान है। इनके अतिरिक्त विवेच्य ग्रन्थों का कथा विस्तार पात्रों के समग्र जीवन में सम्बद्ध न होकर खण्ड विशेष तक सीमित है। अतः पात्रों के गुण एवं शील स्वभाव की विशेषताओं को समग्र परिप्रेक्ष्य में न देखकर सीमित परिप्रेक्ष्य में ही विवेचित किया गया है। इस प्रकार 'चित्रकूट संज्ञक' काव्य कृतियों में प्रमुख पात्रों का चरित्र–विधान अपनी एक विशिष्ट आभा को लेकर प्रकट होता है।

'चित्रकूट' संज्ञक आधुनिक काव्यों में मांडवी, उर्मिलादि के प्रसंग आए हैं जो 'मानस' में नहीं हैं। पूरी अयोध्या आई है पर उनका प्रसंग 'मानस' में कहीं नहीं है। आलोच्य कृतियों के रचनाकार इन पात्रों के माध्यम कुछ विशेष बात को युगानुकूल रंग देने के अभिलाषी हैं। डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त ने हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास में इसे इस तरह व्यक्त किया है। 'इस परम्परा के काव्यों का विषय–वस्तु चाहे पौराणिक हो या ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक किन्तु उसका मूल प्रयोजन सर्वत्र एक ही परिलक्षित होता है वह है वैदिक साहित्य, पौराणिक साहित्य एवं महाकाव्यों में निरूपित आख्यानों की आधुनिकता की भूमि पर इस तरह अवतरित करना कि जिससे वे आज के जन मानस को नूतन दृष्टि एवं नई शक्ति दे सकें, अथवा ऐतिहासिक पात्रों एवं कथानकों में अन्तर्निहित ऐसे चारित्रिक तत्त्वों का अनुसंधान करना जो कि आज के मानव की उस चेतना को जो पश्चिम के अंधभौतिकवाद, यथार्थवाद और भोगवाद के प्रभाव से पाशविकता की ओर अग्रसर हो रहा है, को छोड़कर जीवन के स्वस्थ, संतुलित एवं उच्च चारित्रिक मूल्यों की ओर आकर्षित कर सकें।[1] ऐसे प्रबन्धों में शिल्प और शैली की दृष्टि से कथावस्तु में स्थूल इतिवृत्त की मात्रा धीरे–धीरे न्यून होती गई है। उसके स्थान पर दार्शनिक मनोवैज्ञानिक तत्त्वों और अंतरिक द्वन्द्व के निरूपण की प्रवृत्ति बढ़ती गई है। निर्जीव पात्रों को सजीव की भाँति या सजीव को सांस्कृतिक तत्त्वों के प्रतीक की भाँति या किसी विचार दर्शन के प्रतिनिधि की भाँति व्यक्त किया गया है। परम्परागत धटनाओं या प्रसंगों को आधुनिक संदर्भों के साथ जोड़ने की प्रवृत्ति इनमें दृष्टिगोचर होती है।[2] चरित्र–चित्रण में दृष्टिकोण का

अंतर मूल से दूर ले जाता है क्योंकि मनुष्य की कल्पना का आधार बहुत कुछ उसका परिवेश होता है। युग के अनुसार आदर्श और उसकी धारणाएँ बनती हैं, अतएव भिन्न-भिन्न युगों में काव्य की विभिन्न विशेषताएँ मिलेंगी। मानव की मूल वृत्तियाँ एक सी होती है, किन्तु युग के अनुसार उनके आवेग और प्रकाशन में भेद मिल सकता है। काल और परिवेश के अनुसार आदर्श और यथार्थ चित्रण में लेखक के वर्णन और कल्पना पर उसका परिवेश प्रभाव डालता है।

चित्रकूट संज्ञक कृतियों में खण्डकाव्य ही प्रमुख हैं। खण्डकाव्य में जीवन के किसी मार्मिक अंश की विवृति रहती है। इसमें भाव धारा प्रमुख न रहकर कोई घटना प्रधान रहती है। भाव की समष्टि के लिए उसमें पूर्वापर सम्बन्ध के निर्वाह की भी आवश्यकता होती है। इस प्रकार चित्रकूट पर आश्रित कवियों के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वे चरित्रों को उसके परम्परागत रूप में ही चित्रित करें अथवा वेह अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा युगानुकूल रूप में परिशोधित कर प्रस्तुत करें। इसमें कवि के लिए चरित्रों के परम्परागत स्वरूप में फेर बदल करना आवश्यक हो जाता है। इसका कारण यह है कि परम्परागत रूप में चरित्र को उपस्थित करने पर एक तो कवि का उद्देश्य ही पूरा नहीं हो पायेगा और दूसरा उसकी कला कुशलता भी प्रकाश में नहीं आ पायेगी। इसी से आधुनिक हिन्दी के काव्यों के चरित्रों का आधार पौराणिक होते हुए भी उनका उपग्रहण वर्तमान युग की परिस्थितियों के अनुसार हुआ है।

3.क. विद्याभूषण 'विभु' कृत चित्रकुट चित्रण –

विद्याभूषण 'विभु' निसर्गजात सुषमा के निरीक्षण करनेवाले कवि हैं। वनराजि के विचरण में उनको चित्ताकर्षक चित्रपुरी, चित्राचल और चित्रवन के मनोरम दृश्य लुभाते हैं। तब उन पवित्र स्थानों का प्राचीन गौरव उन्हें आकर्षित करता है और उनकी वर्तमान अवस्था का वर्णन करते हुए वे उनके भीतर प्रवेश करते हैं। उन्होंने अनेक विशाल विटपों का वर्णन किया है। रमणीक उत्सव के 'उमंग की उच्छल धारा' नैसर्गिक चित्रण की धारा इन्होंने बहायी है। मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम ने अयोध्या को छोड़ कर जिस मनोहर स्थान का चयन अपने निवास के लिए किया उसे तीर्थस्थान तो बनना ही था। अत्रि पत्नी सती अनसूया ने जहाँ सीता देवी को पवित्र नारी धर्म का उपदेश दिया उस स्थान की मर्यादा का क्या कहना। वीर व्रती लक्ष्मण ने जहाँ भ्रातृ सेवा का आदर्श सीखलाया, भरत को जहाँ समस्त दोषों के परिहार के पश्चात शांति मिली उस स्थान में प्रकृति स्वयं आकर अपने वैभव के साथ अवश्य स्थित हो जायेगी।

विद्याभूषण 'विभु' ने प्रस्तुत रचना में चित्रकूट की छवि का वर्णन किया है। छवि का अर्थ है शोभा, कांति, दीप्ति आदि। परम शोभा का लाभ जो सौन्दर्य में छिपा हुआ हो जिसके अन्तर्गत कोई दुखी हो और असुन्दर न हो। वन केवल प्रकृति का होता है, वहाँ कोई दुःखी नहीं होता। प्रकृति स्वयं सबकी सुविधा, सबकी आवश्यकता को पूरा किया करती है। अतः वहा परस्पर द्वेश भाव नहीं रहता । प्रकृति से विषम जन भी अपनी प्राकृतिक भावनाओं को विसर्जित कर एक साथ रहा करते हैं। अतः 'चित्रकूट चित्रण' एक प्रकार

का चित्रकूट–दर्शन है। इसमें कोई कथा नहीं, कोई पात्र नहीं, कोई घटना नहीं, कोई संवाद नहीं, कोई नाटकीयता नहीं। कवि उन दृश्यों की ओर इंगित करता हुआ एक–एक चित्र को दिखाता चलता है:–

इसी अचल का एक अंश जो चित्रकूट कहलाता है।
कवि कुलगुरू की रामायण में जिसका वर्णन आता है।।
काव्य केसरी कालिदास ने जिसकी महिमा गाई है।
जिसके गुण की कीर्ति कौमुद्री तुलसी ने छिटकाई है।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ.सं.– 2)

प्रथम छवि में इसी प्रकार ऋषि मुनियों के तपोवन, राम–भरत के मिलन, चित्रकूट के घाट पर संतों के मिलन और ईश्वर के गुणगायन को आधार बनाकर कवि वहाँ की प्रकृति का हार्दिक स्वागत करता है। इसका अंतिम पद है–

लालायित थे बहुत दिनों से उसको आज निहारा है।
कविकाननपावन तीर्थस्थल चित्रकूट यह प्यारा है।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ.सं.– 6)

द्वितीय छवि में चित्रपुरी का वर्णन आता है। इसमें राघव प्रयाग आदि नाना मंदिर का वर्णन है। मंदाकिनी में स्नान करने के लिए कैसे नारियाँ आ रही हैं आदि का वर्णन है। तृतीय छवि में कामदगिरि का वर्णन है। यहाँ के तीर्थस्थलों पर रामनवमी, दीपावली आदि में तीर्थयात्रियों का आना राम–झरोखा, ताल–चौपड़ा का दर्शन करना आदि इसमें वर्णित हैं। शैल–शिखर का दर्शन करना सीता–रसोई, हनुमान–धारा, स्फटिक–शिला, राम–धाम, प्रमोद–वन, सीता–कुण्ड, आत्रि–आश्रम, गुप्त–गोदावरी, राम–कुण्ड, आदि का वर्णन तीसरी छवि में हुआ है। भरत–कुण्ड का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

भरत हृदय सा भरत कूप है निर्मल शीतल जल वाला।
अति गंभीर विशाल वदन है हरता है ईर्ष्या ज्वाला।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ.सं.– 19)

इस प्रकार ऊँचे गिरिश्रृगों के साथ चित्रकूट के भीलों के शील को भी वे नहीं भुलते, जो भगवान राम के चरित्र से प्रभावित होकर अपना निजत्व त्याग देते हैं। चतुर्थ छवि में चित्रवन का वर्णन है।

जिनके तले बनाई कुटियाँ जिनके मृदु फल खाये थे।
ले प्रसून जिनके पहनाये जिन भीलों को भाये थे।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ.सं.– 23)

उन किरात संतानों से, उन वृक्षों से, उन बेलों से कवि अपना साहचर्य स्थापित करता है। क्रमशः दृश्य बढ़ता जाता है और कवि आँखों को उनकी लीला के पार करता चलता जाता है। श्याम चिड़ियाँ उसकी आँखों से ओझल नहीं हो सकती और नतितली ही। इस प्रकार सौन्दर्य और सुषमा के सार का पूरा

वर्णन इस चतुर्थ छवि में हुआ है। बेर के वृक्ष, ताड़–वृक्ष डाल पर लटके रहे लंगूर, चीलें, गौरैया, जामुन के फल, तेन्दू के वृक्ष, अनेक फल और फूलों का, हरे–बहेड़े और आँवला इत्यादि से भरी पूरी वनश्री का वर्णन करते हुए कवि अन्त में कहता है कि इस सौन्दर्य का वर्णन दो आँखों से संभव नहीं। रोम–रोम में आँखें हो जाए तभी इनका वर्णन संभव हो सकता है।

इस प्रकार 'विभु' रचित चित्रकूट चित्रण में पात्र स्वयं चित्रकूट स्थल बना है। कवि स्थान की स्मृति कराकर उसकी पावनता का वर्णन करता जाता है।'रामायण'के पात्र उस स्थल की घटना उनके सम्बन्ध में जुड़कर पूरी कथा को संकेत से कहने लगते हैं। अतः एक पंक्ति ही संपूर्ण कथा की वाहिका बन जाती है। तुलसीदास ने भी इस कला का प्रयोग कर रामायण की विस्तृत कथा को संक्षिप्तता प्रदान की है। इसे अन्तःकथा भी कहा जा सकता है। 'विभु' जी जब प्रथम छवि के वर्णन क्रम का उपसंहार इन पंक्तियों से करते हैं तो कथा का ही प्रसाद उसमें वर्तमान रहता है, पात्र भी उसके भीतर से अपनी कथा कहते हैं–

गुरू वशिष्ठ राजर्षि जनक ने जिसे पवित्र बनाया है
और प्रकृति ने निज हाथों से जिसका रूप सजाया है।

(चित्रकुट चित्रण, पृ.सं.– 6)

उसको देखने की लालसा किसके मन में नहीं होगी। अतः कवि का लालायित मन भी उस प्यारे पावन तीर्थ स्थल को आज निहार कर निहाल हो गया है।

वहाँ के मंदिर, मन्दाकिनी, राघव प्रयाग पद–चिह्न आदि स्थल तीर्थाटन करने वाले यात्रियों से मिलकर अपने चरित्र को सबके भीतर एक बार अवश्य गुनगुना जाते हैं। यह क्रिया पूरी तरह भावमय है क्योंकि भक्ति बिना भाव के मन में उतर ही नहीं सकती। तीर्थ स्थल हमारे सभी मनोभावों को पहचानने के उपकरण बनते हैं। तभी हमारी उत्कंठा वहाँ जाकर पूरी होती है। वही गिरि कामदगिरि बनता है।

हे चित्रकूट नयनाभिराम नर तुझे कामगिरि कहते हैं।
विविध विचित्र कामना लेकर प्रतिदिन आते रहते हैं।

(चित्रकुट चित्रण, पृ.सं.– 12)

अतः 'चित्रकूट चित्रण' काव्य प्रबन्धात्मकता से विहीन स्थूल दृष्टि से पात्र कथादि से हीन है। इसमें मात्र राम–भरत आदि के नामों का उल्लेख ही है। यह काव्य चित्रकूट की पावनता और प्रकृति के स्वरूप वर्णन के बजाय स्थान विशेष की कथा को महत्त्वपूर्ण बनाता चलता है।

'रामचरितमानस' में वाल्मीकि ने श्रीराम को 'आश्रमकहौं समयसुखदायक' निवास स्थान चित्रकूट गिरि को ही बताया था।

'चित्रकूट गिरि करहु निवासु । तँह तुम्हारा सब भाँति सुवासू।
x x x x x x x
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू।।[3]

अतः विभु जी का यह कहना है कि तैंतीस कोटि देवताओं का वहाँ आगमन हुआ था, कल्पना मिश्रित कथन नहीं है। यह नाना पुराण वर्णित कथा का निचोड़ है। चित्रकूट एक ऐसा परम पावन स्थल है जहाँ अमरनाग, किन्नर, दिक्पाल, मुनिगण सभी आते हैं। प्रभु का दर्शन करते हैं। योग, जप, तप, यज्ञ में लग जाते हैं। कोल–किरातों को तो नवों निधियां घर पर बैठे ही मिल जाती हैं। अत्यन्त अनुराग के साथ वे प्रभु को देखते हैं। वे मुग्ध हुए जहाँ तहाँ खड़े हैं। प्रेमाश्रुओं के जल की बाढ़ आ रही है। अतः चित्रकूट नाम सही अर्थ व्यंजित करता है। अतः विद्याभूषण 'विभु' ने चित्रकूट की छवि के वर्णन–विधान से मानवीय कथा को आधुनिक चित्रकूट के चित्रण में नियोजित कर दिया है।

3.ख. रामानन्द त्रिवेदी ' शास्त्री' कृत 'चित्रकूट' के प्रमुख पुरुष पात्र–

त्रिवेदी रामानंद शास्त्री कृत 'चित्रकूट' करूण रस प्रधान खंडकाव्य है। चित्रकूट पर केन्द्रित सभी काव्यों में करूण रस की प्रधानता अवश्य रहेगी। क्योंकि दशरथ की मृत्यु और राम के वनगमन के कारण समस्त अयोध्या विपत्ति से आहत है जैसे पूरी प्रजा और पूरा परिवार अनाथ हो गया। कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ रहा है जिससे परितप्त जनों को त्राण मिले। इसीलिए राम अयोध्या से चलकर चित्रकूट में पदार्पण करते हैं।

3.ख.1. प्रमुख पुरुष पात्र

राम–

कवि की दृष्टि में लक्ष्मण और राम नर–नारायण की भाँति हैं। दोनों धन्वी हैं लेकिन एक गौर हैं दूसरे श्याम। इनके मध्य में मैथिली मुक्ति के सदृश तन्वी लगती है। सचमुच उनके चरण जब पत्थरों पर पड़ते हैं तो जैसे वे पिघल जाते हैं। प्रभु श्रीराम के लिए शिव विरंचि सभी नभ में स्थित होकर जय जयकार करते हैं। प्रथम सर्ग में कवि विशेष रूप से चित्रकूट की छटा और इतिहास का वर्णन करता है। स्फटिक–शिला, निर्झरणी आदि का वर्णन चित्रकूट के वन प्रांगण का संपूर्ण मानचित्र इसमें खींचा जाता है। मिथिलेश कुमारी सीता स्फटिक शिला पर बैठकर जल में तैरती हुई मछलियों को अपने हाथों से धान खिलाती है। वह स्वयं अपनी कुटिया के पास अपने हाथों से लगाये पौधों को सींचती है। जैसे लगता है श्रीराम यहाँ सीता को लेकर कभी आए थे और आज भी उनके साथ हैं। पूरा वन श्रीराम के रहने से अयोध्या के भवन से भी सुखी और शांतिपूर्ण लग रहा है। सभी सुख के साधन इन वन्य प्राणियों के प्रेम और साहचर्य से प्राप्त हो जाता है, जो उन्हें सुख और हर्ष का अनुभव इस कुटिया में हो रहा है वह शायद साकेत के रम्य निकेतन में भी उन्हें नहीं मिला था। श्रीराम यहाँ दुःस्वप्न देखते हैं, अपशकुन की आशंका से व्यग्र हो जाते हैं और कुटीर को छोड़कर बाहर जाने को उद्यत होते हैं। उन्हें अवध के भूपाल दशरथ की स्मृति बहुत दुःख दे रही है। उनकी चिंता रात–दिन लगी रहती है। अतः वे आश्रम में जाकर शांति प्राप्त करना चाहते हैं। दोनों दंपति को राम का आश्रम में आना बड़ा सुखदायी लगता है। राम को

अत्रि आश्रम के वन वैभव को देखकर अवध का विभव विस्मृत हो जाता है। वे मृगशावक को व्याघ्री द्वारा स्तन पिलाते देखते हैं। वह अपने बच्चे को और मृग–शावक को साथ पिलाकर यह बता देती है कि आश्रम का जीवन घर परिवार से भी शांति और समतापूर्ण है। आश्रम में प्रकृति का पूरा साम्राज्य है। राम को यह दृश्य अंतः हृदय से पसंद है–

रम्य आश्रमों में ऋषियों का
कितना उज्ज्वल जीवन है?
विद्या का है नित्य विसर्जन
तप का केवल अर्जन हैं।

(चित्रकूट, पृ.सं.30)

श्रीराम यहाँ माया के दास नहीं अपितु काया–माया सभी इनकी दासियाँ हैं। इनकी जननी क्षमा है पिता पुण्य हैं, भ्राता संतोष है, तितिक्षा भगिनी हैं और शांति उनकी पत्नी। धर्म–कर्म सहचर हैं, विवेक ही पुत्र है, और शम–दम इनके दास हैं। उनके हृदय की भक्ति जैसे शंकर और भवानी के रूप निवास करती है। भला इस प्रकार के व्यक्तित्व के लिए कोई व्यक्ति हो तो उसके सामने सम्राट क्या बराबरी कर सकता है? जिसके शुभचिंतक जीवमात्र हो उसे चिंता क्या होगी, शोक कहाँ से होगा? न किसी की निंदा करते हैं न किसी का गौरव गान ही प्रभु श्रीराम को प्रकृति की सारी वस्तुएँ सदा सुख देने के लिए तैयार हैं। पूरा तपोवन पुण्य से भरा है ऐसे में यहाँ रहकर कौन मुग्ध नहीं होगा। मोह निशा में सोने वाले जीव इस नंदन वन के सदृश चित्रकूट की कल्पना क्या कर सकते हैं। सांसारिक जीव सुख के पीछे भागने वाले को उस सुख का आभास कैसे होगा। वन की वनस्पतियाँ ही तो राजभवन में पत्थरों पर चित्रित की जाती हैं। श्रीराम सीता के साथ किसी कुंज में बैठकर बातें करते हैं और भाई लक्ष्मण इन दोनों के लिए पहरा देते हैं। यह कुंज ऋषियों के आश्रम से दूर कामदगिरि पर बना है। इसी आरण्य में पूरी अवधपुरी आई थी। गुरू वशिष्ठ का पद–वंदन राम–लखन ने किया था। इस अरण्य के वृक्ष साक्षी हैं। जिस प्रकार कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी का रूदनगान यहाँ प्रारंभ हुआ था जैसे रो–रोकर , युग–युग से खड़े ये वृक्ष रघुकुल की व्यथा कथा को सुना रहे हों। पूरी कथा अयोध्या की जैसे इन वृक्षों में आकर सिमट गई हो और ये वृक्ष बार–बार उसे कहते हुए अघाते न हों। श्रीराम कैकेयी से यहीं अपनी पूरी बातें कहते हैं। जब वह वल्कल वस्त्र में लक्ष्मणादि को देखती हैं तो धरती पर धड़ाम से गिर जाती हैं। श्रीराम उन्हें तुष्ट करने के लिए उठा लेते हैं। हृदय से लगाकर रोने लगते है। बचपन के दिनों को यादकर वह कहते हैं– हे माँ! तूने ही हमें गोद में बैठाकर पाला था। एक तो पिता हमें अनाथ छोड़कर चले गए क्या एक–एक कर तीनों माँ भी हमें छोड़ देंगी–

इनकी अहा क्षमा जननी है,
पुण्य पिता भ्राता संतोष।

x x x

धर्म कर्म सहचर विवके सुत

शम–दम इनके किंकर

(चित्रकूट, पृ.सं.31)

आपने तो किसी प्रकार मेरी हानि नहीं की। भरत से भी ज्यादा मुझे प्यार किया था। हमारे लिए आप व्रत और उपवास किया करती थी। कौशल्या ने तो जन्म दिया था लेकिन आपने लालन–पालन कर मेरे जीवन को संचालित किया था। अपनी मथनी से दही मथकर मुझे नवनीत खिलाती थी और मेरे समान ही तुतलाकर बोलते हुए मुझे बोलना सिखाती थी। चित्रकूट से लेकर अयोध्या तक यह सब तुम्हारा ही राज्य है फिर तुम अपने ही राज्य में व्यर्थ ही क्यों अचेत हो रही हो। यदि तुम्हें काल भी खाने आया तो मैं उसे खा जाऊँगा। इस प्रकार राम रोते हुए कैकेयी को समझाते हैं। राम की भावुकता को देखकर गुरू वशिष्ठ धैर्य धारण करने का उपदेश देते हैं और मंत्रपूत जल को छिड़कते हीं उनका मोह समाप्त हो जाता है।[4] क्या रोने से शांति मिल सकती है? अतः रोना भी तो एक उपहास ही हुआ। इस प्रकार राम इस काव्य में एक सामान्य मानव की भांति चित्रित किए गए हैं। जब श्रीराम करूणा भरी संसद में बैठते हैं उनका हृदय समस्त आपदाओं से पूर्ण अयोध्या को श्रवण कुमार वाली कथा वशिष्ठ कह डालते हैं।[5] यह कथा राजा दशरथ की मृत्यु के रहस्य को, पूरी तरह से प्रकट कर देती है और जिसे उन्होंने जीवन काल में मृत्यु के आने के कुछ पूर्व कौशल्या से कहा था उसे वशिष्ठ पूरी सभा के सामने प्रकट कर देते हैं। इससे रानी सहित राघवेन्द्र को भी राहत मिलती है। गुरू वशिष्ठ के उपदेश से सबको शांति मिलती है और श्रीराम कैकेयी को सबसे अधिक दुःखी देखते हैं। अतः उनके कहने का निष्कर्ष है कि वे स्वप्न में भी कैकेयी को दोष नहीं दे सकते। माता के आशीष से हीं वे चौदह वर्ष की वनवास अवधि पूरा करेंगे और भरत कभी भी कैकेयी से रोषपूर्ण बातें नहीं कहेंगे। माता कैकेयी ने ही तो जनता रूप जनार्दन को रंगों में रंगा है। हम यहाँ उद्योगी बने हैं। सुख–दुःख, वर्षा को सहन करने योग्य बने हैं। दुर्दान्त दानवों द्वारा वन में मुनियों का शोणित शोषण करते हुए हमने देखा है।[5] अयोध्यापुरी के बाहर क्या हो रहा है इसका हमें ज्ञान नहीं था। साधारण जीवन क्या होता है इसका भान तक नहीं था। तपस्वी का जीवन हमें कैसे जीना चाहिए इसका अभ्यास नहीं था। उपेक्षित कोल–किरातों, शबरों और निषादों का जीवन यहाँ हमें देखने को मिला है। इस प्रकार राम माता कैकेयी को समझाते हुए अपनी पूर्णता हेतु आवश्यक मानकर उनको अपना हितैषी सिद्ध करते हैं। अंत में गुरू वशिष्ठ के पूछने पर कि "हे राम! अब तुम क्या कहते हो? इस पर कर्तव्य परायण राम कहते हैं–

"मान्य, धर्म में और कर्म में

मैं न समझता हूँ कुछ भेद,

यदि न करूँगा धर्म विहित मैं

पुण्य–कर्म तो होगा खेद।"

(चित्रकूट, पृ.सं.126)

शास्त्रीकृत 'चित्रकूट' में श्रीराम ने मन, वचन और कर्म की एकात्म अनुभूति प्राप्त की है। गुरू की आज्ञा को पाकर वे अवश्य हीं इस वनवास काल को निभा लेंगे। इस प्रकार श्रीराम का चरित्र भावुक ह्रदय होने पर भी कर्म के प्रति अत्यंत आस्थावान है। वे अपने निर्णय में अटूट हैं। वे इस संसार को दैवाधीन मानते हैं। उनमें महात्मा के सभी लक्षण हैं जो कर्म, वचन और मन को एक साथ लेकर चलता है। राम किसी पर दोषारोपण करना नहीं चाहते। कैकेयी उनको अपनी माता से भी अधिक प्रिय है । वे उसे दोष नहीं देते। माता की कृपा से हीं उन्हें संतों–मुनियों का साहचर्य और संन्यासी जीवन प्राप्त हुआ है। इस आश्रम में ही व्यक्ति पूर्णता प्राप्त करने के लिए अग्रगामी होता है। मानव जीवन का लक्ष्य पूर्णता को ही प्राप्त करना है। कैकेयी माता ने राम को न तो वन भेजा है और न उसके कारण राजा की मृत्यु ही हुई है। राजा दशरथ को अंधतापस का शाप पहले ही मिल गया था। चित्रकूट ही राम को इस रहस्य को बतलाने में समर्थ है। अतः इस खण्डकाव्य में राम का चरित्र मनुष्योचित बनकर भी देवतोपम रुप में उभर सका है।

भरत–

भरत का चरित्र कथन से अधिक कार्य से सम्बन्ध रखता है। भरत का चरित्र गुण और कार्य का समन्वय बनकर हमारे सामने प्रकट होता है। वे अपने राम के सिवाय और किसी को कुछ नहीं समझते। पिता–माता गुरू सारे सम्बन्ध उनके प्रभु श्रीराम में जाकर सिमट गये हैं। निष्काम भाव से सम्पूर्ण समर्पण भक्ति का सर्वोपरि रूप हैं। श्रीराम के चरण रूपी कमल में भ्रमर की तरह लुब्ध भरत का मन क्षणभर के लिए भी विलग नहीं होता।

भरत राम के अंश हैं। यही भरत की भक्ति शक्ति बनकर विश्व का भरण–पोषण करती है। नीति, प्रीति और प्रतीति इन तीनों की उपलब्धि भरत के चरित्र में एक जगह मिल जाती है। जैसे भरत राम प्रेम की साकार प्रतिमा हैं। इसीलिए भरत श्रीराम के बहुत प्रिय हैं। चित्रकूट में भरत की राम प्रियता मन्द नहीं हुई है। वे राम के बिना अयोध्या में एक क्षण भी नहीं रह सकते। किसी प्रकार की भी स्मृति उनके मन में रहनी चाहिए। चित्रकूट में भरत का प्रसंग पंचम सर्ग से प्रारंभ होता है, जब लक्ष्मण समस्त सभा में उनके आग्रह को ठुकराते हुए यह निर्णय दे देते हैं कि–

अवधि बिता हम सब आयेंगे,
जाओ अब तुम सब गृह को।"

(चित्रकूट, पृ.सं.86)

इतने में ही भरत लक्ष्मण को रोकते हुए कहते हैं कि अब तुम मत आगे बोलो और इतना कहकर वे प्रभु के चरणों को पकड़ लेते हैं। प्रभु श्रीराम भी अपनी भुजाओं में उन्हें जकड़ लेते हैं। वे भरत को अपना उद्‌गार प्रकट करने के लिए स्वतंत्र कर देते हैं। वे कहते हैं कि हे भइया मैं इस जीवन से ही ऊब

गया हूँ। मैं तो मुँह दिखलाने के योग्य भी इस संसार में नहीं रहा। रास्ता बिल्कुल अंधकारपूर्ण हो गया है। यह सारी सृष्टि मुझको स्वप्नवत् दिखायी पड़ रही है। मेरी माता के द्वारा ही इस पूरे अनर्थ का श्रीगणेश हुआ है। मेरा इस पृथ्वी पर जन्म नहीं होता तो यह उत्पात भी नहीं उत्पन्न होता। जब मैंने शत्रुघ्न के साथ मामा के घर से अवध में प्रवेश किया तभी सारे उत्पात का बवंडर परिदृश्य हो गया था। कहीं कुछ नहीं सब कुछ श्रीहीन दिखायी दे रहा था। चहुँ ओर अपशकुन प्रकट हो रहे थे। सुमंत्र के द्वारा जब मुझे सारे वृत्त का ज्ञान हुआ तो मैं मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गया मैंने आपकी कृपा से ही पिता की अन्त्येष्टि पूर्ण की। इस करूण प्रसंग का वर्णन इससे अधिक नहीं किया जा सकता। बस इतना ही भरत का अनुकथन चित्रकूट में वर्णित है। यह उस कथा का वृत्त है जो श्रीराम की अनुपस्थिति में और भरत के ननीहाल से लौटने पर घटित हुआ है। यहाँ भरत अपने अग्रज श्रीराम के समक्ष उस अनुवृत्त को प्रकट कर अपने संकट को बताते हैं। इसके बाद उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। इससे अधिक उनको कहना भी नहीं था क्योंकि सेवक की कोई इच्छा होती ही नहीं। राम और भरत जब आपस में वार्तालाप कर रहें हैं, वहीं मंत्री सुमंत शोकाकुल होकर चुपचाप रो रहे हैं। राजा दशरथ के शरीर छोड़ देने पर भी उनके द्वारा राम और भरत के समान इस विश्व को एक दिव्यतम उपहार प्राप्त हुआ है। अतः अब चिन्ति होने के लिए कोई बात नहीं रह गयी है–

'अतुलनीय है राम भरत का
प्रेम धरा पर निस्संदेह'

(चित्रकूट, पृ.सं.125)

इतना ही कहकर विदेह जनक का कण्ठ अवरूद्ध हो जाता है। यहाँ राम स्पष्ट कहते हैं कि हे गुरूवर! आप भरत को यहाँ से ले जाँयेः–

'भद्र भरत को समझा करके ले जाएँ कृपया साकेत।'
पूज्य पिता का आज्ञा पालन आज मुझे है अति अभिप्रेत।'

(चित्रकूट, पृ.सं.127)

इस प्रकार राघवेन्द्र का दृढ़ निश्चय देखकर गुरू आह्लाद पूर्वक कहते हैं– हे भरत! लौट चलो अब अग्रज का ले आशीर्वाद। इस तरह पादुका लेकर भरत साकेत के लिए चल देते हैं। सभी के नेत्रों से करूणा की धारा बह रही है जैसे कानन से करूणा की यह धारा अयोध्या के पथ पर बहती जा रही हो।

आलोच्य खण्डकाव्य में भरत बिल्कुल मुखरित होते नहीं दिखाए गये हैं। अत्यन्त मूक होकर वे माँ, गुरू, विदेह, श्रीराम की वाणी के सच्चे श्रोता बने हुए हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि जैसे राम को वन से लौटाने की वकालत सभी लोग कर रहे हैं तो आखिर मुझे कहना ही क्या है। सचमुच वाणी से अधिक हमारे कर्म ही बोला करते हैं। चित्रकूट में सम्पूर्ण कथा विस्तृत हो जाती है। सारे कर्मों का खुलासा हो जाता है। सभी ग्लानि और प्रायश्चित्त मुद्रा में अपनी गलतियों को स्वीकारने के लिए तैयार हैं। भरत ने

कोई अपराध नहीं किया हैं, इन्होंने अपने प्रभु श्रीराम को ही अपना सबकुछ समझा, यहाँ तक कि पिता का मरण भी राम के पास वन जाते ही विस्मृत हो गया। भरत को माता के कारण कलंक की गठरी ढोनी पड़ी। उन्हें कहने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहा। अतः कवि ने उनसे कुछ भी नहीं कहलवा कर उनके चरित्र को और भी सर्वोत्कृष्ट बना दिया है। भरत सच्चे अर्थ में राम की परछाईं हैं। भक्त की सोच न तो अपने इष्ट से अलग हो सकती है और न इष्ट अपने को भक्त से अलग सोच सकता है। भरत राम को वापस लौटाकर स्वयं वन में ही रह जाना चाहते हैं। लेकिन कर्म जगत में ऐसा सम्भव नहीं है। हर व्यक्ति को अपने कर्मों का फल स्वतः भोगकर प्रमाणित कर देना है। भरत की रहनि अयोध्या में भी वन की रहनि से पृथक नहीं है। कर्त्तव्य पालन में वें अत्यन्त सजग हैं जो रात–दिन राम–राम रटते हुए सारे कर्मों को सम्पादित करते हैं। लगता है उनकी प्रत्येक साँस राम से खाली नहीं जाती। इस प्रकार इन सात सर्गों के काव्य ग्रंथ में भरत से बहुत ज्यादा कैकेयी मुखरित होकर भरत की गरिमा को भी प्रकट करती चलती है। अब उनको स्वयं अपनी ओर से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह गयी है।

3.ख. पुरूष गौण पात्र

सुमंत–

अन्य पुरूष पात्रों में सुमंत, विदेह और वशिष्ठ ज्यादा मुखरित हुए हैं। सुमंत राजा दशरथके कृपा पात्र राज काज में निपुण और अन्तःपुर के अन्तरंग सखा हैं। जब राजा दशरथ कोप गृह में कैकेयी को वरदान देकर मूर्च्छित हो जाते हैं उसके दूसरे दिन सुबह कपाट नहीं खुलने पर सुमंत ही अन्तपुर में प्रवेश करने वाले एक मात्र सखा हैं। राम को वन में ले जाकर घुमाकर, सीता लखन सहित लौटा लाना, उन्हें ही आदिष्ट हुआ है और उनके लौट आने पर ही सूचना पाकर राजा दशरथअपना शरीर त्याग करते हैं। अतः नृप के पश्चात सुमंत्र ही अयोध्या के एक मात्र रक्षक और शासक बनते हैं। राजा और राज परिवार के प्रति उनका समर्पण सच्चे अर्थ में उनके आदर्श मैत्री के रूप में हमारे सामने उन्हें लाता है। वे इतने नीति–निपुण हैं कि कैकेयी आदि किसी को भी दोष नहीं देते। उनके लिए संसार में सब कुछ दैवाधीन है। राम के शौर्य पर उनको विश्वास है।

वशिष्ठः–

इस कृति में वशिष्ठ का भी वर्णन है। जब राम पिता की मृत्यु की बात जान कर अचेत हो जाते है तो वशिष्ठ उन्हें उनकी मृत्यु के पीछे छिपी शाप कथा को बताकर उन्हें शान्त करते है तथा राज धर्म की शिक्षा देते है।

3.ख.।। प्रमुख स्त्री पात्र–

कैकेयी –

'चित्रकूट' संज्ञक काव्य में प्रायः कवियों की मनोवृत्ति कैकेयी के चरित्र को निष्कलंकित प्रमाणित करना है। कैकेयी भी अयोध्या मे रहकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सर्वथा असमर्थ रही है। भरत के

लिए समक्ष स्वयं को निष्कलंकित करने की कल्पना चित्रकूट में चलने की तैयारी के साथ ही आरम्भ हो जाती है। राम के वन गमन के पश्चात अयोध्या की सम्पूर्ण कलियाँ मुरझा जाती है। अयोध्या अब द्वंद्व और दु:ख का अन्तःयुद्ध क्षेत्र बन गया है। चित्रकूट ऋषियों का तपस्या क्षेत्र है। यहाँ द्वन्द्व मिटाने के लिए ही, वैर–विरोध को समाप्त करने के लिए ही ऋषि आश्रम बना रहे हैं। यहाँ सब कुछ प्राकृतिक है। प्रकृति परमात्मा की कृपा से सबके लिए जलाहार का, असन–वसन और निवास का प्रबंध करती है। सभी फल–फूल और स्वच्छ जल पीकर राम–राम का जप करते हैं। यहाँ के वन्य जीव भी आश्रमवासियों के शांतिपूर्ण जीवन का अनुकरण करते हैं। ऐसे परिदृश्य में पहुँचकर कैकेयी के स्वभाव में परिवर्तन होना स्वाभाविक बन गया है। अतः कवि ने उसकी जीवन–शैली और विचारों में पूरा अन्तर ला दिया है।

इसके मूल में चित्रकूट भी है और वहाँ के महानायक राम भी। वे ऐसा कोई बर्ताव नहीं करते जिससे कैकेयी के मन में राम के प्रति घृणा का भाव जागृत हो। अतः उसे अपने ही किए पर पश्चाताप और ग्लानि होती है जिसे राम सर्वाधिक महसूस करते हैं।

इस कृति के तृतीय सर्ग में कैकेयी का दर्शन कराया गया है। वह अयोध्या के पूरे वृत्त को अपने कृत के साथ सुस्पष्ट ढंग से कह डालती है। वह स्वयं चित्रकूट में आकर जो अयोध्या में कभी पाषाण हृदया थी पिघल कर सुधा धारा प्रवाहित कर रही है। वह कहती है–

बोली– "लौटो राम! भवन को
राव गय वे हैं सुरधाम,
वत्स, तुम्हारी मैं जननी हूँ
दया करो हे लोक ललाम!
x x x
अपने घर में आग लगाकर
आप बुझाने आई हूँ।
x x x
हे भरताग्रज, देती तुमको
फिर से मैं कोसल का राज्य,
फिर विचरो प्रसाद पृष्ठ पर
तुम देखो अपना साम्राज्य।।

(चित्रकूट, पृ.सं.49)

यह विचारों का परिवर्तन कैकेयी की महानता को प्रकट करता है। उसकी बड़ाई इसी में है कि वह इतिहास चक्र से शिक्षा लेती है। पाप की प्रक्षालन पश्चाताप की पयस्विनी में होता है। वह स्वीकार करती है–

जितना मैंने पाप किया है,
उतना अब करती अनुताप।
सिसक सिसक कर ढोती सिर पर,
भूतल भर का मैं अभिशाप।।

(चित्रकूट, पृ.सं.50)

सचमुच व्यक्ति को अपने पाप ढोते समय ऐसा लगता है कि अब संसार में मेरा जैसा कोई पापी उत्पन्न नहीं हुआ होगा। जैसे संसार ने उसे युग–युग तक अभिशप्त कर दिया हो, ऐसा ही कैकेयी को लगता है। इस निर्जन क्षेत्र में अयोध्या उखड़ कर अपने को खण्डहर बनाकर चित्रकूट में बस गयी हैं। सीता आज कैकेयी के पापों के कारण ही वन–वन भटक रही है। उसका कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलना, शिलाखण्ड पर सोए रहना, कन्द मूल खाकर किसी प्रकार जीवन यापन करना, राम लक्ष्मण का वल्कल पहन कर रहना, ये सब जैसे कैकेयी के कारण ही हुआ है। जब इतना कह कर कैकेयी पृथ्वी पर गिर जाती है तो राम का धैर्य उन्हें समझाने का प्रयत्न करते है। उनके समझाने मे कैकेयी का वात्सल्य, प्रेम जो उन्हें बचपन में प्राप्त था वही काम आता है–

मुझे भरत से तुमने समझा जननि, सदा ही दूना था,
तुम्हें कदाचित मैं न देखता तो गृह लगता सूना था।
मेरे कारण तुम करती थीं कितने व्रत, कितना उपवास,
कर सकती मेरा अनिष्ट फिर कैसे लूँ फिर विश्वास?

(चित्रकूट, पृ.सं.51)

श्रीराम के अनुसार अगर कौशल्या जन्मदात्री है तो पालनकर्त्री कैकेयी ही है। वह अपने मथनी से मथकर नवनीत खिलाती थी। लोरियाँ सुनाकर सुलाती थी। मेरे समान तुतलाकर बोलना सीखाती थी। गुरूगृह जाने से पूर्व उन्होंने हमें शिक्षित–दीक्षित किया था। उपनयन काल में हमने उनसे भिक्षा ली थी। अतः यदि वन भेजने का अपराधी भी उनसे हो गया हो तो इतना करनेवाले का अपराधी नहीं माना जा सकता। राम पितृ विहीन हो गये हैं लेकिन कैकेयी को मरते देखकर मातृविहीन होना नहीं चाहेंगे। यदि काल भी आवे तो वे कैकेयी के लिए काल से लड़कर उन्हें मुक्त करा लेंगे। श्रीराम इतना कहकर कैकेयी को गोद में बिठाकर विलाप करने लगते हैं। गुरू वशिष्ठ ने राम में ऐसी दुर्बलता, व्याकुलता और मोह पूर्ण क्रिया–कलाप कभी नहीं देखा था। अतः वे मंत्रपूत्र जलाभिषेक द्वारा समस्त मोह को दूर कर देते हैं। तब कैकेयी कहती है कि हे मुनिराज! यह जीवन मरण से दुखद हैं। रोने से शांति तो नहीं मिलेंगी, रोना तो यहाँ उपहास मात्र है। यदि काल मुझे खा जाये तो कम–से–कम लज्जा से तो बच जाऊँगी। चिता के आग में यदि मैं समा जाती तो लज्जा निवारण संभव होता। जिसके कारण मैनें चोरी की वह भी तो मुझे चोर

कह रहा है। तन को तज देने से तन के भस्मभूत हो जाने से आत्मशुद्धि सम्भव है। वह विक्षिप्त होकर सुध–बुध खो बैठती है और स्वयं पर क्रोध करती हुई कहती है–

री कैकेयी, कह दे तू ही/राम भरत में क्या था भेद ?
रामचन्द्र के राज–तिलक से/हुआ बता क्यों मन में खेद ?
बिम्ब और प्रतिबिम्ब–तुल्य थे/दोनों श्यामल गात न क्या ?
तन से मन से धर्म कर्म से/सम थे दोनों जात न क्या ?

(चित्रकूट, पृ.सं.55)

समासतः अपने समस्त कुकृत्य का वमन श्रीराम और गुरू के समक्ष वह इस प्रकार कर देती है कि उसके संबंधों में किसी और को कुछ कहने का न अवकाश रह जाता है और न प्रकाश डालने के लिए शब्द ही बचते हैं। 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड के सारे परिदृश्य को यहाँ बड़ी ही कुशलता के साथ अभिव्यक्ति मिली है। कवि के लिए यह एक बड़ी महानता की बात है कि वह कैकेयी को विक्षिप्त बताकर सबकुछ उसी के मुँह से कहलवा देता है। अतः कैकेयी जो अपने सम्बन्ध में अपशब्दों का व्यवहार करती है वे शब्द दूसरे के मूँह से सुने जाने पर भी अनौचित्यपूर्ण लगते। जैसे कैकेयी का यह कहना–

डाइनि, तुझसे डर कर अति ही पास नहीं आता है काल,
उन भोले भूपति के सम्मुख तेरी खूब गली थी दाल।

(चित्रकूट, पृ.सं.57)

कवि ने कैकेयी को पूरा डहका कर चित्रकूट में करूणा की कालिंदी बहा दी है। गुरूवर वशिष्ठ वहाँ कैकेयी को समझाकर उसके मृत्यु सम्बन्धी विचारों को काट देते है। वे उसे कल्याणी कहकर सम्बोधित करते हैं। वह कहते हैं कि संसार में ऐसा कौन मनुष्य है जिसने पाप नहीं किया है–'पाप भस्म होते हैं केवल करने से ही पश्चाताप।'

यहाँ वे आत्मोपदेश देते हैं कि पुत्र आत्मा की साक्षात् मूर्ति होता है। महर्षि वशिष्ठ कैकेयी के सिर से उसके पाप भार को उतारते हुए कहते हैं–

दुष्ट–दमन–हित देवी, राम को
वन में तो आना ही था,
पूर्व–शाप–वश नर पति को भी
सुरपुर में जाना ही था।
और तुम्हारे ही माध्यम से
विधि को करना था यह कार्य।

(चित्रकूट, पृ.सं.60)

वशिष्ठ कैकेयी के पुछने पर पूरी शाप कथा कह डालते हैं और गुरू वशिष्ठ के उपदेशों से वह शान्त होती है। तब राघवेन्द्र उनको सम्बोधित करते हुए कहते हैं–

आह, अम्ब! मैनें कब तुमको?
अपराधिन है ठहराया ?
धन्य हुआ मैं, मिली तुम्हारे
अंचल की वन में छाया।
तुमने मुझको दूध पिलाया
और किया है अति ही प्यार,
जीवन में क्या कर पाऊँगा हंत,
तुम्हारा प्रत्युपकार?

(चित्रकूट, पृ.सं.79)

राम स्वीकार करते हैं कि तुम्हारी कृपा से गाँव–गाँव साकेत के समान हो जायेगा। शबर और निषाद सभी हमारे कण्ठ लगेंगे, वानर सभ्य बनेंगे और सबका जीवन सुखी हो जायेगा। अयोध्या के राजा बनकर हम ऐसा सहयोग और सेवा के अवसर कभी नहीं पा सकते थे। वही स्रोत ग्रंथ 'रामचरितमानस' के चित्रकूट प्रसंग में कैकेयी से राम बार–बार इसलिए मिलते हैं कि उसे यह निश्चय हो जाए कि उनके मन में उस कुटिलता का ध्यान नहीं है और उसकी ग्लानि दूर हो जाए। वह कैकेयी के मन में यह बात जमा देना चाहते हैं कि जो कुछ हुआ उसमें उसका कुछ भी दोष नहीं है। अपने साथ बुराई करने वाले के हृदय को शांत और शीतल करने की चिन्ता राम के सिवा और किसी में नहीं हो सकती है। 'मानस' में यह दिखाया गया कि कैकेयी का अन्तःकरण कुटिलता का पूर्ण अनुभव करने के कारण इतना द्रवीभूत हो गया था कि शील का संस्कार उस पर सब दिन के लिए जम सकता था।

सीता–

शास्त्री कृत चित्रकूट में सीता के चरित्र को अधिक मुखरित होने का अवसर नहीं मिला है उनका वर्णन राम, लखन के साथ वह वन में आती है तथा वहाँ की प्रकृति को देख प्रसन्न होती है। राम सीता से अपने दुःस्वप्न की बात कहते तो वह विक्षिप्त हो कर अत्रि ऋषि के आश्रम में जाते हैं वहाँ अनुसूया सीता का पतिव्रत धर्म की शिक्षा देती है।

इसी रूप में ' आलोच्य कृति में सीता का चित्रण किया गया है। सीता को वन में कभी कभी दुखी देखकर प्रफुल्ल करने का प्रयास करते रहते है।

3.ख.।। गौण स्त्री पात्रः

अनुसूया, कौशल्या आदि का नामोल्लेख मात्र है उनके चरित्र को व्यापक फलक पर चित्रित होने का अवसर नहीं मिला है।

किन्तु शास्त्री के चित्रकूट में सारी बातों का रहस्य इस एक बात से प्रकट करा दिया गया है कि कैकेयी का दोष जैसे दोष रह ही नहीं गया। कुछ राम के द्वारा कुछ वशिष्ठ के द्वारा और कुछ कैकेयी के द्वारा इस प्रकार बाँट लिया गया है कि उसके अवगुण स्वतः समाप्त हो गये हैं। इस अवसर पर सब कुछ दैवयोग से सम्पादित है और हो रहा है। सबके हृदय की शंकाओं का निवारण मिलकर सबके सम्मुख कर देते हैं। जहाँ अयोध्या की सारी संसद बैठी हुई है। अयोध्या ही क्या जनकपुरी भी राजा रानी और प्रजा के साथ सदैव विराजमान है। मंत्री, गुरू और अयोध्यावासियों के साथ वनचरों की जातियाँ भी वहाँ उपस्थित हैं। इन्होंने कभी कुटिल कामी जीवन व्यतीत नहीं किया। अतः 'कुटिल रानि पछतानी अघाई' का सम्पूर्ण स्वरूप वहाँ प्रत्यक्ष हो जाता है। कुल मिलाकर चित्रकूट में कवि ने अपनी प्रतिभा और कला का निदर्शन कर कैकेयी को सर्वथा दोषमुक्त कर दिया हैं आगे कोई भी कलंक न लगावे। श्रीराम भरत और शत्रुघ्न को भी ऐसा आदेश देते हैं कि माता के सम्बन्ध में कोई अन्यथा नहीं सोचे और दुर्व्यवहार भी न करे।

3.ग. मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत 'चित्रकूट'–

3.ग.i. प्रमुख पुरूष पात्र–

राम–

'चातक' रचित चित्रकूट खण्ड–काव्य पर मैथिलीशरण गुप्त की कृतियों का प्रभूत प्रभाव है। इसमें राम का चरित्र अनुपम रूप से व्यक्त हुआ है। चित्रकूट में राम वैराग्य भाव लिए हुए मुनि के वेश में दिखाए गए हैं। किन्तु कवि उनके वय पर प्रश्नचिह्न लगाता है कि यह वय तो मुनियों का होता नहीं। आश्रम की दृष्टि से संन्यास चतुष्कोटि में आता है। परिस्थितियाँ विपरीत हैं, लगता है जैसे किसी राजा ने स्वर्ग से देवलोक को त्याग कर मुनि की वृत्ति धारण कर लिया हो, जैसे मधु ऋतु में मधुमास वैराग्य धारण कर स्वयं विचरण कर रहा है। साथ में सुमित्रानन्दन हैं और राम स्फटिक–शिला पर धनुष धारण किए हुए झरनों के समीप बैठे हुए हैं। वहाँ मनुष्य का अभाव है। प्रभु के आश्रम के निकट वृत्त बनाकर पशु–पक्षी आ–आकर बारी–बारी से बैठ रहे हैं। वैदेही के निकट सारिकाएँ सीता कहकर पुकारती हैं और रामचन्द्र की गोद में बैठा सुग्गा आर्य–आर्य बोलता है। इन पशु–पक्षियों के मध्य में स्थित राघव अति प्रसन्न हैं और जानकी से राय लेना चाहते हैं कि उनको यहाँ कैसा लगता है। जानकी पति के सुख में ही अपने सुख का सौख्य और विभव का वैभव मानकर हामी भरती हैं। कन्दमूल, फल का नियमित भोजन उन्हें समय पर प्राप्त हो जाता है और ऐसा लगता है कि योग के लिए सभी सामग्री वहाँ उपलब्ध हो गयी हैं। प्रकृति इन्हें सब तरह से सहयोग करती है। स्वयं प्रकृति अनेक रूपों को धारण कर मुनियों के समान आचार स्वभाव को नियोजित करती है। निर्झरणी जैसे इन्द्र द्वारा प्रेषित कोई अप्सरा हो जो अपने हाव–भाव से अनेक प्रकार का आकर्षण उत्पन्न करने की चेष्टा करती रहती हो उस समय जब सीता और राम मनुहार की स्थिति में हैं, तो उत्तर दिशा की ओर से धूल धुआँ के साथ सेना का तुमुलनाद आकाश में प्रतिध्वनित होता है। मृगों का ऐसे माहौल में आशंकित होना और भागकर प्रभु आश्रम की ओर आना स्वाभाविक है और कोल–किरात

चतुरंगिणी सेना के साथ भरत के आने की सूचना देते हैं। इतना सुनते ही राम के जीवन में सर्वप्रथम सोच का आविर्भाव होना अनिवार्य हो उठता है। एक तरफ वे पिता के वचन को स्मरण करते हैं और दूसरी तरफ अपने प्रिय बन्धु के सम्बन्ध में। इस प्रकार की डावाँडोल स्थिति में मनस्ताप का होना स्वाभाविक है।

प्रभु की चिन्ता को सौमित्र कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते। वे क्रोध से दग्ध हो जाते हैं जैसे विद्युत से ज्वाला निकल रही हो। लक्ष्मण के क्रोधाग्नि में सने हुए वचन को सुनकर भी राम के मन में किंचित् शंका नहीं होती। वे भरत के धर्म,शील और गुण पर इतने मुग्ध हैं कि भरत के व्यक्तिव में किसी प्रकार केपरिवर्तन को असंभव मान लेते हैं। श्रीराम कहते हैं कि भरत के मन में हमारे बिना अश्वमेध यज्ञ कर राज्य करने का भाव कभी नहीं आ सकता। वे अवश्य ही हमारे विपिन–वृत्त से क्षोभित होकर मझली माँ पर कुपित होकर राज्य वैभव को ठुकराकर पूज्य पिता को प्रसन्न कर हमें वन से वापिस ले चलने के लिए आए हैं। उनका विपुल स्नेह, विरह विषाद युक्त होकर हमसे मिलने आया है। यहाँ राम का चरित्र अत्यन्त निःशंक, पिता और भाई के प्रति प्रेमिल तथा भरत के साधु स्वरूप पर किंचित् शंका करने वाला नहीं दिखलाया गया है। गोस्वामी तुलसीदास जी के समान चातक जी, ने भी राम और भरत के मिलन का वर्णन किया है–

'बोधरूप को भी निज तन का भी
आज रहा कुछ बोध नहीं
गिरा तीर, तो चीर कहीं, तो
शायक कहीं, निषंग कहीं।।

(चित्रकूट 'चातक', पृ.सं– 18)

गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' इस मिलन को कवि कुल वर्णन से परे की वस्तु बताया है। इस प्रकार मिलते हैं, जैसे परम प्रेम का मिलना होता है। जहाँ मन नहीं रह जाता, बुद्धि नहीं रह जाती, चित्त नहीं रह जाता और अहंकार भी नहीं रह जाता। इन सबके नहीं रहने पर ही, सबको विस्मृत करने पर ही, परम प्रेम सुलभ होता है। कवि के अनुसार राम चाहते हैं कि भरत को हृदय से लगा लें किन्तु भरत चाहते हैं कि हम पहले राघव का चरण स्पर्श कर लें। राम को प्रेम समस्त परिवार के प्रति उतना ही दिखाया गया है जितना अयोध्या के जीवन में पहले था। जब राम अयोध्या का कुशल–क्षेम पूछते हैं तो उसी क्रम में भरत तात के सुरपुर जाने की सूचना देते हैं। पिता के प्रति राम का स्नेह वहाँ प्रगाढ़ रूप से उमड़ता दिखता है जहाँ उनके महाप्रयाण की खबर सुनकर वे अवाक् विकल होकर पृथ्वी पर गिर जाते हैं। राम को इस बात का विशेष दुःख है कि पिता की मृत्यु का कारण स्वयं वे ही हैं। वे पश्चाताप करते हुए कहते हैं कि मैं कितना बड़ा अभागा हूँ जो मैं उनका अंतिम दर्शन भी न कर सका और भरत तुम्हारा जीवन तो सार्थक हुआ जो तुमने मरणोत्तर सारे कृत्य सम्पादित किए। इन सभी भाइयों के रोदन के तुमुल नाद को सुनकर माताएँ दौड़ी चली आती हैं। राम जब गुरु पत्नी के चरणों में गिर पड़ते हैं तो वे भी

यही कहती हैं कि हे राम ! तुम्हीं को रट–रट कर तुम्हारे पिता ने शरीर छोड़ा। इसके बाद राम कैकेयी से लिपटकर विनयपूर्वक वचन कहते हैं, क्योंकि वे सोचते थे कि इस दुःख के समय सबसे अधिक दीन कैकेयी है। जो न रो सकती है और न रोने वाले को समझा सकती है। राम कहते हैं–

किंतु अभागा कर न सका मैं उनका अंतिम दर्शन ही,
हुआ तुम्हारा जीवन सार्थक सुकृति तुम कृत–कृत्य तुम्हीं।

(चित्रकूट,पृ.सं.– 26)

श्रीराम यहाँ पुरूषार्थ और दैव का विश्लेषण करते हुए दैव पर ही दोष देकर कैकेयी को सर्वथा निर्दोष बना देते हैं। वे कैकेयी से पुनः कहते हैं कि एक छोटे से प्रण पर तात प्राण दे देंगे, यह कौन जानता था। अगर मैं जानता कि ऐसा ही होगा तो क्या मैं इस आज्ञा को मान सकता था। श्रीराम जब कैकेयी को इस बात की दिलासा देते हैं तो वही कैकेयी उनको श्रद्धांजलि देते समय अतुल द्रव्य सम्मुख रखकर गुरू के एक बार कहने पर उसके हजार गुना करने की प्रेरणा देती है। तब श्रीराम पिता का बार–बार ध्यान करते हैं और उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। अपराह्न जब सम्पूर्ण सभा बैठी तब वशिष्ठ भरत से कहते हैं कि जो तुम्हारा अभीष्ट हो वह राघव से कहो। यहाँ राम के भीतर कर्त्तव्य और प्रेम का संघर्ष प्रकट होता है। भरत की गुण–गान राम के शब्दों में सरस्वती भी नहीं कर सकतीं। उन्हें 'मानस' की भाँति यहाँ भी भरत की चिन्ता सर्वाधिक रहती है। वे भरत के कहने पर वन से भवन भी जा सकते हैं और राज्य भी ग्रहण कर सकते हैं। जो उनके लिए सर्वथा निन्दनीय है। किन्तु हमलोगों के लिए उचित यही है कि सब तरह से पिता की आज्ञा का पालन हो, नहीं तो पिता के शरीर त्याग का कोई अर्थ ही नहीं रह जायेगा। यहाँ राम का चरित्र 'मानस' के समान ही चित्रित हुआ है। भरत को समझाते हुए वे कहते हैं कि पिता के जाने के बाद यह राज्य केवल तुम्हारा हमारा नहीं है। हमलोगों को तो केवल प्रतिनिधि बन कर कार्य करना है। राज्य तो पुरवासियों का है वे अपना कर्त्तव्य निभायेंगे, पंचों का है, मंत्रियों का है, और सबसे ऊपर गुरूदेव का है। भरत तुमको एक अयोध्या का परिचालन करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। अगर मति निर्मल हो तो तीनों लोकों का भी परिचालन किया जा सकता है। मानवता का मूल धर्म सेवा है। निष्पृह होकर अनुशासन के बल पर आदमी हर समय सत्य और धर्म का पालन कर सकता है। भरत भी राम के प्रत्यागमन हेतु अनेक युक्तियों से अपनी बात रखना चाहतें है। किन्तु राम के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चित्रकूट में श्रीराम को सबसे अधिक कष्ट कैकेयी की विवश दशा को देखकर होता है। वह जैसे ताप से दग्ध हो गयी है। उसका जीवन भार स्वरूप दिखाई देता है। राम वहाँ पर समस्त रहस्य को खोल देते हैं। मझली माँ के विवाह पूर्व ही तो नाना कैकेय ने दशरथ से वचन ले लिया था कि भरत का ही राज्याभिषेक होगा और देवासुर संग्राम के समय पिता दशरथ ने भार्या कैकेयी से संतुष्ट होकर दो वचन दे दिये थे। इन्हीं प्रतिज्ञाओं के कारण राजा ने शरीर त्याग किया और हे भरत! तुमको उन्होंने कौशल

का राज्य देकर मुझे दण्डक वन का राज्य दिया। पुत्र का एक ही धर्म होता है और वह है सभी धर्मों को छोड़कर पिता के अनुशासन का पालन करना। इससे उत्कृष्ट धर्म कोई दूसरा नहीं हो सकता–

परित्याज्य है व्यक्ति वश हित,
और राज्य हित है परिवार,
मातृभूमि के लिए किन्तु है
यह सम्पूर्ण देश बलिहार

(चित्रकूट, पृ.सं.– 58)

श्रीराम के अनुसार महाराज दशरथ ने भरत जैसे सुत को ही राज्यभार का संरक्षण करने को दिया है और मुझे मुनियों का रक्षक और दण्डकवन में अनुशासन का कार्य। अतः हम दोनों को अपना–अपना कार्य करने में ही भलाई है। वे कहते हैं कि हमलोगों को किसी भी परिस्थिति में जननी की निन्दा नहीं करनी चाहिए। मझली माता के समान तो कोई माता हो ही नहीं सकती जो हमारे यश के पताका को आकाश तक खिला देने वाली हो।

प्रभु श्रीराम के सम्भाषण से समस्त सभा आत्मविभोर हो जाती है। इस शील और स्वभाव का प्रभाव ऐसा होता है कि कैकेयी इसे सुनकर भूमि पर मूर्च्छित हो जाती हैं– जैसे उनका कलुष कलेवर मृतप्राय हो गया है। स्वयं श्रीराम भी उनकी मूर्च्छा देखकर दीप्ति हीन हो जाते हैं। सभी लोग शोक विह्वलित हैं। वे कैकेयी की आज्ञा मानने के लिए तैयार हो जाते हैं। उनका वचन है–

त्याग अवध को मात्र एक दिन
वन में नहीं रहूँगा मैं,
इष्ट यदि तुम्हें यही अवध पर
निश्चय राज्य करूँगा मैं।

(चित्रकूट, पृ.सं.– 64)

इनकी यह वाणी सुनते ही कैकेयी की मूर्च्छा स्वतः समाप्त हो जाती है। वह प्रभु के हृदय से लिपट जाती है और उसका जीव ईश सदृष एकरूपता को प्राप्त कर लेता है। प्रभु श्रीराम कैकेयी से कहते हैं कि हे आर्या! अपने पुत्र से कुछ भी छिपाना नहीं चाहिए। आप शोक त्यागकर हमें आदेश दीजिए। वही मेरे लिए करणीय होगा। कैकेयी कहती हैं कि मैंने सब कुछ पा लिया तुम योग मार्ग में आरूढ़ हो गये। पति स्वर्ग चले गये, मैं जीवन मुक्त हो गयी। अब मुझे किसी प्रकार का मोक्ष नहीं चाहिए। अन्त में वे विपिन अवधि के अवसान के पश्चात राज्य ग्रहण कर लेने की बात स्वीकार लेते हैं।

इस प्रकार राघव अपनी पूर्व मातृ वत्सलता को स्मरण कर न तो अपने को रोक पाते हैं और न ही उधर कैकेयी रोक पाती हैं। श्रीराम माँ कैकेयी से वन–स्थित मुनियों को पीड़ित करने वाले कुटिल निशाचरों के सम्बन्ध में बताते हैं कि यहाँ मेरी आवश्यकता है, इसी आवश्यकता के लिए मुझे यहाँ वन में

भेजा गया है। जिस कार्य से देवताओं का मस्तक ऊँचा उठे वही कार्य माता और पुत्र दोनों के लिए करणीय होता है। यहाँ प्रायश्चित्त की ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है जिसमें सारी सभा दया द्रवित होकर कैकेयी को क्षमा की पात्र मान लेती है। प्रत्येक पाप का अपना प्रायश्चित्त होता है। स्वयं भरत कैकेयी द्वारा सभी प्रश्नों के उत्तर पा जाने पर संतुष्ट हो जाते हैं और उनके हृदय का क्षोभ कृष्णपक्ष के चन्द्रमा के समान छिपता चला जाता है। वे मन से बिल्कुल तैयार हो जाते हैं कि जो प्रभु करेंगे उसी में मेरा कल्याण है–

अब करूणाकर स्वतः बताएँ
साधन ऐसा कोई आर्य,
रहे धर्म कर्तव्य आपका
और न बिगड़े मेरा कार्य।

(चित्रकूट पृ.सं.– 74)

इस प्रकार भरत चरणपादुका लेकर अयोध्या को लौट आते हैं। कुल मिलाकर 'चातक' रचित चित्रकूट में राम का चरित्र उनके शील और स्वभाव के सर्वथा अनुकूल चित्रित हुआ है। उनके हृदय में वनवास जनित कोई ताप या दुःख नहीं है। वे इसे पिता की आज्ञा में ही अपना कल्याण मानकर दुःख को दुःख मानते ही नहीं। अपितु सीता और लक्ष्मण को भी अपने ही साँचे में ढाल लेना चाहते हैं। प्रारम्भ में ही वे प्रकृति को अपने जीवन का सहचर मानकर उनका वरण करते हुए मुनियों, वन्य जीवों, पक्षियों तथा कोल–किरातों से अपना सम्पर्क बढ़ाते हुए सम्पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। भरत के सेना सहित आने पर भी उनके मन में प्रेम ही उत्पन्न होता है। वे ऐसा नहीं सोचते कि भरत राम को वन में अकेला समझकर उन्हें यहाँ से भी खदेड़कर निष्कंटक राज्य करना चाहते हैं। उनको पिता मरण का संवाद सुनकर दुःख इसलिए होता है कि उनके कारण पिता को शरीर छोड़ना पड़ा। वे अपने को हेतु मानते हैं कैकेयी को नहीं। अगर किसी के प्रति प्रेम है, करूणा है तो कैकेयी के प्रति ही है। कौशल्या आदि माताओं के सम्बन्ध में वे कुछ नहीं कहते। कैकेयी के हृदय का ताप बढ़ते–बढ़ते राम के हृदय में प्रवेश कर जाता है और वे अनेक प्रसंगों, कारणों और हेतुओं को उपस्थित कर उसके भीतरी पर्दे पर पड़े हुए कलंक का प्रक्षालन करते हैं। इस काव्य ग्रंथ का पूरा संवाद राम और कैकेयी के संवाद द्वारा समस्त समस्याओं का समाधान कर बैठता है। अतः राम का रामत्व कैकेयी द्वारा प्रमाणित हो पाता है। यही इस काव्य का प्रतिपाद्य है। राम कैकेयी के पक्ष में इतना अच्छा तर्क देते हैं कि वह पुरजनों, माताओं, मंत्रियों और गुरूजनों सबको प्रिय लगता है। हिदायत देते हैं कि आगे से कोई भी माता कैकेयी को क्षोभ और कुत्सा की दृष्टि से न देखे। ऐसे देखना और अन्यथा कहना राम के ऊपर प्रहार होगा। इस प्रकार राम का चरित्र एक धीर ललित नायक के रूप में ईश्वरत्व से दूर एक परम विवेकी दयावान पुत्र भाई और मातृ–पितृ भक्त पुरूष के रूप में चित्रित हुआ है।

लक्ष्मण–

चित्रकूट का वातावरण लक्ष्मण के लिए धीरे–धीरे अनुकूल होता जा रहा है। वे एक उदात्त सेवक के रूप में सर्वत्र चित्रित हुए हैं। श्रीराम के चित्रकूट में आते ही सभी पशु–पक्षी बैर–विगत होकर साथ रहने लगते हैं। श्रीराम अनुज प्राण प्रिय लक्ष्मण और प्राण वल्लभा सीता को प्रसन्न रखने के लिए चित्रकूट की शोभा का वर्णन करते अघाते नहीं, क्योंकि अयोध्या के राजसी वैभव में पले हुए इन दोनों को कभी अयोध्या स्मरण पथ में नहीं आ जाए। चित्रकूट के वन, निर्झर, वृक्ष, फूल, फल, सभी इनको सुहाते रहें। ऐसी परिस्थितियों का निर्माण श्रीराम सदा किया करते हैं। ऐसे ही समय में कोल किरातों द्वारा भरत के चतुरंग वाहिनी के साथ आने की सूचना मिलती है। अपने प्रभु को लक्ष्मण चिंतित नहीं देख सकते। अतः उनके भीतर स्वाभाविक क्रोध उमड़ पड़ता है। लक्ष्मण के मन में कुछ अनिष्ट होने की शंका उत्पन्न हो जाती है, तब वे बिना कुछ कहे रह नहीं पाते हैं। क्रोध से परिपूर्ण होकर वे महाव्याघ्र के समान गरज उठते हैं। उनका मानना है कि भरत का सेना के संग आना राज्य, पद और मद के कारण हुआ है। कैकेयी के पुत्र का अहंकार की मदिरा से उन्मत्त होकर, विजय हेतु ही यहाँ प्रयाण हुआ है, वे अवश्य ही निष्कंटक राज्य हेतु राम को मारने आ रहे हैं। लक्ष्मण को यह स्पष्ट दिखाई देता है कि चित्रकूट में राम अकेले हैं। यहाँ मुनि–व्रती हैं, वे किसी पर हाथ उठा नहीं सकते। लक्ष्मण को अपने प्रेम पर गर्व है, अस्त्र–शस्त्र पर गर्व है, शस्त्र संचालन पर गर्व है। अतः वे भरत और शत्रुघ्न का इस प्रकार का लक्ष्य पूरा नहीं होने देंगे। ये शीघ्र ही युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। उनका सिर पर जटा जूट को बाँधना, त्रोण को कटि में बाँधना और रौद्र रूप धारण कर युद्ध के लिए अकेले तैयार हो जाना इनके वीरत्व का परिचायक है। वे प्रत्यंचा से नाद करते हुए त्रोण से वाण खींचकर प्रत्यंचा पर चढ़ा लेते हैं। प्रत्यंचा के नाद से धरती और अम्बर प्रतिध्वनित हो उठता है।[6] वे प्रभु श्रीराम से आदेश लेना चाहते हैं। कटि में वाण से पूर्ण त्रोण को बाँधते हुए उनका यह प्रण है कि इधर से ये वाण निकलेंगे और उधर से भरतादि के प्राण। भगवान राम उनके रोषजनित अग्नि वचन को अपने शीतल वचन से शान्त कर देते हैं। लक्ष्मण तुम्हारा हृदय शंकित होने के कारण ही इतना आतंकित हो रहा है। वे भरत की प्रशंसा करते हैं और लक्ष्मण के हृदय की युद्ध गाथा को स्नेहगाथा में बदल कर समझाते हैं कि भरत हमसे मिलने के लिए आ रहे हैं न कि युद्ध करने के लिए। ऐसा प्रबोध पूर्ण वचन को लक्ष्मण सुनकर नतमस्तक होकर लज्जित महसूस करते हुए हाथ जोड़ निस्तब्ध हो जाते हैं।

पूरी पुस्तक में लक्ष्मण का चरित्र स्रोत कथाओं के अनुसार वर्णित है। वे श्रीराम को अपने प्राण से भी बढ़कर मानते हैं। यह एकात्म प्रेम अपने भीतर अनेक शंका का कारण बनता है। इसीलिए वे सबको शंका की दृष्टि से ही देखते हैं।

भरत–

'रामचरितमानस' की भाँति भरत भी चित्रकूट में चतुरंगिणी सेना लेकर कृपा प्राप्त करने हेतु उपस्थित होते हैं और श्रीराम से मिलन के पूर्व आर्य–आर्य कर उनके चरणों में गिर जाते हैं। कुछ समय

तक दोनों ब्रह्मज्ञानी के समान स्वयं में मग्न रहते हैं। किन्तु प्रभु श्रीराम शोक की विरहाग्नि में जलते हुए भरत की आँखों से बहते हुए अश्रु को पोछकर उन्हें गोद में बैठा लेते हैं। तथा पूछते हैं भ्रातृवर भरत अयोध्या में सब प्रकार कुशल तो हैं? भरत इस प्रश्न का बड़ा ही गूढ़ उत्तर देते हैं–

कैसी कुशल? कहाँ? कौशल में?

कुशल रूप जो आप यहाँ।

(चित्रकूट, पृ.सं.– 23)

श्रीराम के मन में अपने पिता के प्रति विशेष प्रेम और भय है। उन्हें इस बात की चिन्ता है कि कहीं मेरे प्रेम के ज्वर से पिता जलते तो नहीं। इसी समय भरत को तात के सुरपुर गमन करने की सूचना देने का अवसर मिलता है। वे अपनी माता की तुलना सर्पिणी से करते हुए कहते है कि कैकेयी अति विषाक्त और पितृ भक्षिणी है, वे उनकी तुलना सुअल, श्वान से भी करते हुए नरकगामिनी मानते हैं। भरत के साथ राम को लिवाने के लिए एक मत होकर परिजन, पुरजन, प्रजा, सचिव एवं गुरूजन सभी पधारे हुए हैं। सबका एक लक्ष्य है प्रभु श्रीराम का अयोध्या में प्रत्यागमन। भरत अत्यन्त समास–शैली में अपने आने का उद्देश्य और प्रजा परिजनों का मंत्वय प्रकट कर देते हैं। यहाँ भरत का निश्चल हृदय, शरणागत का रूप प्रकट होता है। वस्तुतः वाल्मीकि 'रामायण' में भी भरत की सेवक वृत्ति सर्वत्र एक जैसी बनी रहती है। जैसे भू–देवी का ही एक और रूप भरत है। भूमि का स्वभाव है धारण–पोषण करना। भरत भू–देवी के स्वरूप होने से ही प्रसाद रूप में रामचरण रज को चाहते हैं और अन्त में चरण पादुका के रूप में उन्हें सदा के लिए प्राप्त हो जाती हैं। गुरू भगवान की वस्तु को भूल से भी अपना नहीं समझते। राम को छोड़कर किसी अन्य के प्रति उनका कोई भाव प्रकट नहीं होता। ऐसे पुरुष की अपनी कोई इच्छा नहीं होती न तो राम में वात्सल्य की कमी है और न भरत में शरणागति की। वे राम के आसन को अर्थात् राज्यासन पर बैठकर उसे उच्छिष्ट नहीं बना सकते। पादुका ही राज्यासन पर विराजमान होती है। नन्द ग्राम में रहते हुए भी वाल्मीकि के भरत रामराज्य के उत्तरदायित्त्व को पूरी कुशलता के साथ सम्भालते हैं और उसी में राम के प्रति प्रेम की पराकाष्ठा का अनुभव करते हैं।

भरत में वियोग की अनुभूति निरन्तर बनी रहती है। मानो भरत के रूप में पृथ्वी का विरहमय रूप प्रकट हुआ हो। उन्होंने अपना न प्रभुत्त्व चाहा और न उससे राग ही किया। मात्र प्रतीक्षा में वे रत रहे और भगवत प्रेम में निमग्न। भरत को कभी विषय भोग की सुध ही न रही। भगवान के राज्य से भी भक्त का राज्य श्रेष्ठ होता है क्योंकि वह सेवक का राज्य है, स्वामी का नहीं।

आलोच्य कृति 'चित्रकूट' में भी भरत को राम की शरणागति ही प्रिय है। वे त्राहि–त्राहि कर उसी की याचना करते हैं। इसका प्रमाण प्रभु श्रीराम द्वारा श्राद्ध कर्म सम्पन्न करने के बाद जब अपराह्न काल में सभा बैठती है तब वशिष्ठ भरत से अपना अभीष्ट राघव के सम्मुख प्रकट करना चाहते हैं। भरत इस बात को निभ्रांत रूप से प्रकट करना चाहते हैं कि पिताजी ने वर देकर कैकेयी को तुष्ट किया। कैकेयी ने यह

राज्य मुझे दिया। अब मैं अपनी ओर से सुरक्षा के लिए इसे आपको अर्पित करता हूँ। अगर हम पक्षी हैं तो आप गरूड़ है। क्या कोई सर्प समस्त पृथ्वी के भार को धारण कर सकता है। इस प्रकार भरत कहते–कहते रोने लगते हैं और गुरूजन, प्रजाजन सभी इस सम्मति का अनुमोदन करते हैं। राम–भरत का परम प्रेम आज सभी प्रजा जनों को अपने प्रेमाश्रुओं में नहला रहा है। भरत की प्रशंसा श्रीराम इन शब्दों में करते हैं–

भरत, तुम्हारी गुण–गण–गणना
कब यह वाणी कर पाई,
भातृ–भाव–भावुक धर्म ध्वज
तुम समान तुम ही भाई।

(चित्रकूट पृ.सं.– 44)

भरत के लिए इतना सुन लेना ही परम–तोष का कारण बन जाता है कि भरत के कहने पर वह वापस चलने को तैयार है। किन्तु राम यह चाहते हैं कि हम दोनों प्रमुदित मन से पितृ आज्ञा का पालन करें। भरत ने तो अपने त्याग द्वारा धर्म और कर्त्तव्य के मार्ग पर चलकर अपना सिर ऊँचा किया है। भ्रातृ–भक्ति का ऐसा उदाहरण कहाँ मिल पाता है। राम के अनुसार भरत को तो अनुवर्ती प्रतिनिधि बनकर रहना है। राज्य हमारा नहीं, जिनका राज्य है वे स्वयं देखें। राज्य तो पुरवासियों का है, पंचों का है, मंत्री का है, गुरूजनों का हैं। भरत को तो सिर्फ उसका परिचालन करना है। भरत अपने स्वामी के आदेश को मान जाते हैं, क्योंकि वे मानवता को, उसके मूल धर्म को, निस्पृहता को, अनुशासन को अच्छी तरह समझते हैं। ऐसी निर्मल मति वाला व्यक्ति अवध क्या, तीनों लोक का पालन करने में समर्थ होता है। मानवता का मूल धर्म ही सेवा से प्रारंभ होता है। भरत राम की बातों का अक्षरशः पालन करने के लिए तैयार हो जाते हैं। हमारे विमल वंश की एक मर्यादा है। उसका हम उल्लंघन कभी नहीं कर सकते। भरत अपनी बातों को कहने के लिए जिन युक्तियों का आश्रय लेते हैं, उसकी प्रशंसा वहां उपस्थित सभी लोग करते हैं। भरत कहते हैं, जैसे–

चार आश्रमों में कहलाता–
सर्वोत्कृष्ट गृहस्थाश्रम,
आर्य, चाहते करना क्यों फिर
परित्याग अपना आश्रम।

(चित्रकूट पृ.सं.– 52)

गुरू वशिष्ठ और जाबालि आदि ऋषि जन भरत की इस विनय भरी युक्ति और निवेदन को देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होने लगता है कि उनकी ज्ञान की गठरी भी भरत द्वारा धीरे–धीरे खुल रही है। माताओं को भी भरत की गति अधीर बना देती है। श्रीराम के अनुसार पिता ने भरत से सुत को राज्य का संरक्षण भार सौंपा है और मुझे दण्डक बन जहाँ मुनियों का रक्षण करना है। कुल

मिलाकर भरत का चरित्र इस काव्यग्रंथ में उच्चतम, महान और श्रेयस्कर है। भरत अवधि भर के लिए चरण पादुका लेकर जैसे राम की आज्ञा को ही पालते है, उन्हें ऐसा प्रतीत होता है जैसे श्रीराम ही अवध के सिंहासन पर विराजमान है। भरत श्रीराम से अपने कर्त्तव्य मर्म की पृच्छा करते थकते नहीं। वे जानना चाहते हैं कि भरत के लिए क्या आदेश हो रहा है। उनके लिए आदेश इतना ही होता है–

NORTH-EASTERN HILL UNIVERSITY LIBRARY SHILLONG
103953
19/4/16
Date

'सौम्य तुम्हारी इष्ट सिद्धि से
साधन श्रेष्ठ कीर्तिकर एक,
रक्षित रहे धर्मतः जिसमें
अग्रज अनुज अभय की टेक।

(चित्रकूट पृ.सं.– 74)

भरत प्रभु की चरणपादुका पर समस्त शासन भार को समर्पित कर केवल प्रतिनिधि बनकर वनवास की अवधि तक अयोध्या राज्यभार सम्भालें, यही आदेश होता है–

शासन–भार समर्पित कर सब
प्रभु की चरण–पादुका पर
रहो राम की विपिन–अवधि तक
अनुवर्ती प्रतिनिधि बनकर।

(चित्रकूट पृ.सं.– 75)

इस प्रकार जब भरत को प्रभु द्वारा चरण पादुकाएँ प्राप्त होती हैं तो उनके रोम–रोम में प्रेम और हर्ष की धारा बहने लगती है और भरत उसे सिर पर रख कर भीतर ही भीतर एक अद्‌भुत आनन्द का अनुभव करते हैं। उनके हृदय से जो लोक का शोक था, जिस अनौचित्य अपलोक, निन्दा, घृणा आदि के भार से वे दबे जा रहे थे, एकाएक समाप्त हो जाता है। प्रभु की सेवा के मृदुल भार को उन्होंने अपने भीतर धारण कर लिया है। भरत के चरित्र का सबसे आकर्षक विन्दु तो वह है कि वे स्वामी के समान ही अपना जीवन और जीवनचर्या को चौदह वर्षों के लिए धारण कर लेते हैं। उनकी प्रतिज्ञा है–

राघव जटा चीर धारण कर
करता कन्द–मूल–उपवास,
मैं भी चौदह वर्ष करूँगा
नगर परिधि के बाहर वास।

(चित्रकूट पृ.सं.– 76)

यदि प्रभु श्रीराम अवधि बीतने के दूसरे दिन अयोध्या में नहीं लौटेंगे हैं तो मैं सरयू की गोद में अपने शरीर को विसर्जित कर दूँगा। भरत की प्रतिज्ञा सुनकर सभी, साधु–साधु कहने लगते हैं। पुरवासियों के हृदय में भरत के लिए राम से भी बढ़कर त्याग का उदाहरण प्राप्त हुआ है। भरत के गुणों का गान

खगवृन्द करते हैं। उनका निर्मल यश निर्झर के कल-कल स्वर में ध्वनित होता है। धरती और अम्बर दोनों छोरों पर भी उनके गुणों का जयगान सुनाई पड़ता है।

इस प्रकार इस खण्डकाव्य में भरत का चरित स्रोत कथाओं से सर्वथा भिन्न है। भरत की महानता नये सिरे से व्यक्त की गई है और तुलनात्मक दृष्टि से कवि राम से भी ज्यादा महत्त्व भरत का अंकित करता चलता है।

3.ग.।। प्रमुख स्त्री पात्र

कैकेयी –

राजवंश के स्त्री पात्रों में सीता कौशल्या और कैकेयी का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। भीतरी भाव यही है कि राम चरित्र को समुज्ज्वल बनाने के लिए वह बाह्य दृष्टि से सबका कोप भाजन बनी है। यद्यपि वह पितृकुल से अच्छी है, राजा की बेटी है, बचपन में उसे मातृ-वियोग का दुःख मिला है, उसमें हठ का संस्कार नाना के वंश से आये हैं। इसी से वह हठवश विधवा होना पसन्द करती है पर हठ को छोड़ती नहीं। इसी से उस पर मंथरा का जादू चल जाता है।'वाल्मीकि रामायण'से अलग हटकर गोस्वामीजी ने कैकेयी का चित्रण किया है। इसमें सरस्वती से भी मति फेरने में सहायता ली गयी है। किन्तु मोहनलाल गुप्त कृत 'चित्रकूट' में कैकेयी का एक नया रुप हमारे सामने आता है जिसमें श्रीराम ने उसे सभी माताओं से अधिक प्रेम दिया है। चित्रकूट में वह भरत द्वारा कुचक्र रचनेवाली पिता की मृत्यु का कारण बतायी गयी है। प्रभु को वन में भेजने वाली रघुकुल को कलंकित करने वाली माता नहीं वह विषाक्त अहिनी है। इसे नरक में भी जगह नहीं मिले वह तो जैसे घाव पर नमक छिड़कने के लिए यहाँ आयी हुई है किन्तु इससे प्रभु श्रीराम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जब प्रभु श्रीराम को, कैकेयी अपने पिता की मृत्यु का संवाद सुनकर गुरू पत्नी के चरणों पर गिरते हुए देखती है तो वह आत्मग्लानि में गलकर अपना त्राण खोजने लगती है। वह अपने पुत्र से अपने हर्ष-विषाद, वर-शाप और पिता की मृत्युजनित कारणों के लिए तातघातनी के संताप को हरण करने के लिए कहती है। ऐसा कहकर वह मूर्च्छित हो जाती है और श्रीराम कैकेयी से लिपट से जाते हैं। श्रीराम माता कैकेयी को किसी भी कारण से दीन-हीन नहीं होने देना चाहते। यह समस्त सृष्टि दैवाधीन है। कौन जानता था कि तात प्रण करके अपना प्राण ही त्याग देंगे। अगर ऐसा राम जानते तो वे इस आज्ञा को स्वीकार भी नहीं करते। कैकेयी का अपराधी मन राम से बोल उठता है कि अपने पिता के लिए तुम गुरू की आज्ञा के अनुसार हजारों गुणा अधिक श्रद्धांजलि में अर्पण करे। वह बार-बार धरती की ओर देखकर उसमें धंस जाना चाहती है। वह लज्जान्वित है, लेकिन मुँह छिपाए तो कहाँ? उसकी देह तप्त ताप में जलकर भी जीवित है। उसकी दशा को पहचानने वाले श्रीराम के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है। राम माता के जीवन के पूर्ण वृत्तान्त को सुनाकर भरत को भी संतुष्ट कर देते हैं। किस प्रकार नाना कैकेय नरेश ने राघव से भरत के राज्याभिषेक होने का वचन ले लिया था। मझली माँ का व्याह ही इसी शर्त पर हुआ था। देवासुर संग्राम में भी कैकेयी से संतुष्ट होकर पिताजी ने दो वचन उन्हें दे दिये

थे। जो उनका अभीष्ट था। इन प्रतिज्ञाओं के कारण ही उन्होंने कौशल का राज्य भरत को और दण्डक वन का राज्य मुनियों का रक्षक मुझे नियुक्त किया था। राम की दृष्टि में मझली माता कैकेयी के समान कोई माता हो ही नहीं सकती। इसने हमारे यश के लिए, मुनियों के मोद प्रवर्धन के लिए भूमि का भार हल्का करने के लिए निन्दा के कारण पात्रा बनी है। माता ने ही मुझे पितृभक्ति का शिक्षण गुरू से पहले दिया था। इसीलिए राम कहते हैं–हे शत्रुघ्न मझली माँ पर तुम पूर्वोक्त भेद रहित स्नेह करना। उसके साथ किया गया अभद्र व्यवहार मेरे ऊपर किए गए प्रहार के समान होगा। कैकेयी के प्रति श्रीराम की गहरी निष्ठा उनके हृदय की कलुषता को समाप्त कर देती हैं। वे कहते हैं–

जननी ने तो जना, हुआ है
तू मेरी गैया मैया माँ तेरा बबुआ, चंचल है

(चित्रकूट पृ.सं.– 67)

कैकेयी को भी राघव की शिशु चपलता स्मृति में आती है। उसकी वत्सलता उमड़ आती है। वह स्रोती प्रेम से पुलकती हृदय से लगा लेती है। वह कह उठती है–

सौ जन्मों तक बनूँ तुम्हारी
मैं अम्बा गैया, मैया।
सौ जन्मों तक जिया कर तू
मेरा चपल पूत भैया।।

(चित्रकूट पृ.सं.– 69)

वह भरत के साथ अपने पापों का परिहार करना चाहती है। वह प्रायश्चित्त कर भरत के समस्त प्रश्नों का समाधान उपस्थित कर देती है।

इस प्रकार इस काव्य में कैकेयी का चरित्र स्रोत ग्रंथों से हटकर दिखाया गया है। प्रभु श्रीराम सारे रहस्य का उद्घाटन कर उसके सिर से कलंककालिमा को धो–पोंछ कर समाप्त कर देते हैं। भरत का हृदय भी बदल जाता है क्योंकि जिसमें उनके आराध्य राम को सुख है उसी से भरत सुखी हो सकते हैं। जहाँ 'रामचरितमानस' में प्रभु श्रीराम के बार–बार मिलने पर भी कैकेयी का हृदय शांत नहीं होता। वहाँ 'चित्रकूट' में कैकेयी से सभी संतुष्ट हो जाते हैं और सबके हृदय की भेद–वृत्ति सदा के लिए समाप्त हो जाती है। चित्रकूट स्थल की सबसे बड़ी विशेषता कैकेयी के चरित्र से प्रकट होती है। जहाँ सबका चित्त मिलकर एक में मिल गया है।

3.घ. दुबे कृत 'चित्रकूट' का चरित्र विधान–

रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट' की कथा पाँच सर्गों में नियोजित है। चरित्र–विधान की दृष्टि से प्रमुख पुरूष पात्र हैं राम, भरत, लक्ष्मण, जनक और वशिष्ठ तथा प्रमुख स्त्री पात्रों में कैकेयी, सीता, कौशल्या, सुमित्रा, अनुसूया आदि का चरित्र मुखरित हुआ है। इस काव्य में इन सभी पात्रों के साथ उर्मिला

को प्रकट होने का मौका मिला है। इसमें पात्रों के माध्यम से आदर्श जीवन मूल्यों का दर्शन अपनी विविधता के साथ अनयास ही प्रकट होता है।

3.घ.1. प्रमुख पुरूष पात्र

राम–

रामकथा के अर्न्तगत जितने भी पात्र उस कथा को गति देने में सहायक हैं, उन सभी का स्वभाव शील समन्वित है। इस खण्डकाव्य के मुख्य पुरूष पात्र श्रीराम हैं जिनके दर्शन मात्र से ही जन्म–जन्म के पाप मिट जाते हैं, दुःख दूर हो जाते हैं! ऋषि–मुनियों तक के लिए राम का चरित्र अनुकरणीय है। श्रीराम के सम्बन्ध में अत्रि ऋषि कहते हैं कि तुम्हारा दर्शन पाकर यह चित्रकूट की धरा पवित्र हो गई, तुम्हारा चरित्र इतना श्रेष्ठ है–

राम तुम्हारे चारू चरित की पावन कीर्ति कहानी।
सुमन सुरभि–सी पहले आई, की हमने अगवानी।।
आज तुम्हारे दर्शन पाकर धन्य हुई यह धरती।
शील शक्ति सौन्दर्य त्रिवेणी में अवगाहन करती।।

(चित्रकूट पृ.सं.– 9–10)

अत्रि ऋषि उन्हें यही चित्रकूट की रम्यस्थली में अपना निवास बनाने का सुझाव देते हैं।[7] सबकी केवल एक ही अभिलाषा है कि राम कभी चित्रकूट से वापस नहीं जायें। वे कहते भी है कि राम! हम तुम्हें पाकर धन्य हो गये हैं। इसका फल हम सदा लेते रहेंगे। राम का स्वभाव ही ऐसा है कि कोई उनसे पल भर भी अलग नहीं होना चाहता है। राम शीलव्रत धारी हैं। वे कृत्रिम आचरण में विश्वास नहीं करते हैं। राम का यह अटल विश्वास है कि चित्रकूट ने ही उन्हें स्नेह से अपने पास बुला लिया है। चित्रकूट मुनियों का प्रदेश है। अतः मुनि जीवन की श्रेष्ठ साधना के लिए यह आवश्यक है। राम का स्वभाव धैर्य और नम्रता से युक्त है। जब कोल–किरात भरत के चित्रकूट आगमन की सूचना देते हैं तो लक्ष्मण क्रोध से दग्ध हो जाते हैं परन्तु राम शान्ति के साथ लक्ष्मण को समझाने का प्रयास करते हुए कहते है किः–

बोले राम–"मौन हो, करना निन्दा अब न भरत की।
उपमा नहीं मिलेगी जग में उसके विमल चरित की।।"

(चित्रकूट पृ.सं.– 26)

जब सभी पुरवासी चित्रकूट में एकत्र हो जाते हैं तो राम को एक ही चिन्ता होती है कि अयोध्यावासियों को किसी प्रकार का कोई भी कष्ट न हो। अक्सर देखा जाता है कि माता को जैसे अपने शिशु की चिन्ता सदा रहती है ठीक उसी तरह से आज राम को सभी की चिन्ता सता रही है। कवि ने राम की चिन्ता को इस प्रकार से व्यक्त किया हैः–

किन्तु राम चिन्ति थे, वन में देख असुविधा सबकी।

मातृ हृदय ही चिन्ति बनता, शिशु ने चिन्ता कब की ?

(चित्रकूट पृ.सं.– 34)

वे सीता से बार बार कहते हैं कि सीता माताओं, बहनों को किसी प्रकार का कोई कष्ट न हो। इनका जीवन आदर्शों से युक्त है।

जो जीवन की हर करवट पर रह संतुष्ट जिया है।
उसने ही अथाह सुख–सागर निश्चय थाह लिया है।।

(चित्रकूट पृ.सं.– 35)

एक दिन संध्या वंदन के लिए राम जब नदी के तट पर जाते हैं तो सिर नीचा किए हुए शिला पर कैकेयी को बैठे देखते हैं। कैकेयी को राम के आने का पता ही नहीं चलता वह तो अपने आप में खोयी हुई है। जब राम उनसे उनके इस मौन का कारण पुछते हैं तो वह अपनी व्यथा–कथा सुनाकर अपने जी का जलन मिटा लेना चाहती है। उस आत्मग्लानि की पीड़ा को सुनकर राम कैकेयी के चरणों में पड़कर रोने लगते है। राम कहते हैं:–

करे न कोई माँ छोटा मन, माँ से बड़ा न कोई।
जिसके अंचल में यह संसृति शिशु बनकर है सोई।।

(चित्रकूट पृ.सं.– 40)

राम पुनः कहते हैं कि इस जगह में जो कुछ भी होता है वह पहले से ही निर्धारित है। सब कुछ ईश्वर के हाथ में है–

विधि विधान अनुसार जगत् में घटती है घटनाएँ।
व्यर्थ जोड़ उनसे अपने को हम क्यों सुख–दुःख पाएँ ?

• (चित्रकूट पृ.सं.– 44)

भरत और राम संवाद में शासन, राजनीति, न्याय विषमता आदि पर विशद वार्तालाप होता है। इस प्रकार राम का गुरू–प्रेम, प्रजा–प्रेम और कोल–किरातों के प्रति अमिट प्रेम एक साथ प्रकट होता है। वे नहीं चाहते कि पिता के प्रण में हम किसी प्रकार का उलटफेर करें।

वे प्राणि मात्र के प्रति प्रेम द्वारा सृष्टि के समस्त जीवों के प्रति आदर भाव रखने वाले पुरूषोत्तम हैं। कैकेयी से एकान्त में मिलकर वे जीवन–जगत के रहस्य को बता कर उनके हृदय की व्यथा को सदा के लिए समाप्त कर देते है। इस रचना में राम का चरित्र स्रोत कथाओं से कहीं भिन्न नहीं है। वे अपनी शील की रक्षा कर्म क्षेत्र की विसंगतियों और विषमताओं के बीच भी कर लेते है। कैकेयी के पश्चाताप के बाद में मझली माँ के चरणों में विलख कर रो पड़ते हैं। इनकी दृष्टि में माता का आंचल बहुत बड़ा होता है। समूचा संसार शिशु बनकर उसके आँचल में सोया हुआ है। सारे कार्य–कलाप संसार के परम त्तव के इशारे पर होते चलते हैं। अतः किसी को दोष देना किसी भी हालत में मनुष्यता के लिए श्रेयस्कर नहीं हो

सकता। इस में सबके सुख राम में ही निहित हैं। भरत से भी वे यही कहते हैं यदि तुम्हारा भाव लौटाने के लिए है तो ऐसा करने से शील की रक्षा कैसे हो सकती है। शील की रक्षा के लिए हमें प्रजा का विश्वास जीतना आवश्यक है। राम की दृष्टि में राज्य केवल अधिकारों की माया नहीं है। वह तो व्यक्ति के लिए जनता की सेवा का अवसर है। राजा का कर्त्तव्य प्रजा की सच्ची सेवा ही है। राम सम्बन्धों के सात्विक रूप पर सदा ध्यान रखते हैं। राज्य केवल अधिकार नहीं एक बहुत बड़ा दायित्त्व है। वह भरत से कहते है कि नीति यही कहती है कि मैं चौदह वर्ष का आदेश पालन वन में रहकर करूँ भरत प्रजा तथा माताओं की सेवा अयोध्या में रहकर करें। श्रीराम के इस विचाार से सभी संतुष्ट हो जाते हैं। ऋषिगण गद्गद् हो जाते हैं। वहाँ उपस्थित सभा राम और भरत जैसे भाई पर न्यौछावर होकर धन्य–धन्य हो गई। इस प्रकार हम देखते हैं कि राम के चरित्र के सम्बन्ध में महर्षि अत्रि का कथन उनके चरित्र को स्पष्ट रूप से हमारे सामने ला कर रख देता है:–

राम तुम्हारा चरित धर्म का जग में सेतु बनेगा।
साधु भरत के भ्रातृ–प्रेम का नभ मे केतु उड़ेगा।

(चित्रकूट, दुबे, पं.स. पृ.सं–60)

आलोच्य कृति मे राम का चरित्र स्रोत ग्रंथों के अनुरूप ही वर्णित किया गया है।

भरत–

प्रस्तुत कृति' में भरत का चरित्र स्रोत ग्रंथों में वर्णित रामकथाओं की भाँति ही हुआ है। वे एक आदर्श भाई हैं, राम के अनन्य भक्त है। भरत को चतुरंगनी सेना के साथ चित्रकूट की ओर आता देखकर सशंकित हो कोल–किरात यह सूचना श्रीराम को देते हैं। वे सीता और राम के समक्ष आशंका व्यक्त करते हैं कि कैकेयी युद्ध नियन्ता बनकर अपने पुत्र भरत को निष्कंटक राज्य देने के उद्देश्य से आ रही हैं। संभवतः भरत में भी कैकेयी की ही भाँति राज्य लिप्सा का संचार हो गया है। किन्तु बाद में यह संशय निर्मूल सिद्ध होता है। जब भरत नंगे पॉव, नतसिर, अवद्धकर और आर्तमन से हारे हुए जुवारी की भाँति करूणा की मूर्ति बन कर पहले राम के चरणों में तथा फिर सीता के चरणों में गिर पड़ते है:–

भरत गिरे चरणों में, प्रभु ने हाथों उन्हें उठाया
भुज–बन्धन में बांध भरत को अपने गले लगाया।

(चित्रकूट, पृ.सं.28)

भरत माताओं, अयोध्यावासियों और गुरू वशिष्ठ के साथ जब चित्रकूट पहुँच ते हैं और जब वे वनवासी राम से मिल रहे थे तो ऐसा प्रतीत होता था मानों काल ठहर गया हो। उस समय भरत के हृदय में उठती लोल लहरियों एवं उनकी मनःस्थिति का सजीव चित्रण कवि ने किया है। भरत अयोध्या में जो कुछ भी घटना घटी उसका कारण स्वयं को मानते हैं। उन्हें अयोध्या का राज्य स्वीकार नहीं हैं वे चाहते हैं कि राम उनके मन की स्थिति को समझ लें और अयोध्या लौट जाए। यह भाव वहाँ उपस्थित

सभी के मन में व्याप्त है और राम यह सोच रहे थे कि भरत ऐसा सोच कर पिता की आज्ञा के उल्लंघन के बारे में कैसे सोच सकते हैं, तब वह कहते हैं कि भरत तुम्हें जो कुछ भी कहना हो, वह अपने मुख से कहो। फिर वह भरत को समझाते हैं कि शासक वही सफल होता है जो अपने पर नियंत्रण रखें:–

शासक वही सफल, जो करता प्रथम स्वयं पर शासन।
सदुपयोग करता प्रजार्थ ही, प्राप्त प्रजा से जो धन।।

(चित्रकूट, पृ.सं.46)

राम कहते हैं कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि भरत जैसा शासक जनता को दूसरा कोई नहीं मिल पायेगा। वह कहते हैं कि –

पालू आज्ञा इधर पिता की, मैं वन में ही रहकर।
पालो प्रजा, करो तुम सेवा माताओं की घर पर।

(चित्रकूट, पृ.सं.47)

और अन्त में यह निर्णय हो जाता है कि राम वन में रहेंगे तथा भरत अयोध्या का राज्यभार सम्भालेंगे। सभी कहने लगे की इस भूतल में भाई हो तो राम–भरत से और सभा विसर्जित हो जाती है।

इस कृति में भरत का चरित्र–चित्रण स्रोत कथाओं के अनरूप ही है, भिन्नता बस इतना ही है लक्ष्मण भरत के चित्रकूट आगमन में कैकेयी का निर्देश मानते हैं।

वशिष्ठ–

रघुकुल के कुलगुरू वशिष्ठ का चित्रण कवि दुबे जी ने स्रोत ग्रंथ 'रामचरितमानस' और वाल्मिकि 'रामायण' के अनुरूप ही किया है। जब भरत सहित वशिष्ठ चित्रकूट पहुँते है तो राम, लक्ष्मण और सीता उनके चरण छूते हैं और वशिष्ठ संक्षेप में दशरथ मृत्यु का समाचार राम को सुनाते हैं। गुरू वशिष्ठ यद्यपि स्वयं शोकार्त थे लेकिन उन्होंने राम को यह कहकर समझाया कि राजा दशरथ सत्य–अनुरागी, न्याय–परायण,नीतिज्ञ, शासन प्रबन्ध में कुशल थे। चूँकि नियति पर किसी का वश नहीं चलता उसे टाला नहीं जा सकता। यहाँ कवि ने गुरू वशिष्ठ को सच्चे मार्गदर्शक के रूप में चित्रित किया है।

इस घटना के कुछ दिनों के पश्चात राम गुरू वशिष्ठ के समक्ष अपनी चिन्ता व्यक्त करते हैं कि भरत सभी के साथ यहाँ आ गये हैं और वहाँ अयोध्या सुनी हो गई है। राजा का क्या यही कर्त्तव्य है? तब गुरू वशिष्ठ राम के इस प्रस्ताव का अनुमोदन कर भरत को निर्देश देते हैं कि भरत सारे समाज को एकत्रित करें और अपने हृदय के भाव को स्पष्ट करें। तब भरत कहते हैं कि उनके हृदय के भाव को वशिष्ठ ही बतायें। गुरू वशिष्ठ बताते हैं कि भरत इन सभी घटनाओं का उत्तरदायी स्वयं को मानते हैं। इसीलिए उन्हें यह राज्य स्वीकार नहीं है। यह सब सुनकर राम चौंक जाते हैं कि भरत पिता की आज्ञा के उल्लंघन के बारे में सोच भी कैसे सकते हैं। राम की इस प्रकार की बातें सुनकर गुरू वशिष्ठ गद्गद् हो जाते हैं। वे राम की बात का अभिनन्दन निम्न शब्दों में करते हैं:–

राम तुम्हारी इच्छा ही हो पूरी सदा जगत में।

भ्रातृ प्रेम की भूरि भव्यता छलके सदा भरत में।।

(चित्रकूट, पृ.सं.47)

इस प्रकार हम देखते हैं कि वशिष्ठ का चरित्र स्रोत कथाओं के अनुरुप ही प्रदर्शित है।

लक्ष्मण–

लक्ष्मण सारी सृष्टि को आनन्द देने वाले राम को भी आनंदित करने वाले हैं। ऐसा कोई स्थल नहीं जहाँ राम हों और लक्ष्मण नहीं। वनवास में उनको कभी अपनी पत्नी का स्मरण नहीं रहा। वे राम को कभी विपत्ति से ग्रस्त नहीं देख सकते। उनका हृदय सदा शंकालु रहा करता है। गोस्वामी तुलसीदास जी 'रामचरितमानस' के अनुसार वे शेषनाग के अवतार हैं। अनेक लक्षणों से युक्त हैं और प्रभु श्रीराम की कीर्ति–ध्वज को आकाश में लहराने के लिए उन्होने एक महान डंडे का कार्य किया है।

चित्रकूट में बस एक ही अवसर है जहाँ लक्ष्मण अपने सेव्य के प्रति सेवा–भाव का ऊँच प्रदर्शन कर सकते थे। वह अवसर है–

कोल–किरात संशकित होकर समाचार है लाए।

लिए चुनी चतुरंग चमू को भरत अनुज–रंग आए।।

(चित्रकूट, पृ.सं.26)

भायप भगति से पूर्ण भरत के आचरण से प्रेरित चतुरंगिणी सेना के साथ माताओं सहित उनका चित्रकूट आना। यह लक्ष्मण के लिए शंका का कारण बनता है। कहीं राजमद में चूर्ण होकर भरत श्रीराम को एकाकी वन में जानकर निष्कंटक राज्य की कल्पना में अपने चक्रवर्तृत्त्व को प्रमाणित करने तो नहीं आ रहे हैं। ऐसी शंका से उनका उद्दीप्त मन सहस्रसीस हो ही जाता है। प्रभु के हृदय में जब इस अवस्था को देखते ही लक्ष्मण क्रोध से दग्ध होने लगते हैं। क्रोध के भाव से अनेक अनुभव उत्पन्न होते हैं। जैसे चेहरे पर तमतमाहट का आना, क्रोधपूर्ण वाक्यों का विन्यास आदि। बिना वीररस के आये क्रोध प्रकट नहीं होता। अतः कवि ने इस का बड़ा ही सुन्दर वर्णन इन शब्दों में किया है:–

अवध–नरेश वाहिनी लेकर बल अपना दिखलाने।

चित्रकूट आ रहे अकंटक अपना मार्ग बनाने।।

(चित्रकूट, पृ.सं.26)

वे अपना स्वाभाविक क्रोध अभिव्यक्त करते है। उनको लगता है कि अगर दुष्ट कैकेयी है तो उसका पुत्र सहसा राजपद पाकर अहंकार की मदिरा पीकर वह राज्यलिप्सा में रत होकर आ रहा है। यह आगमन उसके दिग्विजय कृत्य का जैसे शुभारंभ है। वह हमारे आर्य श्रीराम को अपने रास्ते की तीक्ष्ण कंटक मानकर चतुरंगिणी सेना के साथ मारने के लिए आ रहा है। वध करने या बंदी बनाने के लिए उसने सहज उपाय रच डाले है क्योंकि आज चित्रकूट में राम अकेले हैं और मुनि की वृत्ति को धारण करके प्रवास

कर रहे हैं। लेकिन लक्ष्मण के रहते ऐसा क्या हो सकता है! वे इतना सोचते ही दोनों भाइयों के साथ अकेले युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं। लक्ष्मण का सोचना और करना एक साथ होता है। एक तरफ जटा जूट को सिर पर बाँधते हैं और दूसरी ओर त्रोण को कमर में जैसे रौद्र रस धारण कर युद्ध के लिए तैयार हो गये। वे प्रत्यंचा से ऐसा नाद करते है, जिससे धरती और अम्बर प्रतिध्वनित हो जाता है। त्रोण से वाण खींचकर उस प्रत्यंचा पर चढ़ा देते हैं लेकिन उनके भीतर अनुशासन की एक मर्यादा है। बिना आज्ञा के वे कुछ भी नहीं कर सकते।

भरत राम मिलन के पश्चात भरत की व्यग्रता देखकर ही लक्ष्मण उनके सामने नतमस्तक होते हैं। *इस प्रकार लक्ष्मण का भ्रातृ–प्रेम और सेवा–भाव दोनों चित्रकूट में सिर्फ एक घटना के रूप में अंकित किया* गया है।

इस काव्य में लक्ष्मण और सीता को साप्ताहिक स्वच्छता के कार्य को करते हुए वर्णित किया गया जो स्रोत ग्रंथों में कही भी उपलब्ध नहीं है। यह कवि की मौलिक कल्पना है जो आधुनिकता का सूचक है।

3.घ.।। प्रमुख स्त्री पात्र–

श्री रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट' में पुरूष पात्रों के अतिरिक्त स्त्री पात्रों में सीता कैकेयी और अनुसूया का चरित्र विशेष रूप से उल्लेखयोग्य है। इन चरित्रों में शील की दृष्टि से कोई नवीनता नहीं है। परिस्थितियों के अनुसार इसकी व्याख्या का एक नया रूप इसमें मिलता है। उदाहरण स्वरूप चतुर्थ सर्ग में सीता, कैकेयी का चरित्र विशेष रूप से उभर कर सामने आया है कवि का ध्यान सबसे अधिक कैकेयी पर ही है।

कैकेयी–

कैकेयी का चरित्र का वैशिष्टय इस कृति में प्रकट हुआ है। वह किसी से कुछ बोलती नहीं और न कोई उससे बोलता है। किन्तु राम तो सर्वज्ञ हैं। 'रामचरितमानस' में भी कैकेयी को लजाए हुए देखकर सर्वप्रथम राम कैकेयी से मिलते है।उसी के घर जाते हैं–प्रथम राम भेंटी कैकेई।[8]

यहाँ कैकेयी एक शिला पर सिर लटकाए बैठी हुई जलधारा को एक टक देखते हुए सोच रही है तभी प्रभु श्रीराम संध्यावंदन के लिए वहाँ जाते हैं। उनके एकाकीपन की बात वे पूछते हुए कहते हैं– यदि मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो नासमझी से हुआ होगा। तुम्हारे मौन से हमें कष्ट हो रहा है। हमारी शपथ है कि तुम कुछ कहो। कैकेयी उनसे अपनी पूरी कथा सुनाकर जी की जलन मिटा लेती है। कैकेयी की आत्मस्वीकृति है कि रघुकुल में जितनी विपदा आयी उसके मूल में मैं ही हूँ। सारा अपराध मेरा है। अगर *ईश्वर पर भी अपराध डाला जाय तो आधा ही डाला जा सकता है।* बस उसका अपराध इतना ही कि उसने कैकेयी का निर्माण किया। नारी को ममता प्रदान कर ईश्वर ने एक बहुत बड़ी गलती कर दी। अतः माँ को अपने त्याग की भाषा को सीखना ही होगा। परमात्मा ने ही माँ को खारा पानी पीकर संतान को दूध पिलाकर पालने की शक्ति दी है। घटनाएँ तो सरिता के जल के समान घटकर निकल जाती हैं। नियति

प्रबल होती है, वही मनुष्य के भाग्य के विधान को बनाती है। कोई बदलने वाला समर्थ नहीं हुआ। दुःख को निकाला नहीं जा सकता और न सुख की स्थापना हो सकती है। ऐसा कहकर कैकेयी अपने भीतर के तापमय भाव को प्रकट कर स्वयं निष्पाप बन जाती है। 'रामचरितमानस' में यह अवसर कैकेयी को नहीं मिला। भरत के व्याज से ही कैकेयी के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। कैकेयी का आत्म कथन कहीं नहीं होता।

इस कृति में कैकेयी का अपने कलंक को स्वतः स्वीकार करना और नियति को स्थान देकर उसको भी इसका दायित्त्व भार ग्रहण कराना वर्णित किया गया है जो स्रोत काव्यों में नहीं है। सारांशतः *कैकेयी का चरित्र आधुनिक चित्रकूट संज्ञक काव्यों में भाष्यानुमोदित होकर मुखरित हुआ है। यहाँ पाठकों* को सोचने के लिए अवकाश न देकर स्वयं कैकेयी अपने सम्बन्ध में निवेदन करती है। आधुनिक काव्यों में कैकेयी का चरित्र इसी धरातल पर निर्मित हुआ है। यहाँ सरस्वती को दोषी नहीं बनाया गया है। उसका मातृत्त्व ऐसा करने को बाध्य करता रहा है। 'रामचनितमानस' में मंथरा को 'गई गिरा मति फेरि' लेकर मंथरा को कैकेयी के विवेक विनष्टि का हेतु बनाकर इस चरित्र को गिरने से बचा लिया गया है। अतः मानवीयता कम हुई है और दैवी विधान की प्रबलता उसमें दिखायी गयी है। दुबे जी ने कैकेयी के मुख से अपने समस्त दोषों को स्वीकार कराकर उसके चरित्र को सुवर्णमय बना दिया है। वह नियति को प्रबल मानकर मनुष्य को उनके समक्ष वामन घोषित कर देती है–

नियति प्रबल है, जो मनुष्य की मति को हर लेती।
भाग्य विधान लिखा जो जैसा, वैसी गति कर देती।।
लगता यहाँ विवश है नर उस अटल नियति के कर में।
नहीं विवेक साथ देता है दुःख के इस संगर में।।
x x x x x x
ऐसी लहर लोभ की आई पुत्र हेतु ही उर में।
उलट गयी तरनी विवेक की, डूबी उसी लहर में।।

(चित्रकूट, पृ.सं. 39)

कैकेयी कुब्जा को भी दोष नहीं देती और न वह अपने चिर कलंक के कांटे से ही विरहित होना चाहती है

दोष किसी कुब्जा को क्यों दूँ, वह था मेरा माँपन।
और आज भी हृदय खोलकर बोल रहा है माँपन।।

(चित्रकूट, पृ.सं. 40)

कैकेयी अपनी मातृत्त्व सुरक्षित रखना चाहती है। अयोध्या में उसका माँपन एक पलड़े पर सुरक्षित था। चित्रकूट में राम को भी दूसरे पलड़े पर रखकर अनेक लाछंनों के बावजूद वह माता के रूप में पूज्या

बन गयी है। राम उसे माँ कहते हैं क्योकि कैकेयी के कारण संसार की कोई माता स्वयं को छोटा कहे और न कोई माता अपने मन को छोटा करे। इसलिए राम संसार की सभी माताओं को लांछन रहित बनाने के लिए इस प्रकार के नीतिमय वाक्यों का आश्रय लेते हैं क्योंकि सृष्टि में जननी अर्थात जनन करने वाली माँ से कोई भी बड़ा नहीं हो सकता है। इस प्रकार कैकेयी कंचन की भाँति पश्चाताप की आग में जलकर अपने पुत्र राम के आश्रय–प्रेम को प्राप्त कर लेती है। यहाँ में कवि की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है।

सीता–

आलोच्य कृति में सीता का चरित्र स्रोत ग्रंथ 'रामचरितमानस' की ही भांति आदर्श पत्नी, आदर्श बहू, आदर्श बेटी के रूप में चित्रित किया गया है। जब सीता अपनी बहनों से मिलती है तो वह अपूर्व संतोष का अनुभव करती है।

मुझको तो संतोष कि सबका कुछ सहवास सिला है।
तीनों माँ बहनों को पाकर मानस–कमल खिला है।।
x x x x x x
सच कहती हूँ पाकर सबका अपनापन भूली हूँ।
स्नेह उदधि की कल्लोलोंपर तरनी–सी झुली है।।

(चित्रकूट, पृ.सं–35)

इसी प्रकार सीता सबकी सुख सुविधा का ध्यान रखकर हर्ष के डोले पर झुलती चलती है। वह बड़ी सास के पास बैठकर अपने सुख का बखान करती है। इन सबके पीछे उनका मनोभाव यह है कि उन लोगो के वन में रहने के कारण होने वाले दुखों के प्रति माँ के मन में किसी प्रकार का दुख न, हो उन्हें यह पता भी न चले कि वे यहाँ दुखी हैं। इसलिए वह अपने सुखी जीवन के भाव को अपनी सास के समक्ष प्रकट कर रही है। दूसरा भाव यह है कि विपिन के दुःख को जानकर कही उनकी सासु माँ उन्हें वापस लौटने का आदेश न दे दें। कौशल्या से जब सीता किरात बालाओं के लोकनृत्य की चर्चा करती है कि कैसे ये किरात बालाएं उन्हें अपने लोकनृत्य में हाथ पकड़कर शामिल करती है। ताड़ और खजुर के पत्तों से आभूषण बनाकर पहनाती है। वन फूलों से सजाती है, किंकर की फलियों से पायल बनाकर पहनाती है और विविध स्वादयुक्त फलों को नित्य लाकर भेंट करती है, तो उनके सहज प्रेम में अवध का पूरा प्रेम आकर समाहित हो जाता है। इसके मूल में सीता का उद्देश्य इतना ही है कि हमारे सुख की बातों से माता सुखी रहें। कौशल्या आदि रानियों के मन में तो भाव यह है कि विपिन विपत्ति नहीं जाई बखानी और यहाँ तो उनका विछावन शिला है । वे कहतीं हैं कि–

शय्या शिला कठोर, कहाँ यह मेरी कोमल रानी।
अशन अनिश्चित, लगता होगा यह पहाड़ का पानी।।
x x x x x x
जिनके लिए भोग संचित थे, अनुपम राज–सदन में।

कैसा यह दुर्भाग्य, उन्हें है रहना पड़ा विपिन में।।

(चित्रकूट, पृ.सं. 36)

किंतु सीता मन से इस वन में रहकर भी सुखी है। अतः कौशल्या को विषाद करने की कोई आवश्यकता नहीं । मन में किसी प्रकार के अभाव का भाव ही दुःखों का कारण बनता है। मनुष्य मन से ही सुखी और मन से ही दुखी रहता है। सीता को इस बात की संतुष्टि है कि–

आर्यपुत्र का साथ और देवर की सच्ची निष्ठा।

मन को कर परिपूर्ण रहा, तब दुख की कहाँ प्रतिष्ठा ?

(चित्रकूट, पृ.सं. 37)

अतः सीता को तो माँ का केवल आशीष मात्र चाहिए। परन्तु 'रामचरिमानस' में इस प्रसंग को इस रूप में नहीं लाया गया वहाँ 'सीच सासु प्रतिवेष बनाई। करहि सदा सबकी सेवकाई' का वर्णन है। वहाँ कुछ भी सीता से कहने सुनने की बातें नहीं है। सीता ने सब कुछ अयोध्या में ही कह दिया है। चित्रकूट में वह अपने सुख–दुख की बातें नहीं कह सकती है। जहाँउसकें प्राणों से प्यारे पति और प्रिय देवर है, वही सीता है। अतः स्रोत ग्रंथों से हटकर आलोच्य काव्य में सीता के चरित्र की विलक्षणता प्रकट होती है। सीता अपने मन में दुःख–सुख को मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यक्त कर माता को अपने सार्वभौम सुख में भागीदार बना लेती है। इस प्रकार सीता का चरित्र–चित्रण स्रोत ग्रंथों के अनुरूप ही व्यक्त किया गया है, कहीं–कहीं थोड़ा परिवर्तन है।

3.घ.।।। गौण स्त्री पात्र–

अन्य स्त्री पात्रों में सुमित्रा, अनुसूया, उर्मिला के चरित्र भी मानवीय भावनाओं से उकेरे गये हैं। ये सभी पात्र सेवा, प्रेम और मर्यादा के भीतर रहकर काम करती हैं।

सुमित्रा–

सुमित्रा जब चित्रकूट पहुँचती है तो वहाँ भी सुमित्रा से लक्ष्मण दो दिनों तक नहीं मिलते हैं। तब भी उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं होता । चित्रकूट में आए दो दिन हो गये, लेकिन पुत्र से बातें नहीं हुई। पुत्र का व्यस्त रहना, सेवा कार्य को तल्लीनता से पूरा करना आदि को देखकर सुमित्रा को प्रतीत होता है कि लक्ष्मण जैसे पुत्र को जन्म देकर उनका जीवन सार्थक हो गया है। उनके लिए यह सब पुत्र के साथ बैठकर बातें करने से बढ़कर है। एक दिन जब सन्ध्या बेला में लक्ष्मण थककर शिला पर बैठते हैं तो यह अवसर अनुकूल जानकर सुमित्रा उनसे मिलने आती है। उनकी कुशलता आदि की पुछताछ माता सुमित्रा नहीं करती है। केवल वह उन्हें सेवा–कार्य को करने की प्रेरणा देती है और उनके सेवाभाव को देखकर दूर से ही प्रसन्नता का अनुभव करती है–

दो दिन से ही सोच रहीं थी पुँछू आकर तुमसे।

सेवा–कार्य तुम्हारा चलता तो है विधिवत क्रम से?

देख तुम्हारी अमित व्यस्ता, बात नहीं कर पाई।

किन्तु सत्य यह व्यस्त देखना हुआ मुझे सुखदाई।

(चित्रकूट, पृ.सं. 41)

'रामचरिमानस' में भी सुमित्रा का चित्रण इसी रूप में चित्रित है। अतः यहाँ सुमित्रा का चरित्र स्रोत ग्रंथों के अनुरूप ही वर्णित हुआ है। वहाँ भी लक्ष्मण को वन जाते समय सुमित्रा यही शिक्षा देती है कि 'तुम्हारा भाग्य राम बन गए'। तुम्हारे पिता राम है तथा माता सीता है। इनको भाई और भाभी नहीं समझना। इनकी सेवा का सौभाग्य तुम्हें मिला है। मेरी दृष्टि में तो सेवा के समान दूसरा मानव का कर्त्तव्य हो ही नहीं सकता है। वही माता पुत्रवती है जिसका पुत्र श्रीराम का भक्त है। अन्यथा उसका प्रसव व्यर्थ है। राम से विमुख रहने वाले मनुष्य को इस सृष्टि में केवल हानि ही हानि होती है। तुम्हारा कर्त्तव्य और धर्म सेवा में सिमट कर रह गया है। सेवक को कभी कष्ट नहीं होता क्योंकि वह सेवा को ही अपना धर्म मानता है। अतः सुमित्रा चित्रकूट में अपने पुत्र को सेवक रूप में पाकर फूलों नहीं समाती और इस तरह उसने अपने मातृत्त्व को सार्थक मान लिया है। इस संदर्भ में लक्ष्मण का उत्तर है–

हाँमाँ , श्रम का स्वाद मधुरतम यहीं जान हूँ पाया।

बड़े भाग्य से ही निसर्ग की गोदी में हूँ आया

(चित्रकूट, पृ.सं. 41)

अनुसूया–

अनुसूया का चरित्र केवल अत्रि के आश्रम में आने के समय प्रकट हुआ है। वे ऋषि की धर्मपत्नी है और पति के समान ही तपस्या में लीन है। वे वृद्धा हो गयी हैं। वह यह मानती है कि उनके जीवन की सार्थकता महामुनि अत्रि के पदरज को अपने सीस में लगाने में ही है। स्नेह और आर्शीवाद से ही आज मैंने यह स्थिति प्राप्त कर ली है। यद्यपि अयोध्या की घटना बहुत सुखदायक नहीं मान सकती, लेकिन इस वन का भाग्य तो जरूर जागा है जो इन त्रिमुर्ति के दर्शन हमें हो रहे हैं। इससे हमारे सारे कल्मष भाग गए हैं और सारे वनवासी प्रेम के बंधन में बंध गये हैं। वहीं पर मुनि अत्रि चित्रकूट की रम्य स्थली में निवास बनाने का आदेश देते हैं।

उर्मिला–

आलोच्य कृति में कवि ने उर्मिला के चरित्र को सीता से कम महत्त्व नहीं दयिा है। कवि का मानना है कि लक्ष्मण यहाँ राम–सीता की सेवा में है तो उर्मिला के त्याग के कारण ही। उर्मिला के त्याग ने ही उर्मिला को सीता से भी महान बना दिया है–

'पदरज शीश चढ़ाकर बोला– मुझको दी जलाना।

x x x x x x

इस धरती को मिली सहज ही श्रेष्ठ तीर्थ की श्रेणी।

(चित्रकूट, पृ.सं. 51–52)

मांडवी–

मांडवी के चरित्र का यहाँ विस्तर से वर्णन नहीं किया है। यहाँ उनका वर्णन बर इतना ही है कि वह कहती है कि या तो लक्ष्मण अवध को चले या उर्मिला उनके साथ वन में रहे। वह चाहती है कि चौदह वर्ष तक उर्मिला लक्ष्मण से अलग न रहे। वह उसके दुःख को महसूस करती थी। पर वह उर्मिला के सेवा भाव, त्याग से परिचित न होने के कारण थी। अतः हम देखते हैं कि मांडवी यहाँ बहुत मुखरित नहीं हुई।

इस प्रकार आलोच्य रचना मे पुरूष हो या स्त्री किसी भी पात्र का चरित्र–चित्रण का विशाल फलक पर नहीं मिला है। कथा के क्रम को सहारा देने में इन पात्रों का वर्णन सूत्र रूप में प्राप्त हो जाता है। उनके क्रिया–कलाप, उनके सम्बन्ध, कथन और उनके अपने स्वयं के कुछ कथन चरित्र के सूत्र में बँधते जाते हैं जिन्हें बटोर कर उनका आंशिक चित्रण हो पाया है। चूँकि उपजीव्य कथा से हटकर इसमें थोड़ी सी नव्यता लाने का प्रयास किया गया है।

3.ङ. लक्ष्मीकान्त वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित्र –

चरित्रांकन की दृष्टि से लक्ष्मीकान्त वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित' विशेष रूप से हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। इसके प्रमुख पुरूष पात्र राम, भरत, लक्ष्मण, जनक तथा वशिष्ठ के नाम उल्लेखनीय है और प्रमुख स्त्री पात्रों के रूप में सीता, सुनयना, कैकेयी एवं कौशल्या हैं।

3.ङ.1. प्रमुख पुरूष पात्र–

राम–

राम का चरित्र नर और नारायण दोनों रूपों में अंकित हुआ है। यदि हम इस पर सूक्ष्मता से विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव की तुलना में उनका ब्रह्म रूप ही अधिक स्फूट हुआ है। वर्मा जी के अनुसार राम ब्रह्म के लीलावतार हैं। उनके सारे कार्य मात्र उनकी लीलाएँ हैं–

कौन कहे लोक रंजन का
राम कर रहे लीला सुन्दर ।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 41)

सुमित्रा को यह पता है कि यह सृष्टि, व्यापक जगत इन सभी का निर्माण श्रीराम की इच्छा से ही हुआ है–

यह व्यापक जगत, सृष्टि यह सारी
इच्छा ही है राम भद्र की।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 41)

वस्तुतः राम के ब्रह्म रूप को समझना इतना सहज नहीं हैं। दूसरे की बात क्या करें, स्वयं राम के परम भक्त भरत भी उनके इस रूप को समझने में असमर्थ हैं। उनके भ्रम को दूर करने के लिए ही राम

अपने विराट विश्वरूप की व्याख्या भरत के समक्ष बड़े विस्तार से करते हैं। यह निम्नलिखि्त पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

मैं क्या हूँ?
मैं ही व्याप्त सृष्टि, कण–कण में
पुंजीभूत भावना की यह
रूपायित है सृष्टि रूप में
x x x
बहुरूपी करके तो देखो
तुम स्वयम् वही हो जाओगे
x x x
मेरा रोम राम सृष्टिमय,
मेरा रोम–रोम विश्वमय,
मेरा अपना स्वरूप क्या?
सब विराट में लीन भावमय

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 131–134)

वर्मा जी ने राम के जिस विराट विश्वरूप की व्याख्या यहाँ भरत के समक्ष कराई है, वह स्रोत ग्रंथों में अंकित ब्रह्म के विराट रूप के अनुरूप ही है। राम के ब्रह्म रूप के अतिरिक्त उनके मानवीय रुप का भी चित्रण करने के क्रम में कवि ने उन्हें उन सभी पारम्परिक गुणों से युक्त बताया है जिसका निरूपण पूर्ववर्ती सभी रामाख्यानक काव्यों में होता रहा है। वे एक आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श प्रजावत्सल, आदर्श पति आदि रूपों में वर्णित हैं। वाल्मीकि के अनुसार उन्होंने पिता की वचनबद्धता और माता कैकेयी की 'इच्छा' को ही आदेश के रूप में स्वीकार कर स्वयं निर्वासन लिया है:–

निर्वासन लिया रामने
स्वयं आपही

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 26)

ऐसा कर उन्होंनें पिता–पुत्र के सम्बन्ध को उदात्त रूप प्रदान किया है। राम का व्यक्तित्व शील, नम्रता की खान है। स्वयं कौशिक ऋषि जाबालि को फटकारते हुए राम की विशेषताओं का उल्लेख इन शब्दों मे करते हैं:–

राम शक्ति:शील में स्थिति/मर्यादा:परमार्थ धर्म है।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 103)

वाल्मीकि के अनुसार राम कर्म की मर्यादा है। कैकेयी राम को वन से लौट कर अयोध्या चल कर राज्य संभालने का आग्रह करती है। उसका तर्क है कि वन में निर्वासन का जीवन व्यतीत करना ब्राह्मण का धर्म है और राम एक क्षत्रिय है। इस प्रकार राम अपने स्वधर्म–क्षत्रिय धर्म को छोड़ रहे हैं। इस पर राम माता कैकेयी से कहते हैं कि:–

इस स्वधर्म को छात्र धर्म ही माने माँ !

राम तुम्हारा रघुवंशी है। उसका स्वधर्म है,

छात्र भाव में जीना मरना।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 122)

राम का विचारक एवं लोकप्रिय रूप 'चित्रकूट–चरित' में उद्‌भाषित हुआ है। वे क्षमाशीलता की मूर्ति हैं। भरत की दृष्टि में उनकी माँ कैकेयी ने राम को वनवास देकर बहुत बड़ी भूल की है। वह इस अपराध के लिए उन्हें कुमाता तक कहते हैं। इसका प्रतिकार करते हुए राम उनसे स्पष्ट कहते हैं:–

भरत!

भक्ति तुम्हारी बड़ी प्रखर है

बहुत कठिन तप वीर! तुम्हारा।

x x x x x

यह मत भूलो,

पुत्र भले हो बड़ा तपस्वी

माता कभी न होती छोटी,

खोटी या कि कुमाता

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 129)

राम सर्वप्रिय हैं। यहाँ तक कि वनवासी जन भी उन्हें अपना सर्वस्व मानते हैं। राम के लिए आदिवासी जन भरत से विद्रोह तक करते हैं। जब तक उन्हें यह विश्वास नहीं हो जाता कि भरत राम के सच्चे अनुयायी और भक्त हैं, तब तक वे भरत को राजा स्वीकार नहीं करते। उन्हें बड़ी मुश्किल से समझाया जा सका है कि राम और भरत में भेद नहीं है–

दोनों है एक: न उनमें भेद है

नहीं है ईर्ष्या,

दोनों ही है मूर्ति नेह की

वे क्या जाने भेद भाव को

x x x

राम भरत की भाव सृष्टि है

भरत राम की यथा दृष्टि है।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 48)

रामचन्द्र का एक महान गुण क्षमाशीलता है। वे सभी को समदृष्टि से देखते हैं एवं उनके निर्वासन के लिए जो भी अपने को दोषी मानता है, वे उन सभी को दोष मुक्त करते हैं। वे इसे काल चक्र की गति का अनुकूल रूप भर स्वीकार करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने ग्रंथों में राम के नाम की महत्ता को स्वीकार किया है। उनका मानना है कि मानव राम से बड़ा उनका नाम है –'ब्रह्म राम ते नाम बड़'। ठीक उसी प्रकार 'चित्रकूट–चरित' में वर्मा जी ने भी मानव रूप की तुलना में राम भाव को अधिक व्यापक घोषित किया है। राम की अपेक्षा रामभाव की महत्ता का कथन प्रायः सभी पात्रों ने समान रूप में ही किया है। स्वयं राम ने भी इसकी पुष्टि की है–

बन्धु! राम नहीं यह कायिक स्वरूप
देखो अवध राज्य में राम नहीं क्या?
राम भाव जीता है,
राम भाव ही बड़ राम से।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 130)

'चित्रकूट–चरित' में राम और भरत के चरित्र मे 'भायप–भगति' के माध्यम से अभेदत्त्व स्थापित किया गया है–

राम भरत के अनुयायी हैं
भरत राम की छवि छाया है।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 12)

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि प्रस्तुत खण्ड काव्य में राम का चित्रण ब्रह्म और मानव दोनों रूपों में हुआ है। मानव राम में वे सभी गुण हैं जिनसे वह उपर उठकर मानवेतर राम बन जाते हैं। मानव राम पूर्ण ब्रह्म है जिनकी लीला का प्रकाशन ही सर्वत्र हो रहा है। यह विस्तृत जगत भी राम का रूप ही है। इसमें राम का चरित्र स्रोत ग्रंथों के अनुरूप ही चित्रित किया गया है। कहीं–कहीं आयी भिन्नता नवीन युग–बोध के कारण है।

भरत–

लक्ष्मीकान्त वर्मा कृत 'चित्रकूट–चरित' में भरत का चरित्र स्रोत ग्रंथों में वर्णित रामकथाओं के अनुरूप ही हुआ है। वे आदर्श भाई, स्वभाव से सन्त और त्यागी एवं राम के सेवाव्रती भक्त हैं। भरत को ससैन्य आते देखकर आदिवासियों और निषादराज को पहले यह भ्रम अवश्य हुआ कि वे संभवतः राम के विरोधी तथा निष्कंटक राज्य हेतु राम को वन में एकाकी जान उनकी हत्या करने आ रह हैं। इसीलिए उन्हें रोकने के लिए उन्होंने युद्ध निमित्त तैयारी भी कर ली। उन लोगों का यह भ्रम तब दूर हुआ जब निषादराज

भरत से मिले। निषादराज ने आदिवासी जन को भी समझाना चाहा, पर उनका भ्रम इतनी आसानी से समाप्त नहीं हुआ। निषादराज ने सबको समझाने की कोशिश की:

सुनो वीर! युवजन वनवासी/भरत भाव जगत के प्राणी है।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 21)

वे स्वीकार करते हैं कि पहले वह भी भरत के विरोधी थे, किन्तु भरत–भाव को समझ लेने के पश्चात वह उनके अनुयायी हो गये हैं। उन्हें विश्वास है कि–

राम–भरत के मध्य यह राज्य
कतिपय नया मूल्य–विकसित करने को है।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 23)

वाल्मीकि भी वनवासियों को समझाने का प्रयत्न करते हुए कहते हैं कि राम से भरत का भेद करना सर्वथा गलत है। भरत रत्न हैं तो राम नेह की भाँति है। भरत विनय धर्म, भक्ति की धुरी है। वह यह कहते हैं कि यदि हम अपने भीतर यह दृष्टि उत्पन्न करेंगे तभी राम भरतमय तथा भरत राममय हमें दिखेंगे। इन वाक्यों के द्वारा भरत के चरित्र पर किया गया संदेह समाप्त हो जाता है और उनके चरित्र की उदात्तता स्वयं ऋषि के द्वारा सत्यापित हो जाती है।

कैकेयी को अपने उपर गर्व है कि वह भरत की जननी है। भरत के रूप में उसने भक्ति–भाव की धारा को ही जन्म दिया है–

मेरे तन से ही निकली है
भक्ति भाव की धारा बनकर।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 41)

भरत को जब यह पता चलता है कि रामराज्य की प्राप्ति के लिए वनवासी जन विद्रोह की आवाज उठा रहे हैं तो भरत को लगता है मानों वे उनका ही कार्य कर रहे हैं। इसलिए वे उन्हें प्रोत्साहित भी करते हैं:–

तुम निर्भीक प्रजाजन
जब तक तुममें यह तेवर है,
तब तक मुझको विश्वास रहेगा
रामराज्य निश्चय आएगा।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 75)

वर्मा जी कृत 'चित्रकूट–चरित' के सभी पात्र राम और भरत में भेद नहीं मानते हैं। दोनों की अभेदता सबको मान्य है। साथ ही भरत से अधिक भरत–भाव को वे महत्त्व देते हैं। भरत–भाव गूढ़ हैं। उन्हें समझना उतना सरल नहीं है। भरत को तो निषादराज ने 'भाव की निश्छल प्रतिमा' स्वीकार किया है।

वाल्मीकि के अनुसार भरत गहन भाव के साधक हैं। वे राम के सेवा–व्रती हैं। उनकी भाव–साधना उस सीमा तक पहुँच गयी है कि याज्ञवल्क्य को वे पराशक्ति के आराधक प्रतीत होते हैं:

भरत नहीं भरत अब केवल

भरत राममय हुए जा रहे,

भरत पराशक्ति के आराधक।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 84)

भरत के मन में अनेक प्रकार के प्रश्न उठते हैं और फिर शान्त हो जाते हैं। वे राम के इस दशा के प्रति विशेष चिन्ति हैं। वशिष्ठ के अनुसार श्रीराम तो भरत के स्नेह के वश में हैं। अतः भरत को ही निर्णय लेना है। भरत का लिया गया निर्णय राम के लिए पथ सृजन करेगा अवध का राज्य भरत को किसी भी प्रकार स्वीकार्य नहीं है। वे उसे राम का राज्य मानते हैं। इसलिए वे राम को अयोध्या वापस लौटाने के लिए चित्रकूट आये हैं। वे अपनी समस्या जनक के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। जनक उनके पुछते हैं कि यदि राम कृपा कर उन्हें यह राज्य दे दें तो क्या वह उसे अमान्य कर देंगे। भरत का उत्तर है कि श्रीराम भी विचित्र हैं। मेरे जैसे अपराधी से ही कहतें हैं बस तुम्हीं न्याय दो, तुम्ही स्वयं निर्णय लो। लेकिन मेरे पास कोई अपना स्वत्त्व तो है नहीं। मेरी साख कहाँ है, मैं कैसे न्याय कर सकता हूँ ? मेरी माँ ने मेरा स्वत्त्व छीनकर मुझे कलंक ही दिया हैं। तब जनक उन्हें भक्ति के माध्यम से पूछते हैं कि 'यदि भक्त के भाव से इष्ट को कष्ट होने लगे तो भक्त का क्या कर्त्तव्य होगा?' इस पर भरत कहते हैं कि राज नियम और भक्ति दोनों को साथ लेकर कैसे चला जा सकता है। राजशास्त्र में भक्ति को कैसे डाला जा सकता है। जो आत्म प्रवंचित है उसके दण्ड का स्वरूप क्या होगा? भक्ति जगत का व्यक्तिगत भाव है। किन्तु राज्य तो धर्म, लोकभाव, सबसे उपर है। इस पर निषादराज की मान्यता भरत स्वीकार करते हैं कि 'यदि सेवा प्रभु को कष्टकारी हो तो मैं सेवा को ही छोड़ना चाहूँगा। इससे भरत को नई राह का संकेत मिलता है। उसी छोर को पकड़कर वशिष्ठ भरत के समक्ष प्रश्न करते हैं कि 'जब तू ने अवध राज्य को राम की सम्पत्ति स्वीकार की है तो क्या इसकी सुरक्षा और व्यवस्था करना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है?' भरत का उत्तर है कि यह तो मैं कह रहा हूँ पर अभी राम ने अवध राज्य को अपना माना ही कहाँ है? कष्ट तो इसी का है कि वे मुझे ही अवधराज मानते हैं। पहले राम इसे स्वीकार तो करें। भरत के अनुसार राम दुःख सहना चाहते हैं, चौदह वर्षों तक वन में रहना चाहते हैं। राम भरत को राज देना चाहते हैं, राम ऐसा कुछ नहीं होने देना चाहते जिससे कैकेयी को दुःख हो। माण्डवी उन्हें र्स्व समर्पण की सीख देती है। वह तपस्या की साक्षी है। भरत माण्डवी को अपनी तपस्या का सम्बल स्वीकार करते हैं। भरत की साधना बार–बार अपने को पाने और खोने में है। उनका अपराध भाव हृदय से मिटता नहीं है । जब शत्रुघ्न राम और भरत में रंच मात्र भी भेद नहीं मानते तो भरत बहुत से भेदों की गणना करा देते हैं:

राम राम है, भरत भरत है
राम कौशल्या माता के है,
मेरी माता कुटिल कैकेयी,
बहुत भेद है भरत राम में
x x x
त्यागा आज लषन ने मुझको,
त्यागेंगे कल प्रभु भी मुझको
त्यागा मुझे धर्म ने जब से
त्यागेंगे जड़ चेतन मुझको
x x x
जो देखेगी मुझे भोगता
अवधराज के सिंहासन को।

(चित्रकूट चरित पृ.सं. 75)

यहाँ भरत का पश्चाताप भाव, भावी जीवन का समस्त मानचित्र लेकर प्रकट हुआ है। वे किस प्रकार जीवन भर लांछित रहेंगे और पूरे अवध में उनकी माता और मंथरा तीनों का ही निवास होगा। सारी अवध नगरी प्रेत नगरी के समान दिखाई पड़ेगी। सरयू की धारा ज्वालामुखी बनेगी, कनक भवन के कंगूरों पर आग की ध्वजा लहरायेगी। एक और नरक राज्य का सृजन होगा। हमारे राम और लक्ष्मण ही हमारे शत्रु बनेंगे, अच्छा है कि जो अवधवासी चित्रकूट में अभी डेरा डाले हैं वे यहीं रह जाएँ। इस प्रकार अनेक भावी भावों से मण्डित भरत के दुखी हृदय का यहाँ चित्रण किया गया है। यहाँ सभी भरत का मुँह देख रहे हैं कि उनका क्या निर्णय होगा। सभी छः शिविरों में केवल एक प्रश्न है और जिसके अनेक समाधान प्रस्तुत किए जा रहे हैं। भरत को ग्लानि इतनी ही है जिसे वे महामुनि वाल्मीकि से प्रकट करते हैं–

ग्लानि मुझे है इसी बात की
मेरे कारण हुए राम बनवासी
सीता भोग रहीं यातना
लषन सह रहे कठिन क्लेश हैं।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 73)

इस प्रकार भरत आर्षजनों, मुनियों तथा गिरिजनों की बातों को सुनते हुए अपनी आत्मग्लानि की पीड़ा को कभी कम नहीं कर पाते। गोस्वामी तुलसीदास जी ने जितनी गहराई के साथ भरत के चरित्र में पश्चाताप को विषय बनाया है, ठीक उसी प्रकार वर्मा जी ने भी उनके पछतावे को अनेक रूपों में व्यक्त किया है। उसमें एक रूप इस प्रकार का भी है :–

मैं शासक के योग्य नहीं हूँ
माँ ने पाली एक वंचना
जिसका विशमडंक मैं सहता,
जो जो मिली यातना तुमको
उसका दायित्त्व हमारा
क्योंकि सारे अनर्थ का कारण।
मैं हूँ।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 74)

राम भरत को उपदेश देते हैं कि व्यक्ति राम से राम भाव बड़ा है। साथ ही यह राज्य न राम का है, न भरत का । राज्य तो सदा प्रजा का होता है। प्रजा राममय है। रामभाव के विस्तार को पहचानने की आवश्यकता है। इसीलिए आवश्यकता राम की नहीं, राममय हो जाने की है। परिणाम स्वरूप भरत को नया आलोक मिलता है और वे राम की पादुका प्राप्त कर अयोध्या लौटने के लिए तैयार हो जाते हैं। भरत के चरित्र की सार्थकता और सारी विशेषताऐं उपरिवर्णित तथ्यों से स्पष्ट हो जाती है कि भरत एक आदर्श भाई, भक्त तथा प्रजा पालक है।

जनक–

आलोच्य कृति में जनक का चरित्रांकन अपेक्षाकृत कम शब्दों में हुआ है। इससे उनका जो रूप प्रत्यक्ष देखने को मिलता है वह परम्परा के अनुरूप ही है! जनक के तत्त्वज्ञानी व्यक्तिव के सम्बन्ध में सर्वप्रथम निषादराज के कथन द्रष्टव्य है–

वे ज्ञानी है परम तपस्वी
वे योगी है
ज्ञात हैं
आत्मशक्ति के
योग भोग में भोग योग में
रहते सदा एक रस होकर

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 76)

चित्रकूट में आकर जनक ने सबको राम और भरत के भाव में विभोर पाया। भक्ति भाव ने उन्हें इतना अधिक प्रभावित किया कि वेद त्तव के मर्म–ज्ञानी जनक को अपना सारा ज्ञान व्यर्थ–सा प्रतीत होता है। जनक की इस दशा का वर्णन कवि ने निम्न शब्दों में किया है–

स्थित गई परम प्रज्ञा की भाव भक्ति में झूल गई
करूण करूणालय छाया में गति मति सब कुछ भूल गई

किन्तु न कोई समझ सका है और नहीं समझेगा भी

x x x x x x

यहाँ भरत का भाव अगम था, सागर था गहन गंभीरमना

इसमें ज्ञान–पोत का चलना बड़ा कठिन था, गहन घना।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 81)

उनके मन को यही प्रश्न मथ रहा है कि ज्ञान और भक्ति में सार्थक कौन है? उनके इस प्रश्न का समाधान याज्ञवल्क्य करते हैं:

दोनों ही एक सत्य की

दो छायाऐं,

एक पवित्र भाव यज्ञ की

दोनों बनती हैं समिधाऐ।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 85)

तत्त्वज्ञानी जनक में मानव सुलभ पितृत्त्व भी है। अपनी पुत्री सीता को तपस्विनी के वेश में देखकर उनका गला भर आता है। उनकी धैर्य हीनता पर स्वयं जानकी को भी आश्चर्य होता है और वह आश्चर्य में पड़कर पूछ बैठती है कि पिता जी आप भी धीरज खो रहे हैं? इस पर जनक जी सीता को आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि इस तरूणाई में तुम्हारी तपस्या देखकर तुम्हारा पिता कहलाना मेरे लिए धन्य हो गया। वे आगे कहते हैं–

तुझे देखकर लगता है अब

मोक्ष मिल गया सहसा मुझको।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 87)

इस संसार में जनक की प्रसिद्धि ज्ञानी और तत्त्व–चिन्तक के रूप में रही है। इस काव्य में भी उनका यही रूप उभर कर प्रकट हुआ है। राजनीति और शासक के सम्बन्ध में उनके विचार उसी के पोषक हैं। भरत को वे स्पष्ट रूप में कहते हैं–

प्रजा राम, भरत क्या जाने

उसे चाहिए अच्छा शासक।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 89)

और उनके अनुसार अच्छा शासक वही हो सकता है जो तपस्वी हो। उदाहरणार्थ निम्नलिख्ति पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

जो बनने का अधिकारी

केवल वह है

जो हो स्वयम् तपस्वी।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 93)

भरत के शंकाकुल मन को सही दिशा देने में भी उनका चिन्तक रूप ही प्रत्यक्ष हुआ है। भरत राज्य का शासन स्वीकार नहीं करने पर डटे हैं। इस पर राजा जनक ने भरत से सीधा प्रश्न किया है–

क. यदि राम कृपा रूप में यह राज्य तुम्हें दे, तो क्या तुम अस्वीकार करोगे?

ख. यदि राम तुम्हें शासन करने का आदेश दे, तो क्या तुम विरोध करोगे?

ये दोनों प्रश्न भरत को नये ढंग से सोचने को बाध्य करते हैं।भरत को कोई उत्तर नहीं सूझता और वहाँ उपस्थित जन को भी इससे आशा बंधती है कि अब योग्य मार्ग शीघ्र ही मिल सकेगा। राजा जनक ने एक और प्रश्न किया कि यदि भक्त के भक्ति भाव से इष्ट को कष्ट हो, तो भक्त का कर्त्तव्य क्या होगा? इस पर निषादराज स्पष्ट कहते है–

यदि सेवा से कष्ट इष्ट को
तो सेवा भी सहज त्याज्य है।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 92)

यही तत्त्व–चिन्तन भरत को अपनी हठधर्मिता त्यागने के लिए विवश करता है। जनक ने भरत को आगे समझाया कि:

निमित्त मात्र बनकर रहना
जो भी आवे उसको सहना भक्ति भाव है।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 93)

उनके अनुसार भक्ति का यही ज्ञान है। इस ज्ञान के अभाव में भक्ति व्यर्थ है। ज्ञान रहित भक्ति किसी भी प्रकार विवेकवान नहीं होती। जनक के इस तत्त्व निर्देश से ही भरत को नया मार्ग मिलता है और राम की पादुका प्राप्त कर वे अयोध्या लौटते हैं।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि जनक पारम्परिक रूप में ज्ञानी और तत्त्व चिन्तक हैं। साथ ही उन्हें पिता का कोमल हृदय भी प्राप्त है। भक्ति भाव की प्रबलता में उनका ज्ञान टिक नहीं पाता, ऐसा वे स्वयं स्वीकार करते हैं।

3.ड.I. गौण पुरूष पात्र–

उपरि विवेचित प्रमुख चरित्रों के अतिरिक्त 'चित्रकूट संज्ञक' काव्यों में कई गौण चरित्र भी हैं जिनसे कथा को गति मिली है। इस दृष्टि से आदिवासी युवाजनों के अतिरिक्त ऋषियों में याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, जाबालि, अत्रि, वामदेव और कौशिक है ।

वाल्मीकि–

लक्ष्मीकान्त वर्मा कृत 'चित्रकूट–चरित' में अंकित ऋषि–चरित्रों में वाल्मीकि के चरित्रांकन पर ही कवि की दृष्टि अधिक टिकी है। उनके चरित्रांकन में कवि ने कल्पना से सर्वाधिक काम लिया है। चित्रकूट के विभिन्न शिविरों में राम और भरत की समस्या को लेकर चलने वाले सभी विचारों के वाल्मीकि ही संयोजक और उचित समाधान तक उन्हें पहुँचाने में मार्ग–दर्शक बने हैं। कथाभूमि पर उनका आगमन सर्वप्रथम आदिवासी शिविर में होता है। वे निषादराज से युद्ध करने को प्रस्तुत हैं। तभी वाल्मीकि का वहाँ आगमन होता है और वे मध्यम–मार्ग निकालते है। कवि ने उनके भव्य रूप का वर्णन इस प्रकार किया है–

गैरिक वसना वृद्ध ऋषि की काया उभरी तमस चीरकर
श्वेत वेश थे, दिव्य रूप था भृकुटी तनी थी ताव वहन कर
सहसा आगे बढ़ ऋष्य वर रूद्राक्ष सम्भाले अपना सुन्दर
लगता जैसे विराट वट खड़ा हो गया सम्बल बनकर।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 25)

युवाजनों को समझाते हुए वे स्वीकार करते हैं कि मैंने रामकथा को केवल राम के माध्यम से ही देखा था। इसीलिए यह दुर्घटना मेरी आँखों से ओझल हो गई थी। वह यह भी बताते हैं कि पिता ने राम का निर्वासन नहीं किया था, बल्कि राम ने ही निर्वासन लिया है। वे राम–नीति को उनके समक्ष स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि स्वार्थ रहित न्याय ही राम नीति है। विगत पन्द्रह दिनों के कैकेयी शासन में केकयी सैनिक द्वारा प्रजा पर जो अत्याचार हुआ उसे वे रामकथा के द्रष्टा होने के बावजूद नहीं देख सके थे। किन्तु अब भरत की तपस्या एक नयी आशा लेकर आ रही है। उनके अनुसार अवध राज्य पर भरत शासित रामराज्य ही होगा। इसका कारण है कि–

भरत रत्न है राम नेह के
भरत यत्न है पूर्ण काम के
देखोगे यदि भरत भाव को
राम भरतमय तुम्हें दिखेंगे
देखोगे यदि राम भाव को
भरत राममय तुम्हें दिखेंगे।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 31)

वाल्मीकि की बात सुनकर आदिवासी युवक आश्वस्त तो होते हैं, परन्तु अन्तिम निर्णय भरत से ही सुनना चाहते हैं। इसीलिए वे वाल्मीकि के नेतृत्त्व में भरत से मिलने के लिए चल पड़ते हैं। भरत के पास पहुँकर युवजन व्यंग्यपूर्वक भरत को नया प्रशासक कहते हैं। उस पर वाल्मीकि उन्हें किंचित फटकारते हुए कहते हैं–

मत यह व्यंग वचन तुम बोलो

भाषा पर संयम सीखो।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 72)

साथ ही वे कहते हैं कि भरत राजा नहीं है, सेवक भर हैं। उनका कार्य सेवा करना है। पुनः वाल्मीकि भरत से युवजनों की बात कहते हैं और भरत सब कार्यों का दोष कैकेयी को देते हैं, पर वाल्मीकि की दृष्टि में कैकेयी दोषी नहीं है। उनका कथन है–

मैं तो नहीं मानता उसको भी दोषी

जिसके कारण दुर्घटना जन्मी। (चित्रकूट चरित, पृ.सं. 73)

जनक शिविर में राम भरत की समस्या पर जो चर्चा होती है, उसके सार रूप में वाल्मीकि भरत से आग्रह करते हैं कि अवधराज की सेवा को वे परमार्थ भाव से स्वीकार कर अपने नवीन पुरूषार्थ का परिचय दें। किन्तु भरत उसका निर्णय राम पर छोड़ते हैं। वाल्मीकि को लगता है अब राह मिल गयी है। इस राह को अब केवल प्रशस्त करना है।[9] वे सब वहाँ से राम के पास चले जाते हैं।

राम शिविर में जब सारे कृत्यों की दोषी मंथरा अपने को मानती है तो वाल्मीकि उसके लांछन का दायित्त्व स्वयं लेने को तपर होते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि मंथरा को जो लांछन सहना पड़ा है उसका एकमात्र कारण मैं ही हूँ। मुझे रामकथा को गति देने के लिए एक पात्र की आवश्यकता थी अवध में सभी राममय हो रहे थे। केवल मंथरा ही अवध की नहीं थी और वह राममय नहीं, कैकेयीमय थी। अतः मैंने उसे ही कथा को गति देने के लिए चुन लिया।[10] इसलिए जो कुछ भी हुआ उसमें मंथरा का कोई दोष नहीं है।

उपर के विवेचन से स्पष्ट है कि वाल्मीकि का चरित्र आलोच्य कृति में जितना परम्परा के अनुकूल है, उतना ही उसमें अपने उद्येश्य की सिद्धि के लिए कवि ने कल्पना से भी काम लिया है। वे रामकथा के द्रष्टा हैं। उन्होंने रामकथा को राम के दिव्यभाव में देखा है। इसलिए दशरथ –मृत्यु के पश्चात पन्द्रह दिनों तक कैकेयी के शासन काल में प्रजा पर जो अत्याचार हुए उसकी ओर उनकी दृष्टि नहीं गयी। मंथरा भी दोषी नहीं। उसके लांछन का कारण स्वयं वाल्मीकि है। कथा को गति प्रदान करने के लिए ही उन्होंने खलनायिका के रूप में मंथरा तथा कैकेयी का चयन किया था। उनके अनुसार राम और भरत में किसी प्रकार का भेद नहीं है। वे दोनों को अभेद रूप में ही देखते हैं। वे 'चित्रकूट चरित' की कथा के संयोजक हैं। इसमें उनके विचारक रूप को भी कवि ने उभारा है। इस प्रकार वे ऋषि, रामकथा के स्रष्टा और विचारक के रूप में चित्रित हुए हैं।

वशिष्ठ–

रघुकुल के गुरू वशिष्ठ के सम्बन्ध में सामान्य प्रजा एवं आदिवासी जन में एक मिथ्या धारणा घर कर गयी है कि वे कैकेयी के षडयंत्र में भागीदार हैं। दशरथकी मृत्यु के उपरांत पन्द्रह दिनों के कैकेयी शासन में जो भी राज आज्ञाएँ प्रसारित हुईं, उन सब पर गुरू वशिष्ठ के हस्ताक्षर होने से ही यह मिथ्या

धारणा बनी है। भरत को राम–विरोधी समझनेवाला निषादराज वशिष्ठ से मिलने के पश्चात ही भरत का भक्त बना, इसलिए भी आदिवासीजन वशिष्ठ से कुपित हैं। उसे वे वशिष्ठ की कूटनीति का ही एक रूप मानते हैं–

यह वशिष्ठ की कूटनीति है
गले लगकर फिर बध करना राजनीति है।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 24)

आलोच्य कृति में वशिष्ठ का यह चित्रण कवि की कल्पना की उपज है। यहाँ उनके पारम्परिक रूप का अभाव है। आलोच्य कृति में वशिष्ठ की प्रथम उपस्थिति भरत–शिविर में दिखायी पड़ती है। वहाँ वे भरत को समझा रहे हैं। राम और भरत के द्वन्द्व के बारे में उनकी उलझनों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि निर्णय तुम्हें ही लेना है, पथ तुम्हें ही चुनना है तुम जो निर्णय लोगे, जो पथ चुनोगे, बस वही राम को मान्य होगा। क्योंकि राम का न्याय सदा भरत के पक्ष में होगा।[11] यहाँ वशिष्ठ का चरित्र सच्चे गुरू और मार्गदर्शक के रूप में अंकित हुआ है। पुनः उनकी उपस्थिति ऋषि–शिविर में दिखायी पड़ती है। राम–भरत के विवाद की समस्या को लेकर ही सभी ऋषि उलझ रहे हैं। विचार–विमर्श को सही समाधान पर पहुँच ने के लिए वे सभी ऋषियों से पूछते हैं–

त्याग भरत का शास्त्र युक्त है? या है त्याग राम का सुन्दर?
कौन भाव जगत का ज्ञाता? कौन भाव लोक हित होगा?

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 97)

इस पर ऋषियों में गहरा विचार–विमर्श चल पड़ता है। उस विमर्श से ही उन्हें दृष्टि मिलती है। वे स्वीकार करते हैं कि–

दृष्टि मिल गयी कुतक्र से
दो स्वधर्म की संगम स्थलि चित्रकूट है
दो स्वधर्म में जो स्वधर्म उत्सर्गित होगा।
वह ही होगा परमार्थ सत्य भी।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 104)

जनक के द्वारा समझाए जाने पर भरत राज्य की सेवा तो करने को प्रस्तुत है, पर वे सत्ता से जुड़ना नहीं चाहते। उक्त अवसर पर वशिष्ठ की निम्नांकित उक्ति उनके विचारक रूप को प्रत्यक्ष करती है–

शंका मत करो वीर !
व्यक्ति सूत्रधार ही होगा,
किन्तु संस्थान ये सारे
उनके चारों ओर बनेंगे,

सत्ता इनसे मर्यादित होगी।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 109)

इसी प्रकार श्रीराम शिविर में कैकेयी के कर्म निष्ठा की प्रशंसा करते हुए वे इसे 'कर्मभाव की गरिमा' घोषित करते हैं–

धन्य–धन्य भरत मातु तुम
तुमको समझ पाना है दुस्तर,
कर्मनिष्ठ प्रतिमा तुम हो
कर्मभाव की गरिमा तुम हो।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 128)

इस विवेचन से स्पष्ट है कि वशिष्ठ का चित्रण 'चित्रकूट–चरित' में कुलगुरू के रूप में ही हुआ है। वे कठिन परिस्थितियों में भी योग्य दिशा–निर्देशन करने में पूर्णतः समर्थ हैं। आदिवासियों में उनके सम्बन्ध में कतिपय मिथ्या धारणाएँ बन गयी थी, जो अन्त में पूर्णतः मिथ्या सिद्ध हो जाती है।

निषादराज–

आदिवासियों का अधिपति निषादराज राम भक्त हैं। दशरथ की मृत्यु के पश्चात पन्द्रह दिनों के आपातकालीन कैकेयी–शासन में प्रजा का जो उत्पीड़न हुआ उसमें उन्हें भी कष्ट मिला। परिणामतः वह कैकेयी, भरत आदि को राम विरोधी मान बैठे। यही छवि निषादराज की प्रजा में भी भरत के प्रति फैली एवं पुरवासियों सहित भरत को चित्रकूट जाते समय उन्होंने अपनी प्रजा को भरत से युद्ध करने के लिए प्रस्तुत होने को कहा। किन्तु भरत और वशिष्ठ से मिलने के उपरान्त उसकी भ्रान्ति दूर हो गयी और वह राम भक्त भरत का भक्त बन गया। भरत के सम्बन्ध में उनकी पूर्व धारणा समाप्त हो गयी है। उन्होंने अपनी प्रजा को यह समझाने की चेष्टा की पर आदिवासी युवजन के मन को उनकी यह बात ठीक नहीं लगती। उन्हें भरत नहीं राम चाहिए। निषादराज उन्हें समझाने की चेष्टा करते हैं कि:–

किन्तु आज मैं भरत भक्त हूँ।
राम भरत के बीच राज्य यह
x x x
नया चरण मानव स्वराज्य का

यों ही छूटा रह जायेगा।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 23)

युवजन को यह बात स्वीकार नहीं है। वे भरत की निन्दा करते हैं। निषादराज उन्हें यह समझाने की कोशिश करते हैं कि मैं भरत की निन्दा सहन नहीं कर सकता, उनमें कही भी राजभोग की लिप्सा नहीं

है। तुम भरत की व्यथा को समझो।[12] इसके साथ ही वह स्पष्ट करते हैं कि पन्द्रह दिनों के आपातकाल में जो भी यातनाएँ मिली हैं, उसके लिए भरत उत्तरदायी नहीं है। वे उस समय राजा नहीं थे। युवजन नकी एक नहीं सुनतें। युवजन और निषादराज में उसी बात को लेकर युद्ध की स्थिति हो जाती हैं तभी वाल्मीकि आकर उस स्थिति से उबारते हैं।

निषादराज में परिस्थिति को ठीक से समझने एवं उसके अनुरूप योग्य निर्णय लेने की क्षमता है। शासक होने के नाते उन्हें सभी प्रकार की नीतियों से काम लेना पड़ता है। अन्य साधनों के विफल होने पर दण्ड का सहारा लेने से ही वे नहीं चूकते। तभी वह भरत के प्रति मिथ्या धारणा का प्रतिकार करने के लिए आदिवासी युवजन से युद्ध करने को भी प्रस्तुत हो जाते हैं। वह वीर हैं। वह राम के ही नहीं अपितु भरत के भी भक्त हैं।

वस्तुतः उन्हें राम और भरत में मूलतः अभेद ही प्रतीत होता हैं ऋषियों एवं जनक द्वारा समझाये जाने के समय वह भी उपस्थित है। भक्त के कर्त्तव्य के प्रश्न पर उसका उत्तर है कि यदि भक्त की सेवा से इष्ट को कष्ट हो तो सेवा छोड़ देनी चाहिए।[13] यह चिन्तन उन्हें महान विचारकों की पंक्ति में ला बिठाता है। उन्हें विश्वास है कि भरत सा तपस्वी राजा ही अवध को चाहिए। इसीलिए वह भरत से कहते हैं कि–

उठो भरत
मैं वृद्ध और यह युवजन
वरन कर रहे तुमको इस क्षण
एक तपस्वी राजा बन
कर सकता है राज्य अवध का।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 93)

इस विवचेन से स्पष्ट है निषादराज में एक योग्य और विचारवान राजा के सभी गुण तो हैं ही, वह सर्वोपरि राम और भरत का अनन्य भक्त भी हैं।

आदिवासी युवाजन–

तरूण पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में अंकित है। वे अन्याय प्रतिकार करने के लिए कटिबद्ध हैं। उन्हें पहले यह बताया गया था कि भरत, कैकेयी आदि राम के विरोधी हैं। इसीलिए उनहोंने भरत का मार्ग रोकना चाहा था। यद्यपि निषादराज ने उन्हें वैसा करने से रोक लिया, पर वे आसानी से यह बात मानने को तैयार नहीं है कि भरत रामभक्त हैं। उनके आक्रोश और तेवर की प्रशंसा स्वयं भरत भी करते हैं। पुरानी पीढ़ी के ज्ञानवृद्ध भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि कठिन परिस्थितियों से उत्पन्न हुइ समस्या का समाधान नयी पीढ़ी को ही करना पड़ता है।

ऋषि याज्ञवल्क्य–

ऋषि याज्ञवल्क्य का चरित्र ज्ञानी, चिन्तक और जनक के मार्गदर्शक के रूप में प्रत्यक्ष हुआ है। जनक के सामने समस्या आ खड़ी हुई है। वे समझ नहीं पाते कि ज्ञान और भक्ति में महत्त्वपूर्ण कौन सा है। याज्ञवल्क्य स्पष्ट करते हैं कि रामकथा की सार्थकता इसी में है कि ज्ञान को भी भक्ति की धारा में बहा ले जाय। उनकी मान्यता है:–

बिना देह के भक्ति न मिलती। बिना भाव के भजन न होता
बिना प्रेम के श्रेय नहीं है। बिना भेद अभेद न होता
रामकथा का मर्मबिन्दु यह। वाल्मीकि का सूक्ष्म भाव था
रचा बनाया रूप दिया पर। वह अमूर्त का मूर्त भाव था।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 85)

उनके अनुसार ज्ञान और भक्ति, दोनों एक ही सत्य की दो धाराएँ हैं।

जाबालि–

जाबालि चार्वाक मत के अनुयायी हैं। वे आत्मवाद में मन को भटकाने की अपेक्षा भोग को ही यथार्थ दृष्टि मानते हैं। उनके अनुसार राम का निर्वासन वृद्ध पिता की काम–वासना से प्रेरित आज्ञा थी। जिसका उल्लंघन पाप नहीं है। पिता के आदेश की अवज्ञा करना ही राम के लिए उचित है। भक्तिभाव की बातें करना राजधर्म की निन्दा है। उनके अनुसार भी वर्तमान को मुक्त भोगना तप होता है।[20] यदि पिता के वचन का पालन करना आवश्यक हो तो राम भरत को राज्य दे दें, पर अपने लिए उन्हें भोग की सारी सामग्री माँग लेनी चाहिए–

कहो राम से राज्य भरत को दे दें।
माँ गे स ऐश्वर्य, भोग जीवन का
पीवे घृत, जीवे परोपजीवी बन।
कष्ट न दे तन को, मन को।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 108)

उपर्युक्त विवचेन से स्पष्ट होता है कि वे भोगवादी दर्शन का प्रतिनिधित्व करते हैं।

अत्रि, भरद्वाज, वामदेव और कौशिक चारों ऋषि हैं। इनमें ऋषियों वाले सारे गुण भी विद्यमान हैं। इन सबको राम और भरत में कोई भेद नहीं लगता। इसी भाव की पुष्टि वे निम्न पंक्तियों में कर रहे हैं:–

वामदेव यदि निष्काम भाव हो मन में
भरत ग्रहण करें स्वभाव को
राम ग्रहण करें स्वधर्म को

दोनों ही पारमार्थिक होंगे

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 104)

अत्रि भरत राम के रूप धाम के मधुर भाव हैं

रूपायित यदि कर ले कोई

रूपधाम को तो जन्मेगा मधुर भाव ही

अनुशासित भरत भाव ही

हमें सत्य तक ले जायेगा।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 105)

कौशिक ऋषि का चित्र किंचित क्रोधी रूप में उभरा हैं जो परम्परा के अनुरूप हैं। वे जाबालि को क्रोध में फटकार लगाते हैं कि आरे नास्तिक! तुमको किसने यहाँ बुलाया है?[21] कौशिक के अनुसार राम भरत की समस्या भाव की नहीं, विवेक की है। इसलिए वे उसका निर्णय राम और भरत पर ही छोड़ने के पक्ष में हैं।

भरद्वाज ऋषि विचारक रूप में अधिक स्पष्ट हैं। उनके अनुसार राष्ट्र भाव आस्तिक दर्शन है। यह नयी आध्यात्म शक्ति ही राजधर्म का केन्द्र बिन्दु है। इसी बिन्दु से भक्ति भावना भी जागृत होती है। इसीलिए वे राजधर्म को देशभक्ति से अलग कर देखने के पक्ष में नहीं है, यथाः–

रामधर्म क्या बिना देश भक्ति के हैं संभव?

देशभक्त क्या बिना राष्ट्रभाव के संभव?

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 101)

3.ड.II. प्रमुख्य स्त्री पात्र–

कैकेयी–

कैकेयी को कवि ने कर्म की कठिन ताप–सी जटिल कहा है। अवधराज्य की उस स्थिति के लिए कैकेयी ही उत्तरदायी है। उसकी इच्छा को ही आदेश मानकर रामभद्र ने निर्वासन स्वीकार किया है। सुनयना ने कैकेयी की उस मनोदशा का वर्णन अपने पति जनक से इस प्रकार किया है–

बहुत व्यथित है मझली रानी

फिर भी दृढ़ है

चट्टानी आभा से मंडित।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 82)

कैकेयी को अपने किए का तनिक भी पश्चाताप नहीं है। वह अपने को सदा निश्छल ही मानती हैं। सुनयना को कैकेयी ने बताया है कि–

मैंने जो भी किया रामहित
भरत मात्र माध्यम है उसका
कठिन कर्म की मैं प्रतिपादक।
मैंक्या जानूँ ममता करूणा,
कठिन कर्म की विशमआग में
जलकर ही मुक्ति मिलेगी मुझको।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 82)

मातृ–शिविर में सभी उपस्थित महिलाओं के समक्ष अपने कर्म की सार्थकता के लिए वह जो तक्र प्रस्तुत करती हैं उसमें मात्र रघुकुल एवं राम का हित होने की बातें हैं। उनके अनुसार कौशल्या के वात्सल्य एवं राजा के मोह के कारण रघुकुल को ग्रहण लग रहा था। वह राम के पराक्रम को भी अंधकार से आच्छादित कर रहा था। उससे रघुकुल का कर्म नष्ट हो रहा था, यश क्षीण हो रहा था, भक्ति भाव की रस धारा में कठिन कर्म छूट रहा था। अतः उसने पुत्र राम को ग्रहण कर पुरूषार्थ प्रदान करने के लिए ही यह कलंक लिया है। उसे भले ही सारा संसार दोष दे, लोग उसे कलंकित कहें, उसकी चिन्ता नहीं है। इस कलंक को वह उज्ज्वल थाती के रूप में स्वीकार करती हैं। वह मानती है कि सरिता का उद्‌गम कठोर पाषाणों से ही होता है। आज भरत के जिस भक्ति भाव की लोग प्रशंसा कर रहे हैं, उसे किसने प्रसव किया है। वह लोगों से पूछती हैं कि यदि मेरी छाती कठोर नहीं हुई होती तो भक्ति की धारा कहाँ टिकती।[14] यदि भरत नहीं होता तो क्या राम को भरत–भाव की यह धारा मिल पाती। केवल मेरे कठोर पक्ष को नहीं, बल्कि उससे प्रवाहित होने वाली भक्तिभाव की मधुर धारा को भी देखना चाहिए। कैकेयी के तक्र से यह स्पष्ट है कि अन्य सभी उसे मात्र दोषी समझ रहे हैं। तभी वहाँ उपस्थित लोगों की ओर से सुनयना स्पष्ट करती हैं कि–

कौन दोष देता महारानी?
आप धवल स्वच्छ पावन हैं।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 41)

राम और भरत में सबको अभेद स्वीकार है। कैकेयी भी उसे स्वीकारती है, पर एक सीमा तक ही। इसीलिए वे दोनों में भेद करने की बात को तर्कानुकूल बनाकर उपस्थित करती हैं। उनके अनुसार कौशल्या ज्ञानमना होने के कारण भेद नहीं देख पाती हैं। वह मानती है कि–

जीवन जीना कटु यथार्थ है
बिना कर्म पुरूषार्थ नहीं है
पुरूषार्थ बिना जीवन निष्फल है

निष्फलता परमार्थ नहीं है।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 43)

इसीलिए उन्होंने राम और भरत में भेद किया है। वह जानती है कि राम सामान्य धर्म पालक हैं, वे सहज चेतन मानव के प्रतिनिधि हैं और भरत विशेष धर्म के साधक हैं।[15] भक्ति करना सबके लिए सुलभ नहीं है। उसकी गहराई में बैठना सबके लिए संभव नहीं है इसीलिए उसे यह कठोर निर्णय लेना पड़ा है। उन्हीं के शब्दों में:–

इसीलिए राम को मैंने
भेजा वन में करके घर्षण
कहा भरत से करो राज्य तुम
किन्तु राम का कर आराधना।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 44)

कारण यह है कि भक्ति भाव से युक्त राजा की सबका रक्षक बन सकता है, यदि उसमें भक्ति भाव नहीं है तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि वह भक्षक होगा। कैकेयी के राजा सम्बन्धी इस मान्यता का समर्थन जनक, वाल्मीकि, निषादराज आदि की उक्तियों से भी होती है। इससे कैकेयी के विचारक–रूप का प्रत्यक्षीकरण होता है। ऐसी बात नहीं कि कैकेयी के अनुसार राम में राजा होने के गुण नहीं है, बल्कि वह सोचती है कि राम तो 'परात्पर ईश्वर' हैं। वे तो वपुधारी होकर लीला कर रहे हैं। उनकी राजा से क्या तुलना–

जो है परम परात्पर ईश्वर
उसकी राजा से तुलना क्या?
वह तो है लीला वपुधारी
जो चाहे बन जाये
राजा, यती, भिखारी, वनचर!
मैंने सोचा वीर भरत सा
भक्त–प्रशासक अच्छा होगा
मिले विश्व को विश्व प्रशासक
भव विरक्त जो।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 44)

यों तो वे मानती हैं कि सिंहासन पर राम रहें या भरत, इसमें भेद नहीं है। मूल बात है रामराज्य की और रामराज्य तभी संभव है जब प्रशासक भव–विरक्त हो। उसकी दृष्टि में रामराज्य लाने में सभी पुत्र समर्थ हैं। इस दृष्टि से निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य है–

मिले विश्व को विश्व प्रशासक

भव विरक्त जो

मिले सत्त वेराग्य लषण सा

एक निष्ठ–सा आत्म समर्पित

x x x

सिंहासन पर राम रहे या भरत

भेद कया?

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 44–45)

कैकेयी मानती हैं कि गति ही जीवन है। असध की प्रजावर्ग स्थिर और जड़ हो रही थी। चित्रकूट में आकर उन्हें गति मिली हैं। लोग इससे चिंतित हैं कि कहीं कुछ गड़बड़ न हो जाय जिससे राम या भरत का स्वधर्म खण्डित हो, पर कैकेयी को वैसी आशंका नहीं है। वह सबको स्पष्ट तौर पर बताती हैः–

राम गंभीरमना हैं/ उनका निश्चय बदल जाय

यह कठिन साध्य है/ राम काम हित जन्म भरत का

कभी न बाधा भरत बनेंगे/ राम काम में।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 47)

वह जानती है कि राम और भरत में भेद नहीं है। उनके अनुसार राम भरत की भाव सृष्टि हैं और भरत राम की यथार्थदृष्टि है। इसीलिए कैकेयी को यह सब करना पड़ा है। वह कहती हैं मैंने कलंक का वरण किया है मेरे मन में जो प्रपंच है, वह सब कुछ राम को समर्पित है।[16]

इससे स्पष्ट है कि कैकेयी का हृदय सब प्रकार से शुद्ध है। अपने पुत्र राम के पुरूषार्थ और पराक्रमी भाव को प्रत्यक्ष करने के लिए ही उसने व्यक्तिव–विकास में बाधक ममत्त्व को त्याग कर कठिन कर्त्तव्य का चयन किया है। उनके निर्णय से राम का निर्वासन तब भी संदिग्ध था और आज भी संदिग्ध है। वह उस पर सदा अटल हैं।

कैकेयी के मनोभाव एवं उनकी बातों से प्रायः सभी विज्ञ जन प्रभावित होते हैं एवं उनके अकलुषित रूप को सभी स्वीकार करते हैं। वशिष्ठ घोषणा करते हैं किः–

आलोकित तुमसे उभय पक्ष

रानी।

तुम राम पक्ष, तुम भरत पक्ष।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 121)

किन्तु यदि कैकेयी के कृत्य को दुनिया कलंक मानती हैं तो भी उसे चिन्ता नहीं, क्योंकिः–

ऐसे कलंक की माता मैं।

ऐसे कलंक पर गर्व मुझे

जिसमें तपसे दो महापुरूष।

दो रूप, किन्तु जो एक प्राण।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 120)

कैकेयी को इस बात की भी चिन्ता है कि पता नहीं क्यों लोग उसके इस कलंक को धोने पर तुले हुए हैं। वह नहीं चाहती कि उसके कलंक का परिमार्जन किया जाय। यह तो उसकी उज्जवल थाती है। राम उसे शान्त करते हुए बताते हैं कि सत्य और असत्य दोनों साथ–साथ ही पलते है मिथ्या को नष्ट करने पर ही सत्य प्रतिभासित होता है। किन्तु भरत को यह मान्य नहीं है। वह पुनः अपनी शंका व्यक्त करते हैं। उसका निदान करती हुई कैकेयी श्रीराम की बात कहती है कि:–

कर्ता मनुष्य है

कर्म श्रेष्ठ है।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 128)

उनके अनुसार कर्म यज्ञ हे। बुरा कर्म वही करेगा जिसमें अच्छे कर्मों को करने की क्षमता नहीं है। अपराध सदा छोटा होता है परन्तु क्षमा करना अपराध करने से बहुत बड़ा होता है।[17]

दशरथ की मृत्यु के पश्चात कैकेयी को पन्द्रह दिनों तक अवध का शासन भार भी संभालना पड़ा था। इस अवधि में केकयी सैनिकों ने प्रजा पर अत्याचार भी किए थे। इसलिए आदिवासी युवजनों में कैकेयी के साथ ही भरत पर भी आक्रोश भरा है। वे उन्हें राम विरोधी मानते हैं। प्रजा को पीड़ित करने के पक्ष का समर्थन तो नहीं किया जा सकता, पर इससे कैकेयी की एक ओर क्षमता का ही संकेत मिलता है कि राजा के अभाव में आपातकाल में भी वह अवध राज्य की रक्षा कर सकती हैं। असंभव नहीं, उस समय उसे कतिपय कठोर कदम उठाने पड़े हों। सब मिलाकर वह कृत्य भी कैकेयी की कर्मनिष्ठता का ही परिचायक है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कैकेयी का चरित्रांकन आलोच्य काव्यों में कर्म की प्रतिमा के रूप में हुआ है। उसमें सहज मातृत्त्व के गुण भी हैं, पर पुत्र के व्यक्तिव विकास और पराक्रम वृद्धि की बाधा बनकर उसकी ममता कहीं भी नहीं आती। पर कर्त्तव्य के लिए ममत्त्व का बलिदान करती हैं, भले ही इसके लिए उसे लोक लांछन ही क्यों न सहना पड़े।

कौशल्या:

कौशल्या कवि के अनुसार 'ज्ञान–गरिमा–सी' है। उसकी पुष्टि कैकेयी भी करती है। उनके अनुसार 'जीजी तो ज्ञानमना है।[18] कौशल्या और भरत में किसी प्रकार का भेद नहीं मानती:–

राम भरत में भेद न करना । महापाप है, भेदभाव यह

जो भी राम भरत में भेद करेगा। सदा व्यर्थ अपवाद रचेगा।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 42)

राम के निर्वासन से कौशल्या को दुख तो है किन्तु उससे अधिक वह भरत की दशा पर चिंति है। सुनयना के कथन से भी इसी बात की पुष्टि होती है कि कौशल्या को भरत की चिन्ता ही अधिक खायी जा रही है। कौशल्या की दशा बहुत ही भयानक हो गई है। उन्हें सिर्फ भरत की चिन्ता है और किसी बात की चिन्ता नहीं है।[19] मातृ सुलभ ममत्त्व के कारण पुत्र के प्रति चिंत्ति होने के बावजूद वह ज्ञानी बनी हैं। अपने ज्ञान की निष्ठा के कारण ही वह इन सब कार्यों के लिए किसीको दोषी नहीं मानती। जहाँ और लोग कैकेयी को दोषी मानते हुए उसे लांछित कर रहे है, जहाँ मंथरा अपना दोष स्वीकार कर रही है, वहाँ कौशल्या इन सबसे परे वह सबको प्रभु की इच्छा मानती हैं। इस निमित्त वह किसी को दोष नहीं देती। भरत उसके कथन का प्रतिकार भी करते हैं–

आप सभी को मुक्त कर रहीं। माता को भी, चेरी को भी

मुझ जैसे अपराधी को भी। क्या यही न्याय है?

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 125)

इस प्रतिकार का कौशल्या इस प्रकार उत्तर देती है:–

हाँ यही न्याय है

यही उचित है

तुम सब निज अहंकार में कर्त्ता बनते

प्रभुं की इच्छा बिना

भला पा सकता था गति कोई।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 125)

उनके शब्दों में ही 'दोषी नहीं मंथरा भी है।' वह उसे निमित्त मात्र मानती हैं। इस विवेचन से स्पष्ट है कि कौशल्या मात्र माता ही नहीं परिस्थितियों को प्रभु की इच्छा स्वीकार करनेवाली एक विचारिका भी हैं। उन्हें ज्ञान गरिमा का प्रतीक मानना उचित है।

सीता–

निर्वासित राम के साथ चित्रकूट में रह रही सीता ने अपने राज के वैभव का परित्याग कर तपस्विनी का जीवन अपना लिया है। अपने पिता के शिविर में जब वह पहुँच ती हैं तो वहाँ का दृश्य वर्मा जी ने इस प्रकार से वर्णित किया हैं–

सन्मुख खड़ी जानकी थी या स्वयम ज्ञान की पुत्री सीता
बल्कल वसना, बनी योगिनी, सिद्ध कामना–पूरित प्रीता
x x x x x x
देखा जनक, देखकर भूले ज्ञान गम्य विवेक सब सारा
आरत से आर्द्र नेत्र से एक बार फिर लखा निहारा।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 85)

राम परात्पर ईश्वर हैं और जानकी हैं उनकी मूलाशक्ति। किन्तु याज्ञवल्क्य के शब्दों में अब वह केवल शक्ति नहीं रह गयी हैं:–

मूलाशक्ति जानकी भी अब । केवल शक्ति नहीं रह गयी
प्रकृति पुरूष की लीला में वह । पुत्री, पुत्रवधु बन करके
भाव जगत को पूर्ण कर रही। वह विदेह की वैदेही।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 84)

सुनयना जब चित्रकूट में जानकी से मिलती हैं तो सीता को बल्कल वेश में देख माता का वत्सल भाव उभड़ आता है, तब सीता अपनी माता की इस स्थिति को देखकर 'माता' भाव की सार्थकता का कथन करती हैं। वह स्वीकार करती हैं कि माता सुनयना की महिमा से ही उन्हें 'माता' भाव का बोध हुआ है– यहाँ सब उन्हें 'माता सीता' ही स्वीकार करते है––

'जिसके कारण इस वन में
माता सीता ही सब कहते
जड़ चेतन पशु विहंगवर
सब मेरे
मैं हूँ माई। (चित्रकूट चरित, पृ.सं. 88)

जानकी की अभिलाषा है कि माता बनने की सार्थकता मात्र माता के द्वारा ही प्राप्त होती है:–

माँ बस माँ तू। माँ से बस माँ ही जन्में
माँ से माँ अवतरित सदा हो। माँ की माँ से ही उठ उमगे।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 88)

आलोच्य कृतियों में जानकी का चरित्र संक्षिप्त रूप में उभरता है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि जानकी एक आदर्श पत्नी, पति के अनुकूल आचरण करने वाली और ज्ञानी जनक की ज्ञानवती पुत्री हैं। वह परात्पर प्रभु की मूलाशक्ति तो है ही, साथ ही वह योग्य पुत्री और कुलवधू भी हैं।

3.ड.ii. गौण स्त्री पात्र –

गौण स्त्री पात्रों में पुरवासियों के अतिरिक्त माता सुमित्रा, गुरू पत्नी अरून्धती, जनक पत्नी सुनयना, अत्रि पत्नी अनुसूया, भरत पत्नी माण्डवी एवं कैकेयी की दासी मंथरा के नाम गिनाये जा सकते हैं।

सुमित्रा–

माता सुमित्रा को वर्मा जी ने 'उपासनामय श्रद्धा की सौम्य कान्तिमय चारू'[22] का प्रतीक स्वीकार किया है। कैकेयी के कथन को वह लोक–लांछन का उत्तर मात्र मानती हुई स्वीकार करती हैं कि यह सब राम की लीला है। वह राम को मानव की अपेक्षा ब्रह्म और प्रभु ही मानती है। वह राम की माता की अपेक्षा भगवान राम की भक्त अधिक है। वह सभी कार्यों को राम की कृपा और लीला के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानती है। इसीलिए उनके अनुसार सबकी सार्थकता राम को समर्पित करने में ही हैं:–

वह भी राम कृपा ही समझे
जो भी सुख हो जो भी दुख हो
करें समर्पित उसी प्रभु को
जिसका है वह उसे प्राप्त हो

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 42)

सुनयना–

सुनयना के रूप में लक्ष्मीकान्त वर्मा जी ने वत्सलमयी माता का चित्र अंकित किया है। उनके मातृ रूप का सहज और वात्सल्यभाव का पूर्ण प्रकाशन कवि ने जनक शिविर में जानकी के उपस्थित होने पर किया है। वह केवल माँ है और कुछ नहीं। जानकी भी उनके माता रूप की महिमा का वर्णन करती है। मातृ शिविर में कैकेयी के कथन सुनने के बाद वही पहली महिला है जो कैकेयी को निर्दोष स्वीकार करती हैं।

माण्डवी–

माण्डवी का चित्र भी सीता की भाँति एक आदर्श पत्नी के रूप में वर्मा जी ने अंकित किया है। अपने पति भरत के अनुरूप वह न केवल आचरण करती है, बल्कि उनके तपकर्म में सब प्रकार से सहयोगिनी बनकर वह भी तपस्विनी बन गयी है। 'चिन्ति भरत को वह प्रबोधित करती हैं। वह पति की मार्गदर्शिका भी हैं। तभी वह चाहती है कि–

निर्णय ले प्रभु
समझे इसे राम की इच्छा

निर्णय यदि है राम समर्पित

तो वह मृं बनेगा

जीवन देगा।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 61)

माण्डवी देवता से मानव को अधिक महत्त्व देती है। उसके अनुसार देवता केवल अर्जित पुण्य का भोक्ता होता है। वह स्वयं कर्म नहीं करता, वह पुरूषार्थ हीन है। वह भरत को सलाह देती है कि यदि स्वयं प्रभु राम और भरत का भेद मिटा दें और भरत अपने आप को राममय हो कर देखेंगे तथा राम भरत रूप हो जायेंगे तभी अवध राज्य का गौरव बच पायेगां।[23]

माण्डवी के अनुसार तप केवल कायिक नहीं होता। वास्तविक तप तो मन की संकल्प शक्ति ही होती है। वस्तुतः आलोच्य कृति में माण्डवी का चरित्रांकण किंचित होते हुए भी महत्त्वपूर्ण हैं। वह तपस्वी भरत की योग्य अर्द्धांगिनी और कुशल विचारक के रूप में ही यहाँ प्रत्यक्ष हुई है। माण्डवी के स्वयं का जीवन भी तपस्वीनी–सा ही है।

मंथरा–

मंथरा कैकेयी की दासी है। वह सबके समक्ष स्वीकार करती है कि जिसे कैकेयी अपनी इच्छा कहती है, वस्तुतः वह 'पर प्रेरित थी'। उसकी प्रेरणा मंथरा ने ही दी थी। आगे वह पुनः स्पष्ट करती है कि मैंने विश बेली बोयी अवश्य पर उवमें मेरा हाथ नहीं था। मैं तो केवल माध्यम थी। निम्नलिखित पंक्तियाँ ॱद्रष्टव्य हैः–

मैंने जो विश बोया था

उसमें हाथ नहीं था मेरा

x x x

विधि ने मुझका यंत्र बनाया

मैं केवल असहाय माध्यम।

(चित्रकूट चरित, पृ.सं. 124)

भरत मंथरा को शाप भी देते हैं, जिसे वह राम को समर्पित करती है। राम उसे दोषी नहीं मानते। वे उसे केवल कालचक्र की स्वाभाविक गति स्वीकार करतें है।

गुरू पत्नी अरून्धती, अत्रि ऋषि पत्नी अनुसूया आदि भी राम और भरत में भेद नहीं मानतीं। वे सब भी इसी चिन्ता में है कि राम–भरत की समस्या का योग्य समाधान मिल सके। पुरवासियों को भी यही चिन्ता है। इन सबके माध्यम से कवि ने समान्य जन की चिन्ता को ही वाणी दी है।

इस प्रकार 'चित्रकूट संज्ञक' कृतियों में प्रमुख पुरूष और स्त्री पात्रों के चित्रांकन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं–

1. सभी चरित्र घटना से अधिक संवादों के माध्यम से प्रकट हुए हैं। संवादों की यह विशेषता है कि वह पात्र के मुख से भाव और बात उगलवाकर अपने पूरे मर्म को व्यक्त कर देता है।
2. सभी चरित्र चित्रकूट स्थल पर ही पनपते और बढ़ते हैं। सबके भीतर एक ही प्रश्न है और एक ही लक्ष्य। अपने श्रीराम को निर्वासन से मुक्त कराकर अवध को ले चलना।
3. इन कवियों के मन में भरत एवं उनकी साधना को भक्त के रूप में चित्रित करना, उनकी तपस्या उनका त्याग राम के समानान्तर सिद्ध हो जाए यही उनकी मनस्कामना है और उसीके अनुसार उनके चरित्र का चित्रण भी किया गया है।
4. 'वाल्मीकि रामायण' तथा 'रामचनितमानस' आदि ग्रंथों में जहाँ पात्रों के सम्बन्ध में कम बातें कहकर बहुत की कल्पना की गयी है वहाँ इन काव्यों में सबकुछ पात्र के मुँह से भाष्य कहलवा दिया गया है।
5. वाल्मीकि और तुलसी की कैकेयी कहीं मुखरित नहीं हुई। अतः श्रीराम के लिए सबसे अधिक प्यारी बनी। उन्होंने कहीं माता को दोष देने के लिए किसी को आज्ञा नहीं दी। आधुनिक कवियों ने कैकेयी के मुख से ही सारे प्रतिवादों का सम्यक उत्तर दिलवाया। इस उत्तर के भीतर एक महान उद्देश्य को लेकर कैकेयी ने सांसारिक दृष्टि से अपने ऊपर कलंक के पहाड़ को ढोते रहना अच्छा माना। जहाँ गोस्वामीजी ने 'गरइ गलानि कुटिल कैकेयी' कहकर उसको चित्रकूट से लेकर अवध तक ग्लानि में गलने के लिए छोड़ दिया है वहाँ 'चित्रकूट' संज्ञक आदि काव्यों में उसको अपने कर्म पर गर्व और गौरव होता है। वह अपने को राम की महानता का कारक मानती है। उसका तक्र है कि राम तपस्या करके ही अपने को सिद्ध पुरूष प्रमाणित कर राम राज्य के सच्चे अधिकारी बन सकते हैं और भरत राजा होकर भी एक महान त्यागी, विरागी, सच्चे सेवक और रामभक्त बनकर रामराज्य की पृष्ठभूमि का निर्माण कर सकते हैं।
6. स्रोत ग्रंथों में यह बताया गया है कि कैकेयी का प्रेम राम के प्रति भरत की अपेक्षा रंच मात्र भी कम नहीं था। वहाँ दशरथ स्वयं कहते हैं कि भरत के प्रति हमारा प्रेम वैसा ही है जैसा राम के प्रति। वे कैकेयी का क्रोध जानना चाहते हैं कि राम के किस दोष के कारण वह ऐसा भयानक निर्णय लेने के लिए तैयार हो गई। आधुनिक कवियों ने कैकेयी के चरित्र में यह विशेषता ला दी है कि वह कौशल्या से यहाँ तक कह उठती है कि मैंने राम का पालन पोषण किया है।

निष्कर्ष–

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम देखते हैं कि 'चित्रकूट–संज्ञक' काव्यों में चरित्र–चित्रण की दृष्टि से पुरूष पात्रों में राम, भरत वाल्मीकि, जनक और निषादराज हैं एवं स्त्री चरित्रों में कैकेयी, कौशल्या और सीता आदि पर ही कवियों की दृष्टि अधिक टिकी है। इस सबके चरित्र की मुख्य विशेषताओं को सभी कवि स्पष्ट करने में सफल रहे हैं। वाल्मीकि और जनक का चित्रण प्रायः परम्परा से किंचित हटकर किया

गया है। कल्पना का उपयोग कवियों ने इनके चित्रण में अधिक किया है, किन्तु वहाँ कहीं भी असंभव नहीं लगता है। नारी चरित्रों में कैकेयी की सर्वाधिक गत्वर है। उसे लांछन को धोने पर भी कवियों की दृष्टि गयी है। परिणामतः कवियों को स्रोत ग्रंथों से हटकर नवीन कल्पनाएँ करनी पड़ी है। कौशल्या और सुमित्रा के वर्णन में भी वैचारिक नवीनता है। सुनयना, सीता, माण्डवी आदि के चरित्रांकन में भी नवीनता मिलती है। आलोच्य कृतियों के सभी पात्र प्रायः एक ही समस्या के समाधान के लिए चिन्ति हैं। परिणामस्वरूप चरित्रांकन में द्वन्द्व को अधिक महत्त्व मिला है। इससे चरित्रांकन को नवीन गति मिली है। संक्षिप्त आधार होने के बावजूद सभी चरित्रों की मुख्य विशेषताओं को प्रत्यक्ष करने में कवियों को पूर्ण सफलता मिली है।

इस प्रकार 'चित्रकूट-संज्ञक' काव्यों में भरत और कैकेयी का चरित्र ही नये भावबंध को लेकर प्रकट हुआ है। जहाँ 'रामचरितमानस' में कैकेयी और भरत बिना कुछ कहे सबकुछ कह देते है। वहाँ इन आधुनिक 'चित्रकूट-संज्ञक' काव्यों में भरपूर अवसर मिला है तथा वे कहीं भी अमर्यादित नहीं है और न उसमें ग्लानि का भाव ही कम है।

तृतीय अध्याय

संदर्भ तालिका

1. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास,डॉ.गणपति गुप्त पृ.सं. 243
2. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास,डॉ.गणपति गुप्त पृ.सं. 243
3. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, अयो0 दो0 411
4. चित्रकूट, रामानन्द शास्त्री, द्वि.स., पृ.सं. 63
5. चित्रकूट, रामानन्द शास्त्री, द्वि.स., पृ.सं. 80
6. चित्रकूट, मोहनलाल गुप्त चातक,पृ.सं. 14–15
7. चित्रकूट, रामेश्वरदयाल दुबे, प्र.स., पृ.सं. 10
8. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, अयो0 दो0 243/4
9. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 94, ज.शि.
10. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 126, रा.शि.
11. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 57, भ.शि.
12. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 27, आ.शि.
13. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 92, ज.शि.
14. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 41, मा.शि.
15. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 43, मा.शि.
16. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 49, मा.शि.
17. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 128, रा.शि.
18. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 43, मा.शि.
19. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 42, मा.शि.
20. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 100, ऋ.शि.
21. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 101, ऋ.शि.
22. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 37, मा.शि.
23. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 61, भ.शि.

****

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

परिवेश–प्रतिबिम्बन एवं विचारधारा

4.1 सामाजिक परिवेश का प्रतिबिम्बन –

भारतीय मनीषियों ने पुरातन–काल से ही काव्य के उद्देश्यों में जन कल्याण के आदर्श की प्रतिष्ठा द्वारा साहित्य के सामाजिक सरोकार को एक सुदृढ़ पीठिका प्रदान की। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामकथा को मंगलकरणि कलिमल हरनि[1] कहकर उसे सुरसरि के समान सभी का कल्याण करने वाली बताया। वस्तुतः काव्य अथवा साहित्य में सामाजिक भूमिका को सब लोगों ने स्वीकार किया है। सामाजिक भूमिका के अभाव में साहित्य को साहित्य के रूप में स्वीकार ही न किया जाए, ऐसा कुछ साहित्यकारों की मान्यता है। जिस साहित्य से हमारी रूचि न जगे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति पैदा न हो, हमारा सौन्दर्य–प्रेम न जागृत हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे वह आज हमारे लिए बेकार है। वह साहित्य कहलाने के अधिकारी नहीं। आदर्श और यथार्थ चित्रण की अवधारणा इसी कारण साहित्य के क्षेत्र में सदा से ही सक्रिय रही है। वस्तुतः जीवन की यथार्थ अनुभूति ही साहित्य का परम लक्ष्य है। समाजवादी, यथार्थवादी साहित्यकार का वर्ण्य–विषय, परिवर्तनशील, बाह्य संसार और उसके विविध रूप होते हैं। रामकथा में सामाजिक मूल्यों का विशेष ध्यान रखा गया है।

हमारे कवि समय–समय पर यथार्थ को संस्कृति में रूपान्तरित करने की सतत् साधना किया करते हैं। इसी का समन्वय गोस्वामी तुलसीदास जी के काव्य में अभिव्यक्त हुआ तथा समाज और संस्कृति की प्रबल धारा प्रवाहित हुई। हर काल में युगीन समाज की अनेकानेक झाँकियाँ प्रविष्ट होकर प्रबंधकाव्यों में शामिल हो गईं। रामकथा में भारतीय जनमानस का समग्र आन्तरिक एवं बाह्य संघर्ष अपनी समस्त संकल्पों एवं आकांक्षाओं के साथ उद्घाटित होता चला गया और इसके सफल वाहक गोस्वामी तुलसीदास जी बने। उदाहरणार्थ 'मानस' के अयोध्याकाण्ड में भरत ने राम के वनगमन का पूरा वृत्तान्त सुना और क्षोभ वश माता कैकेयी से कहा है–

'विधिहुँ न नारि हृदय गति जानी।
सकल कपट अघ अवगुन खानी।।'[2]

इस कथन में कैकेयी को आलम्बन बनाकर नारी के सम्बन्ध में तत्कालीन समाज के एक वर्ग की स्थिति को यथार्थ रूप में प्रकट किया गया है। इससे साहित्य के साथ समाज का सम्बन्ध प्रमाणित होता है। सामाजिक सम्बन्धों की आवश्यकता इसलिए भी है कि समाज में सब तरह के लोग रहते हैं। अच्छे भी,

बुरे भी, मनुष्य भी, राक्षस भी और इनके पारस्परिक संघर्ष की गाथा साहित्य में वर्णित होती है। परम्परा से प्राप्त रामकथा को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया जाता। समाज की स्थिति और गति, व्यवस्था और परिवर्तन, मनुष्य और मूल्यों के रिश्ते बारम्बार परीक्षण और परिष्करण की वेदी पर चढ़ते हैं और इन्हीं में से छनकर व्यक्ति को एक सामाजिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है। ऐसे में प्रबंधकार कवि तीन प्रकार से कथा–बोध में परिवर्तन घटित करता है। एक में पारम्परिक प्रसंगों का परित्याग, दूसरे में नये प्रसंगों की उद्भावना और तीसरे में पारम्परिक प्रसंग को नवीन अर्थ–संदर्भ से जोड़कर उसमें नये प्रभाव की सृष्टि करना। रामकथा की परम्परा में ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं। उदाहरणार्थ रामकथा के जिन ऐतिहासिक प्रसंगों का तुलसी ने परित्याग कर दिया हैं उनमें हैं लक्ष्मण द्वारा राम को वनगमन के स्थान पर बलपूर्वक राज्य पर अधिकार करने के लिए प्रेरित करना। राम द्वारा कैकेयी की निन्दा, सीता का परित्याग, सीता का पृथ्वी में विलीन होना इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार, नयी उद्भावना के रूप में राम–लक्ष्मण का जनकपुर भ्रमण, सीता का गौरीपूजन, चित्रकूट की सभा में जनक की उपस्थिति, धनुष–यज्ञ तथा राम–विवाह का विस्तृत वर्णन आदि प्रसंग महत्त्वपूर्ण हैं।

तुलसीदास ने जिन चरित्रों को नये अर्थ संदर्भ के साथ प्रस्तुत किया है उनमें परशुराम, केवट और शबरी प्रमुख हैं। प्रबंधकाव्यों में चरित्रों को निखारने के लिए भी एक चरित्र को उद्धत और दूसरे को विनयी बना दिया जाता है। कवि ब्रह्मांडनायक भगवान् का भी वर्णन करता हो जो अपनी समस्त भगवतसत्ता के साथ सामाजिक संदर्भों की समानान्तर गति को भी बनाए रखता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने नवोद्भावित प्रसंगों के माध्यम से प्रभु रूप में वर्णित श्रीराम को व्यापक सामाजिक संदर्भ से जोड़ने के अपूर्व कौशल का परिचय दिया है। जनकपुर के बाजार हों या वन की पगडंडियाँ सर्वत्र जन–सामान्य की भीड़ जिनमें नर–नारी, बाल–वृद्ध सभी हैं, उन्हें घेरे दिखायी देते हैं। इसी प्रकार, धनुष–यज्ञ की योजना द्वारा तुलसी ने सीता की मनस्विता को एक नया उन्मेष प्रदान किया है। जीवन के संघर्ष में यदि कविता एक ओर अन्याय के विरूद्ध उठने वाली आवाज का नाम है तो दूसरी ओर वह उदात्त मानवीय मूल्यों के साथ अनन्वय भाव से प्रतिबद्ध होने की सनातन आकांक्षा का प्रबल माध्यम भी है। केवट का प्रसंग गोस्वामी तुलसीदास ने एकदम नये सिरे से रचा है। वाल्मीकि रामायण में निषाद की आज्ञा पाकर उसके सेवक लक्ष्मण, जानकी और श्री राम को गंगा पार करा देते हैं। पार उतर कर राम आगे की यात्रा पर बढ़ जाते हैं। यहाँ वाल्मीकि ने राम के द्वारा केवट के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कराना भी उचित नहीं समझा। इसके विपरीत गोस्वामी तुलसीदास के राम स्वयं केवट से नाव लाने का आग्रह करते हैं और केवट चरण धोने की शर्त पर ही नाव लाता है। गंगा पार होकर ज्यों ही राम सुरसरि की रेत पर खड़े होते हैं, उनके मन में यह संकोच होता है कि केवट को उन्होंने कुछ दिया नहीं। वह तो केवल उन्हें उतार कर दण्डवत करता है। लेकिन 'प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा'[3] राम के मन का यह संकोच वस्तुतः परिश्रम करने वाले का इसका अधिकार न दे पाने के कारण उत्पन्न हुआ है। राम को इस धर्म संकट से उबारने के लिए सीता

आगे आती हैं। यहाँ श्रमिक को उसके श्रम का प्रतिदान दिलाने की जैसी प्रतिबद्धता तुलसी में दिखायी देती है वैसे पूरे भक्तिकाल के किसी अन्य कवि में नहीं। इसका प्रधान कारण है तुलसी की उदात्त, सामाजिक चेतना; जो किसी प्रकार के अन्याय और अत्याचार की विरोधिनी है।

'चित्रकूट प्रसंग' में यह विचारणीय है कि अयोध्या में सम्पत्ति के लिए कुत्सभाव कैसे उत्पन्न हो गया और जिसके लिए उत्पन्न हुआ उसके महान त्याग ने सबके सोच और संग्रहित भाव को बिल्कुल बदल दिया। इसमें सामाजिक स्थिति यह है कि सभी स्त्रियाँ कैकेयी को गाली देती हैं। जैसे कैकेयी ने घर की धूरी पर आग रख दिया हो। लेकिन उसी राज्य में एक मंथरा भी है जिसे बधावा बजना अच्छा नहीं लगता। सामाजिक जीवन ऐसा ही होता है। मनुष्य अपनी हितैषिता को पहचान लें, ऐसा सबके साथ नहीं होता। लक्ष्य और परमलक्ष्य तक पहुँचने वाले बहुत कम लोग होते हैं। स्त्री भाव, पुरूषभाव, नागरिकों का भाव, वनचरों का भाव, सेवक और सेव्यभाव, सबकी विचारणाएँ मिलकर सामाजिक जीवन को उन्नत बनाती हैं। नागर जीवन की अपेक्षा सर्वकाल में वन्य जीवन सत्य के अधिक निकट रहा है। आज भी देखने में आता है कि आदिवासीजन सत्य धर्म में सभी लोगों से अधिक निष्ठावान होते हैं। वे नीति और सत्य पर मर–मिटने के लिए सदा तैयार रहते हैं।

'रामचनितमानस' में अयोध्या की चतुरंगिणी सेना को चित्रकूट की और जाते हुए देखकर निषादराज के मन में जो भाव आता है वही भाव इन 'चित्रकूट संज्ञक' काव्य में लक्ष्मण के मन में भी है। युद्ध करने के लिए निषादराज भी तैयार हैं और लक्ष्मण भी, लेकिन चतुरंगिणी सेना के साथ लोहा लेना आसान नहीं। किन्तु यहाँ जीवन मरण का प्रश्न नहीं उठता। नीति और सत्य पथ पर चलने और नहीं चलने देने के मार्ग में बाधा डालने वाले को कैसे अवरूद्ध कर दिया जाए, प्रश्न यहाँ आकर अटका है। उसमें प्राण की चिन्ता नहीं की जा रही है। सामाजिक जीवन को कितना सुन्दर स्वस्थ और नीतिबद्ध बनाया जा सकता है, इसीलिए निषाद अपने प्राण देकर भी भरत को शिक्षा देना चाहते हैं कि राम वन में अकेले नहीं हैं। उनके साथ और बहुत से लोग हैं।

सुकृति से संसार चलता है और विकृति से वह चलने में लड़खड़ाने लगता है। इसीलिए समकालीन सामाजिक अनीति की झाँकी हर कवि या साहित्यकार अपनी रचनाओं में वर्णित करता है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' में व्यक्ति और समाज के सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया है। व्यक्ति से ही समाज बनता है। परिवार और राज्य भी समाज के ही लघु और विशाल रूप हैं। मनुष्य (व्यक्ति) और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। व्यक्ति का सर्वांगीण विकास एवं उसका जीवन निर्वाह समाज की कृपा एवं सहायता पर ही निर्भर है। इसीलिए स्वभावतः व्यक्ति के भी समाज के प्रति कुछ कर्त्तव्य होते हैं। प्रबंध काव्यों में पारिवारिक आदर्श एवं गृह शिक्षा के इसीलिए सर्वांगीण चित्र उपस्थित किए गए हैं– जैसे 'रामचरितमानस' में सबेरे ब्रह्म मुहूर्त्त में अरूणचूड़ की ध्वनि के साथ ही सभी जग जाएँ, गुरू निर्दिष्ट मार्ग

के अनुसार भगवत स्मरण करें, सूर्योदय से पहले विशुद्ध चित्त से गंगा स्नान करें, फिर यथा विधि सांध्योपासनादि करें। मध्याह्न में घर के पुरूषों का भोजन एक ही पंक्ति में हो, फिर किंचित् विश्राम के बाद व्यवसाय का आरंभ हो। तदनंतर शाम को प्रातःकाल की भाँति संध्यावंदन हो। यह सामान्य दिनचर्या का रूप है। इसके बाद गृहाचार का रूप प्रारंभ होता है। इसके बाद माता–पिता का आदर्श, भाई का आदर्श, पति–पत्नी का आदर्श, राजा–प्रजा का आदर्श, गुरू–शिष्य का आदर्श प्रारंभ होता है। यहीं से तुलसी के रामराज्य की विशेषताएँ प्रारंभ होती हैं। वहाँ कोई विचार छूटा है और वे विचार हर युग में संदेश देने वाले हैं।

इसीलिए 'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों में सामाजिक संदर्भों को युगीन चेतना के परिदृश्य में दिखाया गया है। वस्तुतः सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति की परिवारिक स्थिति भी जुड़ी हुई होती है। परिवार कई प्रकार के सम्बन्धों से बनता है। उसमें छोटे–बड़े, बच्चे–वृद्ध, युवा सभी आते हैं। इसके बाद सम्बन्ध शुरू होता है–भाई, पिता, बहन, भाभी, सास, ससुर, ननद आदि, फिर सेवक–सेविका आदि। राजाओं के जीवन से मंत्री, गुरू, सेनानायक, कोषागार, रक्षक आदि अनेक सम्बन्ध जुड़कर राज्य व्यवस्था को पुष्ट और मर्यादित करते हैं। इसके बाद प्रजा का स्थान आता है। प्रजाओं में अनेक वर्ण, जातियाँ, पेशेवर आते हैं। सबको मिलाकर एक पूरी सामाजिक व्यवस्था बनती है जिनसे धर्म और संस्कृति की रक्षा होती है। इस प्रकार सामाजिक परिवेश के वर्णन में इन सभी की भावनाओं और कर्मों की समीक्षा होती है।

4.1.क विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'–

परिवेश प्रतिबिम्बन की दृष्टि से विद्याभूषण विभु कृत 'चित्रकूट चित्रण' काव्य पाँच छवियों में विभक्त है जिसमें परमात्मा के चतुर–चितेरे रूप को देखकर मानव बुद्धि किस प्रकार चकरा जाती है, उसी का वर्णन हुआ है। चित्रकूट जैसे परमात्मा का घर है। सचिदानन्द यानी आनन्द कंद की प्यारी वसुधा के रूप में उसकी विचित्रताओं का वर्णन और उसकी न्यारी शोभा को कण–कण में व्याप्त दिखाया गया है। सर्वप्रथम हिमगिरि के अनुरूप दूसरे भूधर की कल्पना इस पहाड़ी की शोभा को देखकर की गयी है। मखमल के समान दूब उनको रौंदते मृगछवने, फेनिल निर्झरणी, फूलवासित मलयानिल, ऋषिमुनियों के तपोवन और फिर श्रीराम और भरत की प्रेम कहानी कहते हुए ये जल के सोते, सारी दिशाँए जैसे चित्रकूट दर्शन के लिए उतावली हैं। देवताओं ने अपना सब कुछ न्योछावर कर इस प्रदेश का निर्माण कराया है। यहाँ मंदाकिनी की गति अत्यन्त मंद है क्योंकि वशिष्ठ और जनक ने इसे अपने पवित्रचरण की रेखा से तीर्थ स्थल बनाया है। नर–नारी आज भी जा कर वहाँ त्रेता के अमर प्रताप को अनुभव करते हैं। वहाँ के मंदिर, वहाँ की पयस्विनी, कामदगिरि सभी का अपना इतिहास है जो अपने मुखारविन्द से राम की निर्वासन अवधि की कहानियाँ सुनाती हैं। चरण पादुका, लक्ष्मण–टीला, रामझरोखा तथा आगे के इतिहास की पूरी कथा वहाँ की शिलाओं पर लिखित है। लोग उन स्थानों की परिक्रमा करते हैं जैसे राम वहाँ बैठे हुए अभी भी विराजमान हों। स्फटिक–शिला की कहानी को कौन नहीं जानता। वहीं श्रीराम ने जयंत के ऊपर सायक

संधान किया था। सीता–कुण्ड में सीता–चरण के चिह्न हैं। अत्रि का आश्रम, गुप्त गोदावरी, रामकुण्ड, भरत–कूप, सबका अपना एक भव्य इतिहास है जिस पर पूरी रामकथा आधारित है। जैसे चित्रकूट उसका मूर्त्त प्रतीक हो । वहाँ के चित्रवन में जैसे प्रकृति ने अपने हाथों सुरभित सुमनों को पैदा किया हो।

कवि के मन में चित्रकूट को देखकर यह भाव उठता है कि इसके काव्य वन में अनेक कवि उत्पन्न हुए जिन्हें चित्रकूट की शोभा ने बहुत आकर्षित किया। वहाँ के कोल–किरातों ने भी श्रीराम की सहायता कर ऐसा यश पाया कि प्रभु ने स्वयं श्रीमुख से उनकी प्रशंसा कर गले लगा लिया। जैसे चित्रकूट प्राकृतिक पदार्थों के सौन्दर्य से इस प्रकार महिमा–मण्डित है कि साकेत भी उसके समक्ष तुच्छ दिखायी पड़ रहा है। फूल–फल, पशु–पक्षी, वृक्ष, नदियाँ, बेर और ताड़ के वृक्ष ये सभी उन सौन्दर्य के एक–एक स्तंभ हैं। यहाँ के वृक्ष कुछ तो प्राकृतिक हैं और कुछ मनुष्य द्वारा उपजाये गए हैं। हरड़–बहेड़ा, आँवला, कटहल आदि अनेक तरह से मानव की औषधि बनकर जीवन देने वाले हैं। प्रकृति अपने विविध रूपों को इन्हीं के माध्यम से सवाँरती और प्रभु श्रीराम के परिवार को रंजन और पोषण प्रदान करती है। विभु जी ने प्राकृतिक परिवेश को पूर्णतः सुसज्जित कर उसके मनोहारी स्वरूप का वर्णन किया है।

4.1.ख. रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट'–

रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' ने अपने करूण रस प्रधान खण्ड–काव्य 'चित्रकूट' को सात सर्गों में विभाजित कर सम्पूर्ण परिवेश को अभिचित्रित करने का प्रयास किया है। चित्रकूट में शांति का वातावरण है। यहाँ प्रकृति ने जैसे वनसेवी मनुष्यों और पशुओं को समान रूप से शिक्षित किया है। यहाँ के बंदर किसी का वस्त्राभूषण लेकर वन में नहीं भागते। इतना ही नहीं भालू, बाघ, वनमानुष, हिंसक होने पर भी न तो परस्पर लड़ते हैं और न क्षुधा से पीड़ित होकर पथिकों को पकड़ते हैं। जैसे हिंसा से इनका विरोध हो, शायद इसीलिए श्रीराम जानकी ने इस स्थल को अपने निवास के लिए चुना हो। सींघ वाले पशु जमीन खोदकर कन्दमूल निकालते हैं और लक्ष्मण पर्णकुटी में श्रीराम जानकी के लिए आहार स्वरूप उन्हें रख आते हैं। पूरी प्रकृति जैसे श्रीराम के लिए अनुकूल बनकर सेवा कर रही है। सामाजिक दृष्टि से स्वप्न–दर्शन और शकुन–अपशकुन की बातें श्रीराम के संदर्भ में भी दिखायी गयी है। श्रीराम स्वप्न देखते हैं कि कोई सिंह दावानल के मध्य पड़कर जल रहा है। चारों तरफ धुआँ सा छा गया है और फूल फल तक सभी उसमें भस्म हो रहे हैं। खग–मृग भय से भाग रहे हैं। जल में उबाल आ रहा है और मछलियाँ व्याकुल हो रहीं हैं।

चित्रकूट में अत्रि ऋषि का आश्रम है। आश्रम जीवन का सहज स्वरूप भी इसमें वर्णित है। यहाँ शांत वातावरण में छहों ऋतुएँ आकर फल–फूलों का उपहार इस आश्रम को दे जाती हैं। राम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र होते हुए भी मुनि दम्पति का चरण वंदन करते हैं। उनके मन में राम के प्रति प्रेम है इसलिए वे कैकेयी को भी दोष देने से बाज नहीं आती। किन्तु राम इस बात का कोई उत्तर नहीं देते। अनसूया को सीता के कुश–कंटकों में विचरण करते देखकर कष्ट होता है। किन्तु सीता के मन में किसी

प्रकार का दुःख नहीं दिखलाया गया है। इस काव्य ग्रंथ में वनचारियों की रहनि और पशुओं पर भी मनुष्य की प्रवृत्तियों का कैसा असर पड़ सकता है, दिखलाया गया है। कहीं अंधकार यदि है तो गुफाओं में अगर कहीं दहकता है तो वह अनल में, अगर गर्जन–तर्जन है तो बादल में। तात्पर्य यह कि मुनिजनों के बीच में रहनेवाले मनुष्य और पशु दोनों ही ऋषियों का अनुसरण करते हुए शांति लाभ कर रहे हैं। ऐसे में लक्ष्मण जो स्रोत ग्रंथों में, अयोध्या में युद्ध करने के लिए तैयार थे वे वन के अपार सौख्य को देखकर मझली माँ का यहाँ भेजने के लिए उपकार जताते हैं। इनको ज्ञात होता है कि मनुष्य मोह की मदिरा पाकर ही विक्षिप्त हो जाता है। यहाँ सुख और दुःख ने परस्पर संधि कर लिया है। राजवाटिका से भी बढ़कर चित्रकूट का अनुपम सुख अनेक वनराजियों में दिखायी पड़ता है। चित्रकूट के अन्य स्थलों में कामदगिरि का वर्णन प्रायः सभी कवियों ने किया है। इस काव्य ग्रंथ में भी कैकेयी का चित्रकूट में आते ही विचार परिवर्तन दिखाया गया है। जैसे पाषाण प्रबल ताप के समक्ष पिघल गया हो। कैकेयी कहती है–

बोली, लौटो राम! भवन को
राव गये वे हैं सुरधाम
वत्स, तुम्हारी मैं जननी ।
दया करो हे लोक ललाम
वन में भेज तुम्हें हे राघव,
अब समझाने आई हूँ
अपने घर में आग लगाकर ।।
आप बुझाने आई हूँ

(चित्रकूट, पृ0सं0–49)

वह पश्चाताप करती हुई जंगल से लौटने का आदेश दे डालती है। श्रीराम भी उन्हें हृदय से लगा लेते हैं और रोने लगते हैं। वे स्वीकार करते हैं–

कौसल्या ने जन्म दिया था
किन्तु किया तुमने पालन,
तुम्हीं आज भी तो करती हो
मेरा जीवन संचालन ।

(चित्रकूट, पृ0सं0–52)

श्रीराम के मुर्च्छित हो जाने पर गुरू वशिष्ठ मंत्रपूत जल छिड़ककर उनका सम्मोह दूर करते हैं। यहाँ कैकेयी स्वयं अपना दोष स्वीकार करती हुई कह बैठती है कि मैं सच्चे अर्थ में पिशाचिनी हूँ। हमने अपने पति को अपने हाथों सुरधाम भेजा। राम और भरत तो बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव से एक थे। यहाँ पिशाचिनी, डाकिनी अपने को कहकर कैकेयी करूणा की धारा में स्वयं बहकर सबको बहा डालती है।

उसका पश्चाताप उसके सारे पापों को भस्म कर देता है। वह आत्म हनन करना चाहती है, जैसा लोग भावना में आकर और अपने दोषों को स्वीकार करते हुए कर डालते हैं। लेकिन आत्मा की गति को जानने पर कोई ऐसा नहीं कर सकता और कैकेयी वशिष्ठ के समझाने पर ऐसी बात कभी मन में नहीं लाती। अतः इससे प्रकट होता है कि समाज में लोग गुरू के आदेश का भरपूर पालन करते थे और कुलगुरू ही सारे परिवार और राज्य का नियामक होता था। 'मानस' में भी इसी प्रकार व्यक्त किया गया है, जैसे– दशरथ का पुत्र के लिए चिन्तित होना, गुरू के आदेश पर पुत्रेष्टि यज्ञ करना, गुरू के अनुशासन से सभी राजकाज करना आदि। इसी प्रकार चित्रकूट में वशिष्ठ स्वीकार करते हैं कि अनजाने में भी पाप हो जाता है। यद्यपि उसका फल उतना बुरा नहीं होता लेकिन वह संताप तो देता ही है। गुरू वशिष्ठ, अंधतापस की कथा कहकर कैकेयी की उस दुश्चिंता को समाप्त कर देते हैं, जिस शाप कथा में यह कहा गया है कि राजा दशरथ को पुत्र शोक में ही शरीर त्यागना था, अतः कैकेयी उसका कारण नहीं बन सकती। वे स्पष्ट कहते है–

सुनि कहानी अब मत सोचो,
की है मैंने कोई भूल।'

(चित्रकूट,पृ0सं0–78)

इस कथा से सबके हृदय का संताप, क्षोभ, आक्रोश समाप्त हो जाता है। 'चित्रकूट' के पंचम सर्ग में राम वनवास के समय दीन–दलितों की सामाजिक स्थिति को देखकर बड़े मर्माहत होते हैं। वे अन्यों की भाँति कैकेयी को निर्वासन का कारक मानकर दोष देना नहीं चाहते। भरत भू का शासन करने के लिए ही अवतरित हुए हैं। मैं तो दीन–दलितों की सेवा, ऋषि मुनियों की रक्षा और राक्षसों के वंश को समाप्त करने के लिए ही यहाँ आया हूँ। कैकेयी माँ ने हमारी निद्रा को भंग किया है, मैं साधारण लोगों का जीवन व्यतीत करते हुए गाँव–गाँव में जो उनके ऊपर संकट छाया है उसे दूर करूँगा। हम जिनके बल पर राज्य करते हैं उनको भी अनदेखा कर जाते हैं। साकेत का निर्माण यदि स्वर्ग सदृश हुआ है तो इन दुखियों की तपस्या के कारण–

अनाहार भी श्रम करते हैं
इनसा कौन तपस्वी है।
आगत का स्वागत करते हैं
इनसा कौन मनस्वी है ?
साग–पात से ही भर लेते
ये हैं अपनी उदर–दरी,
गेहूँ, यव की बालों से है

यद्यपि इनकी भूमि भरी।।

(चित्रकूट पृ0सं0–82)

श्रीराम के कथन से उस समय की सामाजिक अवस्था की दरिद्रता किस प्रकार घनीभूत थी प्रकट हुई है। समाज का एक वर्ग पूर्णतः उपेक्षित प्रकृति के उपर आश्रृत था।

ज्वार बाजरों का ही केवल
कर पाते हैं ये उपयोग
इनको असमय में ही आकर
और दबा लेते हैं रोग ।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–84)

इन समस्याओं का श्रीराम निर्जन वन में समाधान ढूँढ़ते हैं। राम शबरों और निषादों को जो वास्तव में नर हैं किन्तु वन में रहने के कारण असभ्य हैं और उनकी गणना वानरों में की जाती है। अतः राम प्रण करते हैं कि इन्हें वानर रूप में कहे जाने की प्रथा को समाप्त कर उन्हें सभ्य बनायेंगे। भरत भी अपने सामाजिक जीवन को राम के सामने उद्‌गार रूप में प्रकट करते हैं जिससे उस काल के सामाजिक परिवेश पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। जहाँ राजा दशरथ को पुत्र मोह में रथ के पीछे दौड़ते हुए दिखाया जाता है। वे स्वयं बंदी बनने के लिए तैयार हैं। लक्ष्मण को युद्ध करने के लिए प्रेरित करते हैं। उस सामाजिक और पारिवारिक जीवन में वे राम के बिना असमर्थ दिखायी पड़ते हैं और उनका कर्त्तव्य बोध एक लोक–लांछन को स्मरण कर समाप्त हो जाता है। सुमंत्र का राम–भरत के वार्तालाप को सुनकर रोना उनकी सहृदयता और राजा के प्रति पूर्ण सर्म्पण की भावना को प्रकट करता है। सुमंत्र को यह कष्ट है कि राम के वियोग में राजा दशरथ ने अपना शरीर त्याग किया। इनके साश्रु होने के पीछे उस काल की बीती हुई घटनाएँ हैं। यहाँ राम एक ऐसी समस्या लाकर पिता के अन्तिम वचन को सुमंत्र के माध्यम से सुनना चाहते हैं। आखिर प्राण निकलने के पूर्व राजा के मनःस्थिति क्या थी।

इस प्रसंग का स्मरण करते हुए सुमंत्र कहते हैं राजा से आपका विरह ताप सहा नहीं जाता था। वे कहते थे काश ! मैं आकाशचारी हंस होता तो उड़कर तीव्र गति से अपने प्रिय राम के पास चला जाता। धन्य थे वे राम जिसका मुख अभिषेक के समय न तो प्रसन्न हुआ और न वनवास की बात सुनकर उदास ही। वह निर्देश सुनते ही वन को चला गया और अवध के सभी प्रजाजनों को रूला गया। उन्होंने यह भी कहा था कि यह कैकेयी भी जो भरत के मोह में उन्हें निर्वासित करने पर तुल गयी, वह कभी सुहागिन नहीं रहेगी और राम के प्रेम में भरत कभी राजा भी न होंगे। इस प्रकार हमारे सोने के संसार को केकय सुता ने एक छोटी–सी चिनगारी द्वारा भस्मसात कर दिया। वह चिनगारी तुच्छ है जो मंथरा नारी से निकली थी। आज मैं राजा नहीं दासों का दास बन गया हूँ। बहुत आनन्द किया था अब क्लेश पा रहा हूँ। हमको दुःख है कि राजा जनक जब यह सुनेंगे कि राम और सीता जंगल में हैं। उनका केवल एक सहारा सौमित्र मात्र

है। भरत और शत्रुघ्न घर पर नहीं हैं तो वे अपने मन में क्या सोचेंगे। हमसे भी तो ज्यादा दुःख उनको होगा और वे तत्त्वज्ञानी होते हुए भी शायद मृत्यु का ही वरण करेंगे। मैं वृद्ध होकर भी तपस्या के योग्य नहीं हुआ, और वे युवक होकर भी तपस्या के लिए वन में चले गए। जब मेरे संसार से कूच करने की बेला आ गयी तो मेरा मुँह काला हो गया। सुमंत्र के अनुसार उनकी आँखों से अविरल नीर बह रहा था। इस प्रकार राम–राम कहते हुए नृप सुरधाम चले गए।

इस पूरी कथा के विश्लेषण से उस काल के समाज तंत्र, परिवार तंत्र और राजतंत्र में जीवन की व्यवस्था जिस तरह संचालित होती है, पारिवारिक जनों और कुटुम्बियों के प्रति किस तरह की आस्था रहती है, इसका मर्म इन काव्यों में उद्घाटित हुआ है। माँ परिवार में किस प्रकार रहती है और पुत्र के प्रति इसका कैसा स्नेह होना चाहिए मंत्री, राजा कितना राज्य के प्रति संवेदनशील और विश्वासपूर्ण रहता है इसकी झाँकी इन काव्यों में मिलती है। यद्यपि नयी भूमि पर नये भावों को भी इसमें पिरोया गया है किन्तु अनुशासन और मर्यादा के भीतर ही लक्ष्य को परमलक्ष्य बनाते हुए, लोक–लांछन की विशेष चिन्ता करते हुए, लोक मान्यता को आदर देते हुए समस्त सामाजिक विहित–अविहित को बचाते हुए पूरे जीवन की व्याख्या की गयी है। इसमें अवधवासियों और चित्रकूटवासियों दोनों की गंगा–यमुनी संस्कृति उस काल की सामाजिक अवस्था की परिचायिका बनी है।

4.1.ग. मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत 'चित्रकूट'–

मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत 'चित्रकूट' में निःस्वार्थ जनसेवा और सच्चे त्याग की भावना की आवश्यकता को ध्यान में रखकर जो राष्ट्र निर्माण के लिए एक सर्वोपरि तत्त्व है, उसका इस काव्य में प्रणयन किया गया है। राम और भरत के जीवन में जो त्याग का चित्र अंकित है। उसमें कोई छोटा–बड़ा नहीं माना जा सकता। दोनों चक्रवर्ती साम्राज्य का स्वेच्छा से त्याग करने वाले महापुरूष हैं। दोनों का पावनवृत्त चित्रकूट जैसे पर्वत पर अंकित हुआ है। कवि का उद्देश्य है कि जन–जीवन के आदर्श, प्रेम, कर्त्तव्य, त्याग, बलिदान का, जिनमें उपकर्ष दिखायी पड़ रहा है वह राम और भरत के प्रेम भाव के अनुकरण से ही प्राप्त किया जा सकता है। ध्यातव्य है कि राष्ट्र के कर्णधार होने का दम भरने वाले स्वार्थपरता, पदलिप्सा और पारस्परिक विरोध के जाल में फँसे हुए हैं। पूरे विश्व के इतिहास में ऐसा चरित्र नहीं मिलता जैसा गोस्वामी तुलसीदास ने चित्रांकित किया है। भरत की रहनि, उनकी समझ, उनका कर्त्तव्य–बोध, उनकी भक्ति, विरक्ति और विमल विभुति से सम्पन्न गुण को कहने में शेषनाग, गणेश और सरस्वती भी समर्थ नहीं है। वह चरित्र उनके लिए भी गम्य नहीं है, अतः सुकवियों को भी वर्णन करने में संकोच का अनुभव होता है। भरत का चरित्र अगर कहीं पारमार्थिकता को प्राप्त हुआ है तो वह स्थान चित्रकूट ही है। यदि यह कहा जाए कि भरत के चरित्र की शुरूआत अयोध्या से न होकर चित्रकूट से होती है तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

भरत और राम ने अपने मनुजोचित कर्म से व्यक्ति, परिवार और समाज और इस पूरे परिवेश को सम्प्रेरित कर आदर्शमय बना दिया। समाज के सारे कार्य– अनुकरणीय नहीं हो सकते। अनुकरणीय की वस्तुएँ वही होती हैं जो सबके लिए समान रूप से श्रेष्ठ हों। जहाँ आश्रम होता है वहाँ के पशु–पक्षी भी हिंसकों के मध्य रहते हुए भी हिंसा का त्याग कर देते हैं। अतः चित्रकूट पहले से तो ऋषि–मुनियों की तपस्या का केन्द्र स्थल था ही श्रीराम का भ्राता सहित आना उसे देवलोक बना देता है। आज भी उनके सुयश गाथा कल–कल ध्वनि से सरिताएँ व्यक्त करती हैं जैसे वनवास काल की अवधि में वहाँ पर मधुमास ने सदा के लिए अपना निवास बना लिया हो। प्रभु श्रीराम का ऊपरी वेश तो धनुर्धारी है किन्तु भीतर में प्रबल वैराग्य का समुद्र हिल्लोरित हो रहा है। इस चित्रकूट के अलौकिक वैभव ने राघव के मन में महामोद भर दिया है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'गीतावली', 'विनयपत्रिका' और 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड में इसका विशद वर्णन किया है। वे जानकी से पूछते हैं तूने पिता और ससुर दोनों का वैभव देखा है। बोलो कल्याणी, चित्रकूट में तुम्हें कैसा लग रहा है। सीता कहती हैं जहाँ आर्य पुत्र के चरण अग्रसर हों, वहाँ का दूसरा वैभव और क्या होगा–

> कन्द मूल फल नियमित भोजन,
> सभी प्रशन्न और आरोग्य,
> होता मान योग के सन्मुख,
> केवल चर्म–रोग–सा भोग।
> प्रकृति नटी रचती है कैसी,
> नित–नव–उत्कर्षित–आकृति।
> जिसे देख कर होने लगती
> विस्मृत स्वजनों की भी स्मृति।

(चित्रकूट, पृ0सं0–8)

सीता को जो आनन्द स्वर्ण पिंजड़ों में अपने पंखों को बंद किए विहंगों को देखने में आता था। उससे कहीं अधिक स्वच्छन्द विहंगों के स्वाभाविक उड़ान को देखकर हो रहा है। चित्रकूट की विशेषता यह है कि घर में लाख यत्न कोई क्यों न करे तो भी भोग शक्ति का प्रभाव नहीं मिटता, लेकिन यहाँ स्वतः मुनियों का आचार–स्वभाव गृहित हो जाता है। यहाँ के वृक्षों में मुनियों का स्वरूप दिखाई पड़ता है। श्रीराम और सीता बारी–बारी से चित्रकूट के निर्झर, विहंग और धवल शिलाओं का वर्णन करते थकते नहीं। श्रीराम के मन में भरत की चतुरंगिणी सेना का आने का कोई विशेष प्रभाव नहीं होता। उनके मन में यह विश्वास है कि भरत धर्म, शील, गुण मति का त्याग कभी नहीं कर सकते। वास्तविकता यही है कि भरत विपिन वृत्त से क्षुब्ध होकर राज्य वैभवों को ठुकरा कर मझली माँ से कुपित होकर जंगल में आ रहे हैं। वे हमसे मिलने आ रहे हैं, युद्ध करने नहीं। राम और भरत का मिलन अपने देश की संस्कृति और अध्यात्मदर्शन के

प्रतिपादित सिद्धान्तों को प्रभावित करने वाला है, क्योंकि वह प्रेम के साम्राज्य की सम्पूर्ण सीमा को एकान्तरित कर देता है। भरत को राम में ही सम्पूर्ण अयोध्या की कुशलता दिखायी दे रही है। भरत पिता के स्वर्ग–गमन की बात कहकर अपनी माता कैकेयी को गालियाँ देने लगते हैं। यहाँ कवि ने पारिवारिक दुःख का विशद वर्णन कर यह दिखाया है कि श्रीराम केवल प्रभु ही नहीं वे एक मनुष्य रूप में भी आदर्श के परम पात्र थे, जैसे 'राम–राम' रटकर दशरथ ने अपना शरीर राममय बना लिया। राम व्यथित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। माताएँ अपने दुःख को अपने हृदय में छिपा लेती हैं और राम को हृदय से लगा लेती है, किन्तु यहाँ भी कैकेयी मुखरित होती है–

वत्स तुम्हें तो सभी तुल्य हैं हर्ष विषाद और वर–शाप।
हरण करोगो नहीं आज क्या, तात–घातिनी का संताप?

(चित्रकूट,पृ0सं0–32)

कैकेयी का ऐसा कहना राम की चेतना को लौटा देता है और वे कैकेयी से लिपट जाते है। वे समझाते हैं कि हे आर्या! तुम विगत वृत्त को याद कर व्यर्थ में दीन मत बनो। बड़े–बड़े पुरूषार्थियों को भी दैवाधीन होना पड़ा है। यहाँ पर कवि ने चित्रकूट की शोभा वर्णन करते हुए ऋतु के बंधन का त्याग दिखाया है।

'मानस' के अनुकूल ही इस चित्रकूट में भी राम भरत को समझाते हैं कि जिस सत्य का पालन करने के लिए रघुकुलमणि दशरथ ने अपना शरीर त्याग किया उस पर भरत और राम दोनों को निष्ठापूर्वक कहना है। तुम तो मात्र अनुवर्ती प्रतिनिधि बनकर रहोगे। राज्य तो पुरवासियों का है, पंचों का है, मंत्री का है और गुरूदेव का है। ये लोग सभी उसका रक्षण करेंगे। वहाँ के मानव मूल्यों को प्रकट करते हुए कर्म–धर्म को मानवता का मूल धर्म बताया है। निस्पृहता सेवा से भी ऊँची होती है। भरत उनकी बातों का उत्तर देकर धर्म की ओर गयी हुई विशेषताओं का विश्लेषण करते हुए यह बताते हैं कि चारों आश्रमों में सर्वोत्कृष्ट गृहस्थाश्रम है। अतः प्रभु श्रीराम को इस आश्रम का त्याग नहीं करना चाहिए। इस पर सभी गुरूजन हामी भरते हैं किन्तु राम के लिए तो सभी धर्मों का त्याग और एक पिता का अनुशासन ही मान्य है। उन्होंने सत्य के लिए देह का त्याग किया । भरत को राज संरक्षण का भार दिया है। इसमें किसी कारणवश कोई परिवर्तन संभव नहीं है। सत्यसंध के पुत्रों को उन्हीं के समान होना चाहिए, वहाँ भरत के सहायक शत्रुघ्न हैं और यहाँ मेरे सहायक लक्ष्मण हैं। उन्होंने कैकेयी को भी अपने वचनों से परितुष्ट किया। इस काव्य ग्रंथ में जननी कैकेयी को भी अपने तर्क की साफगोयी से अपने कलंक प्रक्षालन का प्रभूत अवसर प्राप्त कराया गया है। वह राम के समक्ष अचेतावस्था को प्राप्त कर यह सिद्ध कर देना चाहती है कि वह भीतर से निष्कलंक है। श्रीराम स्वयं उसे उस रूप में शत प्रतिशत स्वीकार करते हैं।

4.1.घ रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'–

रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट' में जब श्रीराम 'चित्रकूट' की ओर चलते हैं तो एक बिना बुलाए शोभा यात्रा बन जाती है। जहाँ जन समूह एक भाव लेकर साथ–साथ चलना स्वीकार कर लेता है। उसे ही शोभायात्रा कहा जाता है। कवि कहता है कि–

दायें–बाएँ पीछे भी जन बँधे खिंचे–से आते।
रज्जुहीन आकर्षण–बंधन में अपने को पाते।।
बढ़ा आ रहा जन–समूह है बनकर शोभा यात्रा।
तृषित दृष्टियाँ पाती चलती दर्शन –जल की मात्रा।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–6)

राज्य से निर्वासित केवल तीन जन हैं–

रघुकुल तिलक दाशरथि आते संग वधू है सीता।
मंदाकिनी तट पर निवास ही है उनका मन चीता।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–6)

लेकिन उनके आने का संदेश पाते ही जनता हर्षित और पुलकित होती है। बाल, वृद्ध, मुनि सभी अपने सम्बन्धों को याद कर उनके स्नेह में लिपटे स्वागत में समुत्सुक हैं। जब श्रीराम से ये लोग मिलते हैं तो किस प्रकार वे विनम्रता के साथ मुनि के चरणों में शीश नवाते हैं और मुनि उन्हें आशीष देते हुए स्नेह से बाँहों में बाँध लेते हैं। सीता ऋषि पत्नी को प्रणाम करती हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण भी प्रणाम करते हैं। श्रीराम अपने से छोटे कोल–किरातों को भी प्रसन्नता के साथ जाकर भेंट करते हैं। इस प्रकार विधिवत, यथायोग्य सबका स्वागत–वंदन होता है। यहीं सामाजिक सम्बन्धों की कसौटी होती है। इसी प्रेम सम्बन्ध से नगर, वन में जाकर शिक्षित होता है। चित्रकूट के वन वैभव की प्रशंसा श्रीराम अपने मुख से करते हैं। राम का चित्रकूट में आगमन ऋषि के लिए हर्ष का विषय है और राम के लिए भी। गाँव, नगर, वन और समतल भूमि सभी जगह के मनुष्य एक होते हैं, लेकिन उनके व्यवहार अलग–अलग हैं। चित्रकूट में सबका व्यवहार एक जैसा हो जाता है। यह प्रभु श्रीराम के शील और चरित्र का प्रभाव है। परिवार और समाज के ऊँची–नीची श्रेणियों के बीच सम्बन्धों को उत्कर्ष की ओर ले जाना ही सामाजिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करना है।

चित्रकूट में राम के दर्शन हित आह्लादित होकर अयोध्या की सारी प्रजा अपना सब काम धंधा छोड़ भरत के पीछे राम के प्रेम में उन्हीं के समान मग्न होकर चली जा रही है। भाव है कि हम भी चौदह वर्ष यहीं काट देंगे। सबके मूल में राम के प्रति जो स्नेह और भक्तिभाव झलकता है, वही इन सबका आधार है। राम और भरत दोनों ऋषि के समक्ष अपने भावों को प्रकट करने में सकुचा जाते हैं। शिष्टाचार, विनम्रता का दर्शन उस समय होता है, जब राम सब माताओं से प्रेम भाव से मिलते हैं। इस मिलन भाव से उनके

अन्तःकरण की कोमलता और शुद्धता शिष्टता के साथ जुड़ जाती है। पारिवारिक सम्बन्धों में पिता के बाद ससुर का ही स्थान है। भरत और राम दोनों जनक को पिता के स्थान पर कहकर सब भार उन्हीं पर छोड़ देते हैं। जब कौशल्या आदि रानियाँ चित्रकूट में आ जाती हैं तो श्रीराम सेवा का समस्त भार उन्हीं पर छोड़ देते हैं और सीता बराबर उनकी सेवा में लगी रहती हैं। कोल किरातों के प्रति सबका व्यवहार मृदुल और सुशील है। केवट कितना प्रेम दिखाता है, यद्यपि उसकी शिक्षा उसे नहीं मिली है। वह उसके भीतर की श्रद्धा का प्रमाण है। 'रामचरितमानस' में केवट के दूर से ही अपने को अछूत समझ कर प्रणाम करने पर ऋषि उसे आलिंगन बद्ध कर लेते हैं। इस पर दोनों पक्ष का प्रेम व्यवहार प्रकाशित होता है।

लोक जीवन में क्या स्त्री, क्या पुरूष, क्या ऊँच, क्या नीच सबको समाज के सम्बन्ध में सोचने और निर्णय देने का अधिकार है। कैकेयी प्रसंग में जो राजनिर्वासन का दण्ड श्रीराम को भुगतना पड़ता है उसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें लोगों द्वारा सुनने को मिलती हैं। राजरानी सीता का कुश–आसन पर सोना, घड़ा लेकर नदी तट पर पानी भरने के लिए जाना, राजभोग पाने वाली को कन्दमूल का भोजन प्राप्त होना, प्रासादों में रहने वाली सीता का निर्जन वन में विचरण करना आदि की समीक्षा अपने–अपने ढंग से सभी करते हैं। सामाजिक दृष्टि से राजमाता बनने का लोभ सबके मन में कैकेयी के चरित्र को ओछा बना देता है। जनता को इस बात के लिए भी कष्ट है कि कहीं घर–घर में कैकेयी के समान माताएँ न पैदा हो जाएँ। जनता का लक्ष्य एक है। सबके मन में एक ही भाव है– 'मूढ़–बुद्धि माँ कैकेयी का हठ है कितना ओछा'।[4]

वस्तुतः राजभवन हो या सामान्य भवन मात्र स्वार्थ की बातें मन में घृणा को जन्म देती है। जैसे कैकेयी के चरित्र से सबकी सहिष्णुता की परीक्षा हो जाती है। चित्रकूट ने जैसे अयोध्या के हर पल की सुधि को नैसर्गिक बना दिया है। चित्रकूट का कण–कण कर्त्तव्य का बोध कराता है, और अयोध्या सदा अधिकारी के प्रति सजग रहता है। अतः राजभवन का मोह तो उसी को होगा जिसको धन का लोभ हो। यहाँ तो प्रकृति स्वयं पोषिका बनकर सबके लिए अनिवार्य उपभोग की वस्तुओं को मुहैया कराने के लिए सदा तैयार है। अतः विपिन में रहने वाले सभी चरित्रों को राजभवन का मोह स्मरण नहीं होता–

क्षमा करें अब राजभवन का मुझको मोह नहीं है।
विपिन अलम् है मुझे, यहाँ पर कोई लोभ नहीं है।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–19)

क्योंकि राजभवन की कथा करूणा से युक्त और अधिकारों से सम्बन्धित है। वन का जीवन निश्चित रूप से नगर जीवन से शांत और संतोषपूर्ण है। यहाँ सभी लोग नैसर्गिक जीवन जीते हैं। कहीं कोई दिखावा नहीं। जबसे आर्य श्रीराम ने चित्रकूट में अपना बसेरा डाला है तबसे सारे कोल किरात उनके अनुपम सेवक बन गये हैं। वे कन्द, मूल, फल ला लाकर देते हैं और राम से हुए मधुर सम्बन्ध की सराहना करते हैं। श्रीराम भी प्रत्युपकार कैसे करें, कैसे उनके सामने कोई उपहार प्रस्तुत करें, वे उनसे दबे–दबे

दिखायी देते हैं। वनवासी श्रीराम को हर पल मनोरंजन के लिए घने जंगलों के मध्य निर्मल कुण्डों से पूरित जलाशय का दर्शन कराते हैं। वहाँ मछलियाँ उछलती हुई दिखती हैं। वे आनन्द के साथ–साथ विस्मय जनक हैं। इस प्रकार पूरा वनवासी समाज राम को सुखी करना अपना कर्त्तव्य समझता है।

दिखा दिखाकर वन की शोभा कोल युवक सुख पाते।
राम किरातों को सनेह लख मन ही मन हरषाते।।
कभी राम को साग्रह अपने टोले में ले जाते।
क्षण में जुड़ती भीड़ राम की छवि को देख अघाते।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–22)

उन कोल–किरातों में कितनी विनम्रता है यह सहज ही दिखाई देता है। वे अपने को अकिंचन और लघुतम प्राणी समझते हैं। वे श्रीराम की मधुमय अमृत वाणी को सुनने के सदा अभिलाषी हैं। श्रीराम उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि तुमलोगों को अपने मन में हीन भावना नहीं लानी चाहिए। ऊँच–नीच का भेद सात्विक नहीं समय सापेक्ष है। मानव रक्त, मांस, मज्जा और आकृति से एक ही है। स्वार्थों के समुदाय ने मानव में जातिभेद को प्रवर्तित कर डाला है। कुल विशेष में जन्म लेने से कोई ऊँचा–नीचा नहीं हो सकता। इससे हृदय में विद्वेष की भावना उभरती है। मनुष्य की जितनी कम इच्छाएँ रहें उतना ही वह सुखी रह सकता है। शरीर के पोषण के लिए बहुत संचय की आवश्यकता नहीं है। मन में लाभ से लोभ को भी बढ़ावा मिलता है। वनवासियों का जीवन अपनी आवश्यकताओं में अति सीमित है। कृत्रिमता और आडम्बर ने मनुष्य को इतना भारी बना दिया है कि उसको कभी पूरी तरह झेल नहीं पायेगा। प्रकृति के समीप जो नर जितना तक रहे उतना ही सुखी होगा। जनता को इन भोले वनवासियों के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए। श्रीराम सच्चे अर्थ में उन्हें भूमिपुत्र की संज्ञा देते हैं। अगर किसी को सरलता की शिक्षा लेनी हो तो उन्हीं से ले सकता है। अपने मुँह से बड़ाई करते हुए श्रीराम कहते हैं–

भूमिपुत्र ही नहीं प्रकृति की तुम संतान दुलारी।
सरल भाव की शिक्षा तुमसे लेवे जनता सारी।।
मेरा है सौभाग्य तुम्हारे बीच यहाँ जो आया।
इतना सात्विक सुख नगरों में नहीं कभी था पाया।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–23)

इस प्रकार कवि यहाँ युग के सामाजिक जीवन–दर्शन को अभिव्यक्त करता है। चित्रकूट की रम्य स्थली में तीनों (राम, लक्ष्मण, सीता) का जीवन शिशुवत चिंता से हीन विपिन में बीत रहा है।

यहाँ कवि ने नगर के सामाजिक जीवन को अभिशप्त मानकर उसके समकक्ष वनवासी जीवन को सच्चे अर्थ में सुखी बताया है। अगर मनुष्य दुःखी है तो उसके दुःख का कारण वह स्वयं है। कोल–किरात जैसे एक ही परिचय में सबको अपना परिवार मानते हैं। उदार चरित्र के व्यक्ति वन क्या, संसार को भी

अपना कुटुम्ब मान लेते हैं। जिसके हृदय में दया, माया, मोह का अवतरण नहीं होता, वह उदार नहीं हो सकता। वह दूसरे को अपना नहीं बना सकता। कोल–किरातों का राम के प्रत्येक कार्य में सहयोग भाव रखना उनकी उदारता का परिचायक है। यही कारण है कि जब भरत चतुरंग–सेना के साथ चित्रकूट में आते हैं तो सेना को देखकर कोल–किरात ही सशंकित भाव से समाचार लाते हैं। इससे सहज अनुमान होता है कि श्रीराम के प्रति, उनके परिवार के प्रति, कोल–किरातों के मन में कितना प्रेम है। लक्ष्मण के धनुष–वाण सम्भाल लेने के पहले कोल–किरात भरत की सूचना लेकर पुनः पहुँचते हैं। भरत के नंगे पाँव आना, वशिष्ठ और माताओं को संग लेकर आना युद्ध की इच्छा से आने जैसा नहीं लगता। कवि ने श्रीराम का मिलन भी भारतीय परिवार के सुनिश्चित सम्बन्धों के आधार पर ही दिखलाया है।

लक्ष्मण का ऋषि–वंदना, श्रीराम का सबसे मिलना, पिता के शोक से व्यथित राम की अवस्था, दशरथ की मृत्यु का वर्णन, यह सब सामाजिक व्यवस्था को ही प्रकट करता है। समाज में सम और विषम दोनों स्थितियाँ हर मनुष्य के जीवन में आया करती हैं। सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख, यही जीवन की निरन्तर गति है। मनुष्य राजभवन में रहे या वन–प्रान्तर में अपने सामाजिक सम्बन्धों से वह कभी अलग होकर नहीं रह सकता। इसीलिए भरत अयोध्या से अकेले नहीं आए हैं। वे सारे समाज के साथ वहाँ उपस्थित हैं। हमारे षोड़स संस्कारों में अंतिम संस्कार है अन्त्येष्टि संस्कार। यह संस्कार व्यक्तिगत नहीं सामाजिक संस्कार है। यह संस्कार अनेक लोगों के सम्मिलित प्रयास का फल है। यही एक संस्कार है जिसमें समाज व्यक्ति के दुःख को धीरे–धीरे बाँटकर बिल्कुल हल्का कर देता है। अतः अयोध्या के बाद राजा दशरथ का एक और श्राद्ध चित्रकूट में होता है। जिसमें सभी प्रजा, पुरोहित, ऋषि और समस्त परिवार सम्मिलित है। पिण्डदान के समय पूज्य पिता दशरथ का स्थान रिक्त नहीं होता। वे अपने गुरूदेव से यह वरदान माँगते हैं कि पिता के अभाव की पूर्ति उन्हीं द्वारा हो, ताकि इस पूरे परिवार का उद्धार हो सके। आज श्रीराम के जीवन में एक दूसरी करवट आयी है। सुख और दुःख के बीच से यह जीवन दोनों ओर करवटें लेता चलता जा रहा है। वस्तुतः जहाँ स्नेह है वहीं स्वार्थ, सौन्दर्य और मर्यादा है।

इस कृति में सारे सम्बन्धों को एक जगह अवतरित होते देखा गया है। सास–बहू, गुरू–शिष्य, भाई–भाई, राजा–प्रजा, कोल–किरात, नगरवासी, ग्रामवासी सभी स्नेह के आंगन में एक साथ बैठकर सुख के झूले पर झूल रहे हैं। सबके हृदय का कालुष्य जैसे राम के वनवासी जीवन की झाँकी को देखते ही समाप्त हो गया है। राजभवन का प्रमाद वन के प्रमोद में बदल गया है। किसी को चित्रकूट विपिन काल में सूना नहीं लगता। जो भी बातें होती हैं वे खुलकर प्रकट होती हैं। प्रकृति ने जैसे हृदय की सभी वासनाओं को प्रतिपूरित कर डाली है। सीता की सभी बहनें अनेक प्रकार की चर्चाएँ महिलाओं के बीच कर रही हैं और इस प्रकार दिन का बीतना आसान हो गया है। एक दूसरे की सेवा, एक दूसरे के लिए त्याग भावना इस चित्रकूट को अयोध्या से भी अधिक सुन्दर बना देती हैं। प्रेम में मग्न प्रजा अब राम के लौटा ले जाने के संकल्प को याद नहीं रखती, वरन् उनका आदेश ही उन्हें शिरोधार्य है। इस प्रकार, दुबे कृत 'चित्रकूट'

में जिस सामाजिक परिवेश का वर्णन हुआ है, वह आधुनिक सामाजिक दर्शन के समस्त स्वरूपों को उद्घाटित करता हुआ सभी युगों की घटनाओं के सार हमारे सामने उपस्थित करता है। सच्चे अर्थ में यह जीवन शैली सभी देश–काल में अनुकरण योग्य है।

4.1.ड लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'–

लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित' में छः शिविरों की योजना सामाजिक मान्यताओं को महत्त्व देते हुए किया गया है। आदिवासी शिविर में निषाद के साथ युवाजनों का बड़ा ही तर्कपूर्ण वार्तालाप होता है, इसमें दो पीढ़ियों का विचार किस प्रकार संघर्षशील है, किस प्रकार दोनों के विचारों विभिन्नता हैं, दोनों दृष्टियों की भिन्नता यहाँ प्रतिपादित की गयी है। आदिवासी जन हाथों में जलती मशाल लिए हुए आधी रात बीतने के बाद भी विह्वल होकर कोलाहल कर रहे हैं। वे कितने निर्भिक और साहसी हैं, उनकी वाणी में ओज है। निषादराज के एक आह्वान पर वे युद्ध के लिए भरत को रोकने को तैयार हो जाते हैं। जूझारू बाजे बजने लगते हैं और अचानक निषादराज द्वारा भरत के प्रति मित्र भाव से एकत्रित युवाओं के मन में आक्रोश पैदा होता है और वे इन पर अनेक प्रश्नों का बौछार करते हुए उन्हें निरूत्तर कर देते हैं। अब यहाँ प्रश्न युवा पीढ़ी और प्राचीन पीढ़ी का आ जाता है। भरत राजा कैसे हो सकते हैं ? राजमहल में केकयी सेना कैसे आ गयी ? भरत अवश्य ही रामभद्र को यहाँ से भी खदेड़ने के लिए आ गए हैं। ये सारी बातें आधुनिक समाज दर्शन की देन है। यद्यपि यह शंका 'रामचरितमानस' में भी उठायी गयी है। लेकिन वृद्धजन शत्रु और मित्र की पहचान शकुन के आधार पर करते हुए अपनी आशंका को स्वतः निर्मूल करार दे देते हैं। लेकिन लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'चित्रकूट चरित' में तीन युवाओं को खड़ा कर कैकेयी के शासन में किस प्रकार विरोधियों के स्वर को बंद करने का प्रयास किया गया, यह दिखलाया है–

'इन वनवासी जन को देखें
घायल पीठ हुई साटों से जर्जर छिली,
रक्तमय काली पड़ी ऑखों की कोटर
करे हाथ लुंठित बेचारे।'

(चित्रकूट, पृ0सं0–27–28)

किस प्रकार पन्द्रह दिनों में कैकेयी ने अवध राज्य को नरक राज्य में तब्दील कर दिया है, उसका जीवन्त प्रमाण बनकर भरत के ऊपर शंकाकुल होकर यह समाज देख रहा है। आधुनिक परिवेश में भी हर आदमी एक दूसरें को शंका की दृष्टि से देखते हुए परिस्थितियों का आकलन कर रहा है, क्योंकि निषादराज को ये युवा ललकारते हैं तो वह भी अस्त्रों से निर्णय लेने के लिए तैयार हो जाता है। उसी समय वाल्मीकि आकर उन्हें समझा–बुझा देते हैं और उनका कहा दोनों मान जाते हैं, जिसका इस प्रकार निष्कर्ष है–

'देखोगे यदि राम भाव को

भरत राममय तुम्हे दिखेंगे।'[5]

तात्पर्य यह है कि भरत और राम के भेद में यदि अभेद दृष्टि डाली जाए तो दोनों में कोई अन्तर नहीं दिखता। संसार के सारे संघर्ष भेद बुद्धि के ही कारण हैं। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार–

सुमिरत भरतहि प्रेम राम को जेहि न सुलभु तेहि सारिस बाम को।

देखि दयाल दसा संबही । राम सुजान जानि जन जी ।।[6]

अन्य शिविरों में हैं– मातृ शिविर और जनक शिविर। इन दोनों के बीच में है भरत शिविर तथा अन्त में श्रीराम शिविर। मातृ शिविर के अन्तर्गत स्त्रियोचित भावनाओं का आदर और विश्लेषण किया गया है। वहाँ कैकेयी अपने भाव को प्रकट करती है कि दशरथ से किस प्रकार वरदान माँग कर राम को तपस्या हेतु वन प्रवास को भेजा बड़े ही गर्व के साथ प्रकट करती है और कुछ प्रतिवादों के बाद सभी राजमहार्षि और नागरिक उन्हें स्वीकार कर लेती हैं। भरत शिविर में माण्डवी और भरत का संवाद चलता है। माण्डवी अपनी सेवा और स्नेह से भरत के पछतावे को कम करने की कोशिश करती है। माण्डवी भरत के स्वागत भाषण के बीच में पहुँचकर बातें शुरू करती है जहाँ शत्रुघ्न भी पधारते हैं। यद्यपि भरत को परितोष नहीं होता किन्तु वहाँ भी युवजन, वाल्मीकि, निषाद आदि उनके मन की व्यथा को कम करने की कोशिश करते हैं। इसी प्रकार जनक शिविर में याज्ञवल्क्य, सुनयना, युवजन, दासी, जानकी, वाल्मीकि सभी राम के लौटाने के प्रश्न को लेकर तथा राम के निर्वासन में भरत का हाथ होने की संदिग्धता के भाव को समाप्त करने की कोशिश करते हैं। यहाँ भी सामाजिक बोध का स्तर विशिष्ट व्यक्ति से विश्लिष्ट करके दिखाया गया है। ऋषि–शिविर में सभी तरह के दार्शनिक विचारों को राज्यहित तथा समाजहित में कैसे विहित बनाया जाय, इस पर पूरा मंथन हुआ है। इसमें कौशिक, जाबाली, अत्रि, चार्वाक, भरत, जनक सभी भाग लेते हैं और अन्त में ये सारे विचारशील पुरूष एकत्रित होकर राम के शिविर में ही उसका अंतिम निर्णय पाने की कामना के साथ प्रयाण करते हैं।

इस प्रकार 'चित्रकूट चरित' में सामाजिक परिवेश का पूरा खयाल रखते हुए कवि ने विभिन्न पात्रों का सहारा लिया है। अयोध्या का समाज और चित्रकूट का समाज दोनों अपने–अपने भावों में रमे हुए हैं। आदिवासी जन उन भावों का अंततः अनुकरण कर सम भाव पर टिक गये हैं।

यह स्पष्ट है कि हमारे सामाजिक सम्बन्ध अपने उदात्त रूप में उच्चकोटि की संस्कृति का निर्माण करता है। इनसे जो जीवनमूल्य प्राप्त होता है, उसे समझने और करने से सबके मन में आनन्दानुभूति होती है। चित्रकूट पर केन्द्रित काव्यों में उस संदेश को बार–बार स्मरण कराया गया।

निष्कर्ष–

इससे स्पष्ट है कि 'चित्रकूट संज्ञक' काव्यों में पूरा परिवेश शांत, स्निग्ध और आश्रमिक जीवन से सर्वथा परिपूर्ण है जहाँ गृहस्थ भी जाकर वैराग्य धारण कर ले। चित्रकूट का मनुष्य और चित्रकूट की प्रकृति

दोनों ही स्वर्गिक है। वहाँ की शांति में अयोध्या की पूरी अशांति, द्वन्द्व, संघर्ष, चिन्ता और अपयश धुल कर समाप्त हो जाता है। प्रकृति सहायिका बनती है और जीवन के साथ पूरा सहयोग करती दिखाई देती है। वहाँ जाकर सभी साकेत के सुख को भूल जाते हैं, ऐसी भूमि राम के चरणों से रेखित होकर समस्त भूखण्ड को स्वर्गीय बना देती है।

साम्य एवं वैषम्य–

'चित्रकूट संज्ञक' काव्यों में वाल्मीकि और तुलसीदास दोनों की कथाओं से अलग हटकर एक विशेष पथ का अवलम्बन किया गया है। वाल्मीकि रामायण में भरत के आगमन पर उनकी सेना को देखकर वन्य जन्तुओं को भागते दिखाया गया है और श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण शाल वृक्ष पर चढ़कर भरत की सेना का अवलोकन करते हैं तथा उनके प्रति अपना रोषपूर्ण उद्‌गार भी प्रकट करते हैं। श्रीराम लक्ष्मण के रोष को शांत करके भरत के सद्‌भाव का वर्णन करते हैं। यह प्रसंग चित्रकूट संज्ञक काव्यों में कथा की दृष्टि से प्रारंभ में वर्णित है, क्योंकि बिना भरत के आगमन के चित्रकूट की कथा में गति नहीं आ सकती थी, इतने गहन विवेचन का अवसर नहीं मिल सकता था। लक्ष्मण के रोष का वर्णन यहाँ है और भरत की वनयात्रा काल में निषादराज गुह का अपने बंधुओं को नदी की रक्षा करते हुए युद्ध के लिए तैयार रहने का आदेश वाल्मीकि रामायण में है। मानस में भी इस परिवेश को कायम रखा गया है। वाल्मीकि रामायण में निषाद्‌राज भेंट की सामग्री लेकर भरत के पास जाते हैं और उनसे अतिथ्य स्वीकार करने के लिए अनुरोध करते हैं। गुह और भरत से जो बातचीत होती है उससे भरत का शोक व्यक्त होता है। तब निषादराज लक्ष्मण के सद्‌भाव और विलाप का वर्णन करते हैं। यह सुनकर भरत को मूर्च्छा आ जाती है और जगने पर वे गुह से श्रीराम आदि के भोजन और आवास आदि के विषय में पूछते हैं। 'रामचरितमानस' में भी भरत चित्रकूट जाने के मार्ग में जिन–जिन स्थानों पर उनके आराध्य ने सीता सहित विश्राम किया था, उन स्थानों की वे प्रदक्षिणा करते हैं और वहाँ की धूल को मस्तक पर लगाते हैं। जिन लोगों ने प्रभु को देखा था प्रणाम किया था, उन्हें वे गले से लगा लेते हैं और उनको वैसा ही सुख मिलता है जैसा राम के मिलने से होगा। किन्तु 'चित्रकूट' में वाल्मीकि 'रामायण' और 'रामचरितमानस' के अनुसार कहीं कैकेयी का वैसा वर्णन नहीं है जैसा 'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों में। यहाँ का परिवेश ही कुछ दूसरा है। अलग–अलग शिविरों का वर्णन है और उन सभी शिविरों में राम को लौटाने के लिए विभिन्न प्रकार के तर्क दिए जा रहे हैं और उनके मध्य कैकेयी भी है। किन्तु मानस में ऐसा कहीं कुछ नहीं है। वहाँ कोल–भीलों से समाचार पाकर सर्वप्रथम श्रीराम को बड़ा आनन्द आता है। कुछ देर के बाद चतुरंगिणी सेना के साथ भरत के आगमन की बात सुनकर वे कुछ सोचवश भी होते हैं। उसका समाधान इनके मन में इतना ही होता है–'समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महुँ साधु सयाने।।[7]

लेकिन लक्ष्मण के हृदय में चिन्ता है, अतः वहाँ नीति की बातें कहकर विषयी जीव की प्रभुता पा जाने के कारण किस तरह अपने असली शरीर को प्रकट कर देते हैं; ऐसा भरत भी कर सकते हैं और

उनका क्रोध भी वहाँ दिखाया गया है। 'मानस' में देववाणी होती है कि अनुचित उचित खूब समझ–बूझ कर किया जाना चाहिए। पुनः राम राजमद का वर्णन करते हैं किन्तु भरत पर सत्संग का प्रभाव है उनमें राजमद नहीं आ सकता। श्रीराम अपने मुँह से भरत की गुणगाथा कहते थकते नहीं। सभी माताओं के साथ 'मानस' में कैकेयी भी आती है, किन्तु वह सबके सामने संकुचाई हुई है। 'मानस' के अयोध्याकाण्ड में केवल भरत की प्रशंसा है। भरत को अब अधिक अपने विषय में कुछ कहना भी नहीं है। भरत चरित ही चित्रकूट में सर्वाधिक उजागर हुआ है। भरत के द्वारा नीति, प्रीति और उसकी प्रतीति सब कुछ व्यक्त है। अतः वहाँ कैकेयी को नये सिरे से सोचने और कहने का कोई अवसर नहीं मिला है जिसको राज्य दिया गया वह विनतीपूर्वक राज्य को लौटा रहा है। अब कैकेयी कह ही क्या सकती है। वह यह मानकर चलती है कि उसको ऐसा नहीं करना चाहिए था उसने दूसरे के कथन में पड़कर ऐसा कठोर निर्णय ले लिया। जहाँ उसको पुत्र और पति दोनों से हाथ धोना पड़ा। किन्तु आधुनिक काव्यों का परिवेश पूरा बदला हुआ है। सामाजिक और पारिवारिक प्रेम का अंकन कम हुआ है और आधुनिक सोच को ज्यादा महत्त्व दिया गया है। आलोच्य आधुनिक काव्यों में कैकेयी राम के निर्वासन और भरत के राजगद्दी पर आसीन किए जाने के औचित्य को सही ठहराकर न केवल सबका मुँह बन्द कर देती है, अपितु सबसे अपने कथन पर हामी भी भरवा लेती है। उसका तक्र बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। पहला यह कि राजा दशरथ को पुत्र वियोग में शापवश शरीर त्यागना ही था। ऐसा गुरू वशिष्ठ कथा सुनाकर उसका समर्थन करते हुए सबको संतुष्ट कर देते हैं राजा की मृत्यु के मूल में कैकेयी नहीं है। दूसरी बात यह कि कैकेयी रामराज्य कि स्थापना के लिए भरत को पूर्व पृष्ठाधार तैयार करने हेतु कुछ समय के लिए राजा बनवाती है।

सुख सम्पत्ति की नदी जैसे बहकर अयोध्यारूपी समुद्र में समाहित हो गयी। ऐसी समता किस प्रकार स्थापित हो सकती है। इसकी कल्पना सर्वप्रथम जैसे कैकेयी ने की हो। अतः ऐसा करना ही कैकेयी द्वारा स्थापित रामराज्य की प्रथम नींव थी। जिस विश्व धर्म की कल्पना की जा रही थी उसमें गृह धर्म, कुल धर्म, समाज धर्म और लोकधर्म की सारी ऊँची–नीची भूमिका समाहित हो गयी। किसी विशेष वर्ग के कल्याण से सम्बन्ध रखने वाले धर्म की अपेक्षा विस्तृत जन समूह के कल्याण से सम्बन्ध रखने वाला धर्म उच्चकोटि का होगा ही। क्योंकि उसमें व्यापकता अधिक है। यहाँ एक परिवार की रक्षा से बढ़कर समस्त मनुष्य जाति की रक्षा का भाव प्रबल हो जाता है। यही धर्म भक्तों के लिए भी श्रेयस्कर माना गया है और यही भावना धर्म का पूर्ण स्वरूप है, जिसमें सभी प्राणि पदार्थों की रक्षा हो पाती है।

अतः कैकेयी का तर्क सभी को सुखकर प्रतीत होता है। आधुनिक कवियों ने भी लगभग ऐसा वर्णन तो नहीं किया है किन्तु श्रीराम के मुख से यह अवश्य कहलवाया है कि मेरे निर्वासन की आज्ञा के लिए कैकेयी को कोई कटु नहीं कह सकता। यद्यपि भरत राम के लिए अत्यन्त प्रिय हैं किन्तु वे जननी कैकेयी को भी तिरस्कृत पीड़ित और क्षुब्ध नहीं देख सकते। सारांश यह कि कैकेयी व्यापक लक्ष्य को सामने रखकर अपनी सामाजिक विचार धारा को नवीन मोड़ देती है।

4.2. विवेच्य कृतियों में वर्णित राजनीतिक परिवेश–

सभ्यता के विकास के साथ मानव की व्यवस्थात्मक कल्पना राजनीतिक–विचारधारा से जुड़ी हुई है। इस कल्पना ने अभ्युत्थान के नये–नये मार्ग निर्दिष्ट किये हैं और मानव के मध्य प्रेम, सद्भावना, भाईचारा तथा न्याय को मौलिक अधिकारों से जोड़कर उसकी रक्षा के लिए व्यवस्था दी है। इसके लिए जिन नियमों का सृजन हुआ, मूल रूप से वे ही नियम राज्य, देश और राष्ट्र के नियम बने। इस प्रकार मानव के ईश्वर प्रदत्त मौलिक अधिकारों की रक्षा, राज्य, देश और राष्ट्र का प्रथम कर्त्तव्य बना। जीवन की सुरक्षा का अधिकार, स्वतंत्रता और सुख की खोज का अधिकार, अभिव्यक्ति और व्यापार का अधिकार, मानवोचित न्याय का अधिकार आदि की रक्षा के लिए सरकारें बनायी जाती रहीं। इनकी शक्ति जनता में निहित रहती है। इसी क्रम से राज्य या राष्ट्र के भौतिक उत्थान के लिए शासन व्यवस्था और राज प्रणाली का निर्माण होता है, क्योंकि मानव लिप्सा, हिंसा, अन्याय और पतन की ओर शीघ्रता से बढ़ता है। परिणामस्वरूप मनुष्य का जीवन, स्वतंत्रता, सम्पत्ति और धर्म सभी अरक्षित हो जाते हैं। भारतीय राज्य प्रणाली और शासन व्यवस्था का संकेत भारतीय ग्रंथों के साथ प्रायः प्रबंधकाव्यों में भी मिलता है। चूँकि, प्राचीन काल में राजतंत्र प्रणाली थी तथापि उसका स्वर लोकतंत्रात्मक था। वैदिक काल में सभा द्वारा राजा निर्वाचित होता था। परवर्ती काव्य में गणराज्य और संघ राज्य की प्रजातांत्रिक प्रणाली विकसित हुई, लेकिन उसमें सम्मान, आचार, व्यवहार धर्म और अधिकार का मौलिक रूप क्रमशः ह्रासोन्मुख होकर नाना प्रकार के धर्माचरणों में प्रतिफलित होने लगा। फलतः राजतंत्र का पुनरोदय होना स्वाभाविक था। 'राजा' शब्द का अर्थ होता है, रंजन करने वाला। अर्थात् प्रजा का सुख भलाई की देख–रेख करने वाला। इसी से राजा को पृथ्वी पर, परमात्मा का अवतार या प्रतिनिधि कहा गया है।

राजनीति धर्मनीति बनकर राजा–प्रजा को 'नहि अनीति नहीं कछु प्रभुताई' वाले न्याय से दोनों के हित को समान बना देती है। श्रोता और वक्ता के समान दोनों महत्वपूर्ण बन जाते हैं। प्रजा के बिना राज्य की और राजा के बिना प्रजा की कल्पना नहीं की जा सकती है। यह वन व्याघ्र–न्याय से भी सिद्ध है। जिस वन में व्याघ्र रहता है वह वन स्वतः पूर्ण सुरक्षित रहता है और वन है इसीसे वहाँ व्याघ्र अपना निवास बनाता है। अतः राज्य कैसे चले उसके लिए नीति का निर्धारण होता है जिस पर समानान्तर गति से राजा और प्रजा दोनों चलकर राज्य के नींव को मजबूत बनाते हैं। निम्न अवतरणों में आलोच्य कृतियों का राजनीतिक परिवेश का विवेचन किया जा रहा है।

4.2.क. विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'–

विद्याभूषण 'विभु' ने अपनी इस कृति में राजनैतिक परिवेश का विस्तृत वर्णन किया है। इसमें इन्होंने उस स्थान की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करने के क्रम में बस इतना ही कहा है राम के चित्रकूट आगमन के कारण वहाँ के पशु–पक्षी में प्रेम की वृत्ति व्याप्त हो गयी हैं। हिंसक पशु अपनी हिंसा को भूल गये हैं। कथा–क्रम स्रोत कथाओं से न होकर उस काल का स्मरण मात्र है।

4.2.ख. रामनन्द शास्त्री कृत 'चित्रकूट'–

रामनन्द शास्त्री कृत 'चित्रकूट' खण्डकाव्य करूण रस प्रधान है। अतः इसमें सात सर्गों में ऐसा कहीं अवसर नहीं दिखाया गया है, जिसमें राजनीतिक दृष्टि से इस घटना का परिदृश्य उपस्थित किया जा सके। इसके पंचम सर्ग में श्रीराम कैकेयी से कहते हैं कि हे माँ, जाग्रत अवस्था में कौन कहे स्वप्न में भी मैं निर्वासन के लिए कभी दोष नहीं दे सकता। मैं बन्धु भरत से भी कहता हूँ कि कभी तुम पर रोष नहीं करेंगे। मैं वनवास की अवधी तुम्हारे आशीर्वाद से व्यतीत कर अयोध्या लौट आऊँगा। मैंने दीन–दलितों के उस स्वरूप की कल्पना नहीं की थी जिसे यहाँ देखा है। उससे मेरा वैभव बढ़ा है, तूने माँ मेरी चीर निद्रा को तोड़कर जनता रूपी जनार्दन के ही रंग में मुझको रंग दिया है। यदि मैं युवराज भी होता तो इस स्वरूप का दर्शन नहीं कर सकता था। भोग का फल कटु होता है उससे रोग उत्पन्न होते हैं। काननवासी होकर मैं थोड़ा उद्योग तो कर लूँ। जब तक राजा साधारण लोगों सा जीवन व्यतीत नहीं करता है, जब तक उसे सुख–दुःख अनुभव नहीं होता, तब तक उसमें पूर्णता नहीं आ सकती। राजा के कमजोर होने पर आर्यधरा निशाचरों की भूमि बन जाती है। वे निःशंक होकर आतंक मचाना शुरू कर देते हैं। ग्राम–ग्राम और जनपद में देख रहा हूँ कि संकट छाया हुआ है।[8] मैं तो राजभवन में निष्क्रिय बनकर अपना पेट पाला करता था। अयोध्यापुरी के बाहर क्या हो रहा है, इसका कुछ भी ध्यान नहीं था। अगर हमारा साकेत स्वर्ग बना रहा तो क्या ग्राम और जनपद का गौरव एसा ही बना रहेगा। हमारे साकेत को स्वर्ग सदृश बनाने के मूल में ये गाँव ही तो हैं जो धन–धान्य से परिपूर्ण हैं। किन्तु मैं भूतल के कष्ट निवारण के लिए साकेत के मोहपाश में बँधने वाला नहीं हूँ। ये ग्रामवासी अनाहार रहकर श्रम करते हैं, आगतों का स्वागत करते हैं। भला इनके समान कौन तपस्वी होगा। इनके खेतों में गेहूँ और जौ पैदा होता है, किन्तु वे साग–पात से ही अपना उदर–पोषण करते हैं। ये अनपढ़ हैं, इनकी शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं हैं। इनकी आँखें धसी हुई हैं, गाल पिचके हुए हैं, ये रोटी के लिए भी मुँहताज है, मिठाई की बात कौन करे। इनके बच्चों को पोषण हित दुध भी प्राप्त नहीं होता। इनके छप्पर आँधी में उड़ जाते हैं। वर्षा में दीवारें गिर जाती हैं और अवध की मीनारें इन्हें देखकर अट्टहास करती हैं। इन पर गर्मी, सर्दी सबका प्रभाव है। ये साधनहीन हैं।[9]

श्रीराम किसानों के जीवन का दर्दनाक चित्रण विशद रूप से करते हैं और बतलाते हैं कि इन जटिल समस्याओं का समाधान इस निर्जन में मैं स्वयं ढूँढ़ रहा हूँ। किसानों के वर्ग के अनुरूप वन में एक उपेक्षित वर्ग है जिन्हें कोल–किरात कहा जाता है। फिर शबर और निषाद जिनकी लोग छाँह भी छूना नहीं चाहते।[10] उनका भी अपना विस्तृत राज्य है।

इन पँक्तियों में एक होनेवाले युवराज के मन के भाव का चित्रण कवि ने किया है जो वे प्रजा के हित में अपने जीवन की समस्त वैभविक आकांक्षाओं को छोड़ देते है। राजा के कर्त्तव्य और दायित्व का ऐसा उद्‌बोध अन्य स्थान पर प्राप्त नहीं होता। अतः श्रीराम इस वन्य जीवन में कोल–किरातों के साथ रहकर सच्चे प्रेम को प्राप्त करना चाहते हैं। जंगल से दूर उनका राज्य था, जहाँ इन पीड़ितों की पुकार

पहुँच नहीं पाती थी। इस काव्य में प्रजाजनों के विचार नहीं आए हैं। केवल राजा दशरथ के मरण के दृश्य और उसके बाद की घटना का कारूणिक चित्र उपस्थित करना ही इस काव्य का उद्देश्य है। यह अवश्य है कि प्रजा उन्हें कितना अपना प्रेम देती थी और उनके सुरधाम जाने के बाद घर–घर में कितना रूदन छाया हुआ था इसका वर्णन उनकी प्रजा वत्सलता का परिचायक है। उनके राज्य में भोजन, भजन और भ्रमण को छोड़कर मानो प्रजाजनों को और कोई कार्य ही नहीं था।[11]

इसका अर्थ है प्रजाजन उस चक्रवर्ती राजा की छत्रछाया में पूर्णशांति और सुख का उपभोग कर रही थी। ऐसे राजा बहुत थोड़े होते हैं जिनकी प्रजा संतुति तुल्य हो। वे विश्वविदित गुणों की गरिमा से मंडित हो। त्याग, तपस्या और वैराग्य के बिना ऐसे राज्य चल नहीं पाते। जो अपने पुण्य को शीश पर रखकर चलते हैं वे कभी मार्ग से भटकते नहीं। राजा दशरथ का राज्य भी कुछ वैसा ही है। चूँकि सम्पत्ति और राज्य पुण्यात्माओं और धर्मशीलों के पास ही स्थिर रहता है। राजा दशरथ के समान पुण्यशील राजा कौन होगा जिसके लिए पूरी प्रजा शोक मग्न है, राम–लक्ष्मण और भरत जैसे जिनके पुत्र हैं। जिनके राज्य में शांति और सर्वत्र सुख व्याप्त है। जहाँ हर व्यक्ति में सदाचार और परोपकार विद्‌यमान है। इसलिए चित्रकूट की सभा भी दिवंगत राजा के जीवन उनके राजकाज और उनकी की हुई प्रतिज्ञा को बार–बार स्मरण कर उसी मार्ग पर चलने का प्रयत्न और संकल्प करती है। उनकी कार्य पद्धति ही जैसे अयोध्या का भावी संविधान राज्य के निर्देशक तत्त्व बनकर वहाँ स्थित है।[12] राघव के लिए मंत्रियों के लिए राजा दशरथ के उद्‌गार केवल रूलाने वाले नहीं अपितु भावी कर्म के बहुआयामी शिलालेख हैं। उनकी बातों को विदेह वशिष्ठ आदि सभी राज्यधर्म के अंग के रूप में ग्रहण करते हैं। जब भरत को चित्रकूट से लौटाया जाता है, उस समय उनको श्रीराम के आदिवासियों से प्रेम और वात्सल्य भाव को देखकर एक बहुत बड़ी सीख मिलती है। वे जैसे चित्रकूट में जाकर राजधर्म की शिक्षा स्वयं पा गये हैं। वे बिल्कुल किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। भाई के राज्यत्याग से उनके मन में भी वही त्याग, भाव उत्पन्न होता है–

राज्य अरे तू त्याज्य सदा है,
तू करता है नित्य अनर्थ;
तेरे कारण जगतीतल में
रक्त–पात होता है व्यर्थ।
सत्ताधारी सत्ता पाकर
अपने को जाते हैं भूल,
वे न बुधों की बात मानते
कार्य सदा करते प्रतिकूल।

(चित्रकूट, पृ0सं0–119)

इस प्रकार चित्रकूट में राज्य, राजा, प्रजा और दोनों के अधिकार और कर्त्तव्य की मीमांसा रामराज्य के अनुरूप ही की गई है। भरत हों या राम, दोनों राज्याधिकार से अधिक अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेष्ट हैं क्योंकि राज्याधिकार कोई सामान्य कर्त्तव्य नहीं है।

4.2.ग. मोहनलाल गुप्त कृत 'चित्रकूट'–

कवि 'चातक' जी का 'चित्रकूट' सर्गों में विभाजित नहीं है। इसमें राजनीतिक विचार बहुत खुलकर प्रकट नहीं हुए हैं। किन्तु चित्रकूट को लक्षित करते हुए उन्होंने राज्य के सम्बन्ध में कुछ स्फुट बातें कही हैं। जैसे–

परित्याज्य है व्यक्ति वंश–हित,
और राजहित है परिवार,
मातृभूमि के लिए किन्तु है
यह सम्पूर्ण देश बलिहार।
x x x
पुत्र धर्म क्या ? सर्व धर्म तज
एक पितृ शासन पालन।
सेवनीय क्या ? नहीं सौख्य,
सुख एक सत्य का परिपालन।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–58)

तात्पर्य यह है कि व्यक्ति का हित वंश के लिए नहीं देखा जाता। वह परित्याज्य है। ऐसा हमारे शास्त्रों में भी वर्णित है। यहाँ पुत्र धर्म भी सारे धर्मों को छोड़कर एक पिता के शासन पालन में केन्द्रित माना गया है। उसी एक सत्य के परिपालन से सारे सुख सेवनीय बन जाते हैं। चातक जी का निर्देश है–

पर सत्पुत्र कहे जाने का
उसी पुत्र को है अधिकार
रची भाव, आकृति द्वारा जो
करे पितृ–शासन स्वीकार।

(चित्रकूट,पृ0सं0–59)

पितृ–शासन के अन्तर्गत पिता द्वारा शासन के लिए जो कार्य किए गए हैं, उससे राजा प्रजा को उनके पुत्र से कम महत्त्व नहीं देता। अतः इस भाव से युवराज और प्रजा एक हो जातें हैं। श्रीराम का सुख राजा दशरथ के समान भेदरहित है। श्रीराम चौदह वर्ष तक भरत को राज्य देकर उनकी परीक्षा ले रहे हैं। उनका मन–प्राण अवध में ही रहेगा। पिता की थाती को वे बड़े ही यत्न के साथ संजोकर रखना चाहते हैं। वे भरत को सांत्वना देते हुए कहते है कि मैंने एक दिन भी अवध को त्यागा नहीं है।

कैकेयी जैसी माता के प्रति उदासीनता और आक्रोश का भाव भरत के मन में है। जो माता अपने पुत्र को योग मार्ग के बदले में भोग मार्ग दिखलाने की अभिलाषी हो। अगर यह भोग मार्ग अभीप्सित नहीं होता तो पति को स्वर्ग जाने की कोई जरूरत नहीं थी। वह स्वयं पश्चत्तप करती हुई इन बातों को कहती है। इस प्रकार, 'चित्रकूट' काव्य में प्रायश्चित्त के क्षणों में भी राज्य के प्रति सबके मन में उदात्त भाव है। राज्यकाज को सबसे ऊपर रखा गया है।

4.2.घ. रामेश्वर दयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'–

रामेश्वर दयाल दुबे कृत 'चित्रकूट' में सभी पात्रों के मुख से राजा और राज्य की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। राज्य के समक्ष व्यक्ति का कद बहुत ही छोटा है। श्रीराम चित्रकूट में अयोध्यावासियों को बहुत समय तक रखना नहीं चाहते हैं। इस काव्य में कैकेयी के लांछन को धोने का ही अधिक प्रयास किया गया है। अयोध्यावासियों को कोल–किरात अपने जीवन और आचरण से शिक्षा दे रहे हैं–

यदि गिरिजन की भाव भव्यता थोड़ी भी पा जावें।
कथा कथित नागरिक आज के सहज सभ्य बन जावें।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–41)

श्रीराम गुरू के समीप संकुचाते हुए कहते हैं–

भरत सहित परिवार यहाँ है,
वहाँ अयोध्या सूनी।
यहाँ विपिन के कष्ट सहे सब
यह चिन्ता है दूनी।।
जो जिसका कर्त्तव्य उपेक्षित
कभी न होने पावे।
और प्राप्य जिसका जो
वह भी सहज भाव से पावे।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–42)

राम कहते है कि भावना से कर्त्तव्य बड़ा होता है। भावना पक्षपात को जन्म देती है लेकिन कर्त्तव्य की तुला पर दोनों समान बन जाते हैं। चित्रकूट में राम हैं पर प्रजा तो पूरी अयोध्या में है। चित्रकूट में सहज भाव से सबकी सेवा संभव नहीं है। अतः यह कार्य राम की सेवा करने वाले अनुपम सेवक भरत ही सँभाल सकते है। शत्रुघ्न तो यहाँ तक कहते हैं कि–

नष्ट भ्रष्ट हो जाय सहज ही राजतंत्र यह सारा।
स्वार्थ अंध ही जिसने जग में पातक पाश पसारा।।

अवध प्रजा चुन लेगी अपना गणपति राज्य करेगा।
राजवंश का ही शासन हो अब यह नहीं चलेगा।।
देख चुकी जनता दृग सम्मुख राजतंत्र की लीला।
नीति न्याय भी स्वार्थ सामने बन जाता है ढीला।।
अच्छा है जनतंत्र चले अब मिटे राजसी सत्ता।
जाग्रत जग में जनमत की महिमामयी महत्ता।

(चित्रकूट,पृ0सं0–45)

यहाँ शत्रुघ्न पूरे राजतंत्र को ही स्वार्थांध बताकर अवध की प्रजा को अपना गणपति चुन लेने की बात कहते हैं। राजवंश का ही शासन चले कोई आवश्यक नहीं। राज्य को उत्तम ढंग से चलना चाहिए। राम का मानना है कि सत्ता का मद तो उसी को छलता है जिसका मन दुर्बल हो। अगर मन संयमी नहीं है तो सभी काल में दोनों अनुयायी बन जाते है, चाहे राजा हो या गणपति। अतः भावावेग में बहकर हमें कर्त्तव्यों से अपना मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। सेवाकार्य सरल नहीं होता। सेवक को शिव के समान सदा विषपान करना पड़ा है। वही शासक सफल है जो स्वयं पर शासन करें–

शासक वही सफल जो करता प्रथम स्वयं पर शासन।
सदुपयोग करता प्रजार्थ ही प्राप्त प्रजा से जो धन।।
राजनीति में नीति मुख्य है प्रीति प्रतीति सहायक।
न्याय दृष्टि में सब समान हैं नायक हो या पायक।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–46)

राज्य के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत दीन, अपंग ही सेवा के विशेष अधिकारी हैं। बालक और वृद्ध आदर पावें तथा नारियों का सम्मान हो। तथाकथित जो नीच हैं उनके स्वाभिमान भी आहत नहीं होना चाहिए। अतः यह राज्य की अर्थवत्ता का लक्षण है। इसमें राजा को सेवा और संरक्षा के अतिरिक्त और किसी का अधिकार प्राप्त नहीं है–

मानव धर्म धर्म है केवल और सभी कुछ भ्रम है।
सब पर प्रेम दुलार लुटाना यही धर्म का क्रम है।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–61)

मानवधर्म ही राजधर्म है क्योंकि मनुष्य और उसकी मानवता की रक्षा करना राजा का धर्म होता है। जनक, वशिष्ठ आदि सभी विवेकी पुरूष स्वीकार करते हैं और राजा के त्याग, तपस्या की सराहना करते हैं। 'मानस' के अयोध्याकाण्ड में जब राम को युवराज पद पर अधिष्ठित करने का समय आता है तो उन्हें गुरू को बुलाकर उपदेश करने की बात आती है। उसका पहला पाठ है–'राम करहुँ सब संयम आजू'[13] अर्थात् राज्य कार्य सेवा के लिए है, भोग के लिए नहीं। अतः स्वयं पर संयम करके ही राज–कार्य किया जा

सकता है। इस प्रकार विवेच्य कृतियों में जिस राजनीतिक परिवेश की प्रस्तुति हुई है उसमें राजतंत्र के साथ उसका लोकतांत्रिक स्वरूप भी प्रकट हुआ है। प्रजा के हित में कार्य नहीं करने वाला राजा सर्वत्र त्याज्य है।

4.2.ड लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'–

आधुनिक युग में जो 'चित्रकूट संज्ञक' काव्य लिखे गए उनके राजनीतिक चिन्तन में पर्याप्त परिवर्तन और परिवर्द्धन किया गया। 'चित्रकूट चरित' में लक्ष्मीकांत वर्मा अनेक परिवर्तनों को स्वीकार करते हैं। राज्य राजा के सम्बन्ध में इस कृति में आधुनिक युग के चिन्तन के अनुरूप विचार व्यक्त किया गया है। यहाँ राम राज्य के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि 'राज्य किसी का नहीं कभी भी वह होता सदा प्रजा का'[14]

यदि प्रजा नही हैं तो राजा का अभिधान किसको मिले, अगर वृक्ष नहीं तो वन की संज्ञा किसे दी जाए। मात्र व्यावहारिक सुविधा और व्यवस्था, नियम, नीति को बनाए रखने के लिए ही राज–काज का दायित्व राजा पर सौंपा जाता रहा है। प्रजा के घरों में हुई चर्चा को सुनकर राम ने अपनी प्राणप्रिया सीता को गर्भावस्था में जंगल भेज दिया था। यह है प्रजा के विचारों का आदर और एक ऐसा आंतरिक अनुशासन जिसके भीतर राजा स्वयं रहकर अपने नियमों का आदर्श उपस्थित करता है। अतः प्रजा राजा के प्रत्येक आदेश को मानती है। उदाहरण स्वरूप 'चित्रकूट चरित' में देखा जाता है कि दशरथ द्वारा कैकेयी को दो वर दिए गये जिसकी समीक्षा आदिवासी जन करते हैं। उसी वर का यह परिणाम था कि राम राज्य से निर्वासन लेकर वन गमन को गयें। उस आदेश का विरोध करते हुए आदिवासी युवक कहता है–

'बात व्यक्तिगत थी अन्तःपुर की,
वचन दिया था पति ने अपनी पत्नी को,
x x x x
रंगमहल राजमार्ग पर नंगा नाचे?
क्षम्य नहीं हो सकता राजन।

(चित्रकूट, पृ0सं0–21–22)

यहाँ नीतिशास्त्रों में जो बातें तात्त्विक दृष्टि से स्वीकृत हैं उन्हें एक आदिवासी युवक व्यक्त करता है। वह अपने को उस राज्य का एक बिम्ब मानकर ही पूरे बातों की व्याख्या करता है। राजा राज्य का संरक्षक मात्र है। संरक्षक स्वामी बनकर अन्यायपूर्ण आदेश दे डाले, स्वयं स्वामी बन जाए, यह अपराध है। भरत का अवध का राजाधिकारी होना यह आदिवासी युवक के लिए अमान्य है। सभी युवक यही चाहते हैं कि अवध राज्य के सिंहासन पर राम ही विराजमान हों। राजा का निर्वाचन करना प्रजा के अधिकार क्षेत्र में आता है। इसीलिए वे कैकेयी और भरत के शासन से विक्षुब्ध होकर विद्रोह करते हैं। अवधवासियों को बाहर कर कैकय सेना को राजमहल का अन्तःपुर सौंप देना यह अयोध्या के मर्यादा के अनुरूप नहीं है। इस बात को देश की युवापीढ़ी नहीं सह पाता जिससे प्रजा में घोर अनास्था व्याप्त हो जाती है। इसीलिए वह कहता है कि– भरत का सेनाओं के संग चित्रकुट आना उन युवाजन को उचित नहीं प्रतीत होता है। प्रजा राजा

के प्रति असीम आस्था रखती है। जब प्रजा को उसकी आस्था पर ठेस लगती है तो उनके भीतर विद्रोहाग्नि की ज्वालामुखी फूट पड़ती है। इसीलिए समवेत स्वर में कुछ कटु यथार्थ की वे युवक निन्दा करते हैं। ये सभी असभ्य हैं, इनका सीधा सम्बन्ध प्रकृति से है लेकिन ये राज्य और राजा के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हैं–

'विद्रोह करेंगे
हम वनवासी
हम स्वतंत्र हैं
वनभूमि ये धरती सारी
x x x
हम ललकारेंगे सेना को
हम मारेंगे एक–एक कन

(चित्रकूट,पृ0सं0–23)

ये वनवासी कायरता से नहीं वीरता से सबकुछ प्राप्त करना चाहते है। इनमें अपना अधिकार अधिक नहीं बोलता जितना कर्त्तव्य बोलता है। 'युद्ध करे, हम जीते प्रभुको/तभी राज्य वैभव यह सारा/बन पायेगा योग्य हमारा।[15] ये आदिवासी अन्याय सहन नहीं कर सकते। वे अपने इष्टदेव से भी हुई भूल को स्वीकार नहीं कर सकते। भूल यह उन्हीं से हुई है जो उन्होंने अपने प्रति किये गये अन्याय को स्वीकार कर लिया। वे राम की भूल को सुनिश्चित करते–

"भूल राम से हुई सुनिश्चित
अन्याय कहीं हो
कोई भी करता हो
वह त्याज्य, निंद्य, बहिष्कृत
वह स्वीकार योग्य नहीं होता है।"

(चित्रकूट, पृ0सं0–27)

इस काव्य में राजा या किसी सुयोग्य शासक में किन–किन गुणों का होना आवश्यक है, इस पर भी विस्तार से चर्चा हुई है। कैकेयी की मान्यता है कि प्रशासक को वीर होने के साथ–साथ भक्त भी होना चाहिए। इसीलिए कदाचित् उसने भरत को राजा बनाने के लिए कलंक के इस पहाड़ को युग–युग तक अपने सिर पर धारण करना स्वीकार कर लिया। उसकी यह स्पष्ट घोषणा है कि–

भक्तिभाव से सहज समर्पित,
राजा ही हो सकता रक्षक।
भक्ति भाव यदि नहीं उसमें,

तो वह निश्चय होगा भक्षक।

मैंने सोचा वीर भरत सा

भक्त प्रशासक अच्छा होगा।

मिले विश्व को विश्व प्रशासक

भव विरक्त जो।

(चित्रकूट,पृ0सं0–44)

भरत भी मानते हैं कि राजा को प्रजा के सम्बन्ध में सदा सोचते रहना चाहिए, प्रजा यदि प्रसन्न नहीं है तो राजा कि विशेषता वहीं समाप्त हो जाती है। भरत चूँकि सेवक हैं और वे अपने प्रभु श्रीराम की सेवा में समर्पित हैं, अतः उन्हें राजा नहीं होना चाहिए–

राजा भरत नहीं हो सकता

इसका प्रण है प्रभु की सेवा

राजा वह है जो सक्षम हो

योग क्षेम का जो हो वाहक।

(चित्रकूट पृ0सं0–76)

महाराजा जनक जैसे ज्ञानी और तपस्वी भी अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर यही निष्कर्ष देते हैं कि राजा के लिए तपस्वी होना अनिवार्य है–

राजा बनने का अधिकारी

केवल वह है

जो हो स्वयं तपस्वी

(चित्रकूट, पृ0सं0–93)

इन सदुक्तियों के आधार पर यह प्रमाणित है कि कवि के अनुसार राजा राज्य का स्वामी नहीं संरक्षक होता है। इसके लिए उसमें त्याग भाव, वीरता, आत्मसंयम और प्रजा के सुख को वहन करने के अनेक गुणों का होना आवश्यक है यदि ये गुण उसके भीतर नहीं हैं तो उनके अभाव में राजा भोगी हो सकता है और राज्य संरक्षण में सर्वथा असमर्थ हो सकता है। प्रजा के समक्ष इस प्रकार का उदाहरण दशरथ के रूप में उन्हें प्राप्त होता है जिन्हें वे उद्धृत कर अपनी शंका को सम्पुष्ट करते हैं–

जान रहा हूँ भरत साधु है परम तपस्वी,

महाराज जब हुए मोहवश

क्या आशंका भरत न होंगे?

सत्ता पाकर कौन क्या होगा

कहना सुनना बड़ा कठिन है।

(चित्रकूट,पृ0सं0–90)

इसीलिए प्रजा राम को ही राजा के रूप में वरण करना चाहती है। उनके बिना सुशासन या रामराज्य लाना बड़ा कठिन है। जब प्रजा ऋषि–मुनियों के समझाने से आश्वस्त हो जाती है कि राम और भरत में कोई भेद नहीं है। भरत अन्ततः राम के भक्त और सेवक हैं, तभी वह भरत का वरण करती है। निषादराज कहते हैं कि–

उठो भरत मैं वृद्ध और यह युवजन,

वरण कर रहे तुमको इस क्षण

एक तपस्वी राजा बन

कर सकता है राज्य अवध का।

(चित्रकूट, पृ0सं0–93)

शासक अच्छा होने पर राज्य में शांति और प्रजा में सुख का वातावरण विकसित होता है। इसके विपरीत कुव्यवस्था से अशांति उत्पन्न होती है। प्रजा पर जब प्रजा पर उत्पीड़न बढ़ता है तो उसमें विद्रोह की ज्वाला उमड़ पड़ती है। दशरथ की मृत्यु के बाद का पन्द्रह दिनों का शासन प्रजा में भरत के प्रति विद्रोह भाव जगा देता है। किन्तु इनके मन में यदि सघन विद्रोह जगा है तो अवश्य इसकी कोई पृष्ठभूमि है। भरत के अनुसार विद्रोह का मूल कारण माता कैकेयी द्वारा बोया गया अग्नि बीज है जिससे विद्रोह पनप रहा है। विद्रोह की समाप्ति के लिए जनक भरत को राजकार्य सँभालने की राय देते हैं। साथ ही वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि प्रजा को वस्तुतः राम या भरत नहीं बल्कि उसे अच्छा शासक चाहिए–

प्रजा राम भरत क्या जाने

उसे चाहिए अच्छा शासक

(चित्रकूट,पृ0सं0–89)

अच्छे शासक और सुव्यवस्था के अभाव में प्रजा विद्रोह करने के लिए कटिबद्ध होती है। कभी–कभी विद्रोह को राजदण्ड के द्वारा दबा दिया जाता है। यह दण्ड व्यवस्था का ही एक रूप है। इसकी भी आवश्यकता शासन के लिए होती है। राज्य में सुव्यवस्था स्थापित कर ही कोई राजा प्रजा को सुख, शांति प्रदान कर सकता है। मुख्यतः युवजनों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या यह है कि–

भरत राज्य को त्याग चुके हैं,

राम राज्य को त्याग चुके हैं,

जीवित है रानी मझली।

कैकेय सैनिक अपनी बर्बर

हिंसा लिए बने शासक हैं।

(चित्रकूट पृ0सं0–91)

इसलिए वे स्वयं उठ खड़े हुए हैं, वे चाहते हैं कि भविष्य में अवध राज्य के शासन के सम्बन्ध में किसी तरह के भी निर्णय लिए जाएँ उनमें उनकी भी भागीदारी हो। चूँकि, उसी निर्णय पर ही उनका और प्रजा जन का भविष्य निर्भर है। उनका स्वभाव विद्रोही नहीं है लेकिन वे न्याय के लिए विद्रोह करने पर उतारू हैं, बिल्कुल डटे हुए हैं–

कैसी व्यंग्य भरी स्थिति है राम भरत दोनों है त्यागी
देख न पाते पीड़ा जन की।

(चित्रकूट पृ0सं0–91)

इस बात पर जनक भी आश्वस्त भाव दिखलाते हैं और उनके संशय को असत्य नहीं मानते। पर आज देश को इसी प्रकार के शासक की आवश्यकता है जो भोगी नहीं बल्कि तपस्वी और त्यागी हो। हो सकता है राम और भरत के द्वंद्व की वर्तमान स्थिति, उसी उद्देश्य की प्राप्ति की एक प्रक्रिया हो। वे कहते हैं–

सत्य तुम्हारा संशय युवजन।
किन्तु इसे तुम यों भी देखो
माँग देश की, युग की
हो सकती ऐसी
जिसमें राजा त्यागी ही हो
उसी प्रक्रिया का यह क्रम हो।

(चित्रकूट,पृ0सं0–91)

कवि ने राजा और प्रजा के पारस्परिक सम्बन्ध पर भी विचार करने का अवसर निकाल लिया है। उनका मानना है कि राजा प्रजा के मध्य सौमनस्य और एक दूसरे के प्रति अटूट विश्वास आवश्यक है। किसी भी काल में विश्वास शास्त्र अथवा बल के आधार पर नहीं पाया जा सकता। विद्रोही आदिवासी युवजन वाल्मीकि के साथ भरत से मिलने के लिए भरतशिविर में आते हैं। चूँकि आदिवासी युवजन के तेवर गरम हैं, उनकी आस्था पर चोट लगी हैं और वे शंका से ग्रस्त हैं। अतः शत्रुघ्न भरत को बिना अस्त्र लिए उनसे मिलने जाने को मना करते हैं। किन्तु भरत खाली हाथ ही उनसे मिलने के लिए शिविर के बाहर जाते हैं। उक्त अवसर पर भरत का कथन राजा प्रजा के सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है–

नहीं काम आयुध का इस क्षण
जन शासक जन से जब मिलता
काम नहीं आयुध का होता;

हम दोनों समान धर्मा हैं
राजा प्रजा के बीच शस्त्र मत लाओं
शास्त्र हमारा रक्षक होगा।

(चित्रकूट ,पृ0सं0–71)

यहाँ दो बातें स्पष्ट होती हैं पहली बात तो यह कि राजा–प्रजा का सम्बन्ध शस्त्र के आधार पर नहीं अपितु शास्त्र के आधार पर स्थापित होना चाहिए और दूसरी बात यह कि राजा और प्रजा दोनों का धर्म समान होता है। समान धर्मों के लिए पारस्परिक विश्वास आवश्यक है। भरत के अनुसार प्रजा–राजा का शरीर है, फिर अपने शरीर से क्या डरना है। सच्चा राजा तो प्रजा का सेवक होता है। अतः प्रजा उसकी स्वयं रक्षा करती है। प्रजा में से ही तो रक्षक चुने जाते हैं। प्रजा ही तो 'कर' देकर राजा की धन की संरक्षा करती है। अतः राजा और प्रजा का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। राजा कब तक अपनी रक्षा शस्त्र के बल पर कर सकेगा। भरत कहते हैं–

मैं तो मिलने जाता इस क्षण
अपने ही प्रजा जनों से,
अपने ही शरीर से शंकित
अपने ही से डरना
महा रोग है
मेरी रक्षा प्रजा करेगी
मैं हूँ सेवक।

(चित्रकूट,पृ0सं0–71)

जब दो राज्य या दो राजा राजनयिक होकर एक दूसरे से मिलते हैं तब ऐसी स्थिति में उनके साथ आयुध रखे जाने का विधान है। स्वयं भरत ने भी इसकी पुष्टि की है–'राज नियम का स्वरूप यह/बरते जाते तभी मिले जब दो राजा राजनयिक हो।'[16]

इस प्रकार आलोच्य कृति 'चित्रकूट चरित' में राज्य और राजा, राजा और प्रजा, राजसत्ता और शासक, राजा कैसा हो, इस पर बड़े ही सूक्ष्मता से विचार किया गया है। ये सभी विचार आधुनिक चिन्तन के अनुरूप हैं। इस प्रकार, 'चित्रकूट चरित' काव्य में राज्यतंत्र में भी लोकतांत्रिक विचारों का समावेश कर एक उच्च कोटि की समन्वय पद्धति अपनाई गई है। यह पद्धति त्रेता की विचारधारा से बहुत मिलती–जुलती है, जहाँ राजा प्रजा की बातों को सुनने के लिए रात में हर घर की दीवारों से कान लगाकर उनके सुख–दुःख को जानने की प्रबल इच्छा करता है। चूँकि, प्रशासन का सम्बन्ध राजा से होता है और 'कर' लेने का एक मात्र अधिकारी राजा ही होता है। अतः दोनों के हित की रक्षा करना दोनों को कर्त्तव्य है। वर्माजी ने इस प्रसंग को एक दर्शन का स्वरूप प्रदान किया है और प्रजा जिस बात को

सोचती है उसको राजा और राजपुरोहित दोनों समवेत स्वर से अनुमोदित करते हैं। आपस्तंभ से लेकर कौटिल्य तक के धर्मशास्त्रकारों और विचारकों ने एक स्वर से यही स्वीकार किया है–

प्रजा सुखे सुख राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।

नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।।[17]

गोस्वामी तुलसीदास जी के काव्य में राजा और प्रजा के घनिष्ठ सम्बन्ध पर विचार किया गया है। गोस्वामी तुलसरदास जी ने राजतंत्र के नवोत्थान के लिए आदर्श प्रस्तुत कर प्रजातांत्रिक जीवन प्रणाली और शासन व्यवस्था के प्रति जनता में एक राग का सृजन किया है। जनता की आवाज का कितना महत्त्व है इसको वन जाते समय तथा चित्रकूट के रास्ते में कवि ने भरपूर विश्लेषण किया है। राम सबकी सहानुभूति अर्जित कर लेते हैं। भला ऐसे कौन माता–पिता हैं जिन्होंने ऐसे सुन्दर राजकुमारों के साथ उनकी बहू सीता को भी भवन से निष्कासित कर दिया। यहाँ हवा का रूख राजाज्ञा से बिल्कुल विपरीत है।[18] लोकमत और जनमत का आदर राजतांत्रिक व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अंश है। मानव की प्रतिष्ठा के सुदृढ़ आधार पर प्रजातंत्र का निर्माण हुआ है। मानव का मानव के प्रति आदर, ऊच्च व्यवहार, विचार और अधिकारों का स्थान प्रजातंत्र की भावना का चरम परिणाम है। प्राचीन राजा का लक्ष्य सेवा और त्याग है। जिसे श्रीराम भरत को शिक्षा देते हुए कहते हैं। रामायण काल में जनता की आवाज सब बातों में चाहे वह सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक हो सबसे अधिक प्रमुखता रखती थी। लोकमत और जनमत का आदर उन्हें करना था। प्राचीन युग की राजभावना और व्यवस्था का लक्ष्य महान था और आज भी हमारा लक्ष्य वही है। हमारा लक्ष्य है– सौम्यता, चिन्तनशीलता और सुन्दर जीवन। राजा दशरथ कुलगुरू वशिष्ठ से राम की योग्यता को प्रमाणित कर युवराज पद देने की आज्ञा माँगते हैं। आज्ञा प्राप्त कर वे पुनः अपने प्रस्ताव को पंचों के सामने रखते हैं। राजसभा और कुलगुरू की आज्ञा मानना और उनके आदेश पर चलना राजा के लिए अनिवार्य है। धर्मशील राजा सबकी आज्ञा मानकर कार्य करता था और रावण की तरह दुःशील नृप राजसभा के आदेशों की उपेक्षा करता था। राजा दशरथ ने प्रजा की बलवती, इच्छा को देखकर राम को युवराज पद देने का प्रस्ताव रखा था, जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ–

सब कें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु,

आप अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु।[19]

इस कथन से राजसभा के सदस्यों की महानता और कार्य–क्षमता का पता चलता है। जब दशरथ की मृत्यु हो जाती है तो राजसभा में सभासदों के सामने दशरथ परिवार की दुःखद कहानी और राम के युवराज बनाने के संकल्प में बाधाओं का विस्तृत चित्र प्रस्तुत करते हैं। मुनिवर उपयुक्त समय जानकर भरत को सम्बोधित करते है–

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।[20]

वहाँ सभी सभासद जुटे हुए हैं। सबको निर्णय में हामी भरनी है। चित्रकूट में राम और भरत के मिलन के समय भरत ने चित्रकूट के पवित्र स्थानों को देखने की कामना की और राम ने भ्रमण की आज्ञा दी। इसकी प्रशंसा जनक ही नहीं मंत्री, सभासद और अन्य सेवकगण भी करते हैं। यहाँ भी शास्त्रानुमोदित सचिव सभासद का उल्लेख हुआ है–

मति अनुहार सराहन लागे सचिव सभासद सब अनुरागे।।[21]

राम या दशरथ का शासन प्रजातांत्रिक था जिसमें राजा और प्रजा के बीच मानवीय सम्बन्ध का महत्त्व था। अतः तुलसीदासजी एक ऐसी राज्य व्यवस्था का समर्थन करते हैं जिसमें रूढ़ि और परम्परा का झूठा शान या दिखावा नहीं है बल्कि सभी को उसके श्रम और योग्यता के अनुसार पारिश्रमिक दिया जाता है। नाव चलाने वाले को नहीं माँगने पर गंगा पार कर जाने के बाद राम के मन में यह भाव आता है कि इसे कुछ भी नहीं दिया गया और सीता जहाँ उतराई का दो–चार पैसा लगता है वहाँ अपनी मुदरी को उतार कर दे देना चाहती हैं। उनके हृदय में दीन–दलितों के लिए कितना कुछ कर जाने की अभिलाषा है। ऐसे राजा के राज्य में भला कौन प्रजा दुःखी रह सकता है। चित्रकूट से लौटते समय श्रीराम भरत को परिवार के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहते, केवल राज्य के सम्बन्ध में ही उनका उपदेश है जिसका निष्कर्ष है–

मुखिया मुख सो चाहिये खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित विवेक।।[22]

राजधर्म का सर्वस्व भी इतना ही है। राजा की भलाई से ही, उनके व्रत की रक्षा से ही लोक और वेद दोनों की भलाई है। राजा को मंत्री, गुरू और वृद्ध जनों की शिक्षा को मानकर उसके अनुसार प्रजा और राज्य की रक्षा करते रहना चाहिए। विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन करना ही उसका मुख्य कार्य है। वाल्मीकि रामायण में भी श्रीराम भरत को लौटाने के प्रश्न पर उनको समझाते हैं कि वीर भरत तुम शत्रुघ्न तथा समस्त अयोध्यावासियों को साथ लेकर, अयोध्या को लौट जाओ और प्रजा को सुख दो। 'चित्रकूट संज्ञक' सभी कृतियों का राजनीतिक परिवेश स्रोत कथाओं के अनुरूप ही है।

4.3 धार्मिक एवं आध्यात्मिक परिवेश का प्रतिबिम्बन–

'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से व्युत्पन्न है। जिसका अर्थ होता है– धारण करना। महर्षि व्यास ने कहा था कि जो धारण करनेवाले के साथ रहे वह धर्म है। इसकी व्युत्पत्ति तीन–चार तरह से की जाती रही है। जैसे, जिससे लोक धारण करे, जो लोक को धारण करे, और जो दूसरों से धारण किया जाय वह धर्म है। अमर कोश में धर्म का अर्थ सुकीर्ति या पुण्य न्याय, स्वभाव आचार आदि बताया गया है। गोस्वामी तुलसीदास जी के आध्यात्मिक विचारों और सिद्धान्तों का सम्यक् रूप भारतीय दर्शन के सभी मतों से गृहीत है। उन्होंने अनात्मवादी दर्शन को अपने काव्य में स्थान नहीं दिया। गोस्वामीजी की आध्यात्मिक विचारधारा की मीमांसा करते हुए 'द रामायण ऑफ तुलसीदास' के भूमिका में एफ0 एस0 ग्राउस ने लिखा

है–'उनके अध्यात्म और आत्म विद्या सम्बन्धी विचार विश्वदेवतावादी स्वभाव के हैं। जिनका अधिकांश वेदान्त सार विधि से उत्तरवेदान्तियों की शिक्षा पर आधृत है और जिसकी विस्तृत व्याख्या भागवत गीता में है जो संस्कृत भाषा काव्यों में सबसे अधिक लोकप्रिय है। वस्तुतः वे उनसभी दर्शनों को भक्ति में लपेट कर मानव जीवन के लिए अमृतमय बनाना चाहते थे और उसमें सफल भी हुए हैं। उनकी दृष्टि से संसार भगवान का व्यक्त रूप है अतः यह अव्यक्त परमात्मा की रचना है। विश्व रूप में भगवान ही प्रकट हैं। ज्ञान की दृष्टि से संसार असत्य है। किन्तु अव्यक्त परमात्मा की माया से यह संसार सत्य सा भासित होता है। संसार की सत्ता परमात्मा द्वारा रचित एवं सुचालित होने के कारण, उसका अंश रूप है। भक्ति का प्रतिपादन आत्मा को परमात्मा का अंश स्वीकृत कर लेना है। जड़ चेतन सब राममय है।

धर्म मानव जीवन यात्रा का सम्बल और आधार दोनों है।यह मानव जीवन के अक्षय सुख का कारक है। मानव के सुख–दुःख, हर्ष–विषाद, पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक आदि भावनाओं का आदर धर्म करता है और मनुष्य के स्वभाव, वृत्ति, देश और काल के अनुकूल आचरण करने की प्रेरणा देता है। यह मानव जीवन के कार्य–कलापों का अभिनंदन कर व्यक्ति को एक नवीन स्फूर्ति से काम करने का संकल्प प्रदान करता है। एक तरफ यह मानव को मानवीय गुणों से परिपूर्ण करने का प्रयत्न करता है, तो दूसरी ओर पारलौकिक जीवन के ईश्वरीय तत्त्व के प्रति इच्छा कामना उत्पन्न कर भौतिक जीवन को सुखमय बनाता है। इस प्रकार धर्म मानव की चेष्टाओं और सद्प्रवृत्तियों का फल है। यह जीवन की असीम कामनाओं और भावनाओं को पाने का एक साधन है। इसकी राह जीवन की सच्ची राह है, इसका प्यार ईश्वरीय प्रेम का संसारी रूप है और इसकी महानता मानव के सत् प्रयासों, उसके संकल्पों में निहित है। यह मानव जीवन की प्रगति का मापदण्ड है क्योंकि धर्म और मानव का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। धर्म द्वारा ही किसी राष्ट्र और समाज के जीवन का वास्तविक रूप देखा जा सकता है। आर्थिक स्थिति से हम व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के भौतिक ऐश्वर्य का पता लगा सकते हैं, किन्तु मानव मन में रहने वाली अदम्य वासनाओं को संयमित करने वाले धार्मिक आचरण से हम व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की महत्ता उपलब्ध करते हैं। इसका प्रकाश जीवन का शाश्वत प्रकाश है जिससे जीवन की अगम्य कठिनाइयाँ और गहन अधंकार सैकड़ों खण्डों में बिखर जाता है और मानव जीवन स्निग्ध चमत्कारपूर्ण और जीने के योग्य हो जाता है। सुखाभास की मृगमरीचिका कुसंस्कार, कुप्रवृत्तियों प्रश्रय पाकर भयानक रूप धारण करती हैं और अधर्म को धर्म सिद्ध कर मनुष्य को गुमराह करती हैं।

'धर्म बहुत से तत्वों का मिश्रण है और, कोई एक ऐसी विशिष्ट आकृति नहीं है, जिससे उसके गुण, स्वभाव को बताया जा सके। इसे संक्षेप में मानव का कर्त्तव्य या मानव स्वधर्म कह सकते हैं। मनुस्मृति के अनुसार आचार परम धर्म है और श्रीमद्भागवत के अनुसार वेदों द्वारा प्रतिपादित कर्म ही धर्म है। मनु के अनुसार सर्व साधारण के लिए धर्म के दस लक्षण हैं। गृह्यसूत्रों ने धर्म का लक्ष्य, आत्मा का उत्थान और मुक्ति माना है। मनुष्य नित्य और नैमित्तिक कर्म करते हुए सामान्य और विशेष धर्मों का पालन करे यही

निर्दिष्ट है। धर्म की व्यापकता महान है। धर्म एक ओर वैयक्तिक साधना द्वारा चरित्र का निर्माण करता है और दूसरी ओर व्यक्ति के स्वधर्म का निर्णय कर समाज का कल्याण करता है। इन नियमों के पालन से शरीर और मन पवित्र रहते हैं। धर्म के अभाव में मनुष्य प्रलोभनों से अपने को बचाने में असमर्थ रह जायेगा। सदाचार की प्राप्ति के लिए एवं धार्मिक जीवन यापन हेतु आदर्शों को समक्ष रखना अत्यन्त आवश्यक है। विषयों के प्रति आकर्षण नीच कर्मों की वृद्धि करने वाला होता हैं। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने धर्म के समान्य और विशेष दोनों रूपों का बड़ी सफलता के साथ अपनी कृतियों में उल्लेख किया है। सामान्य कर्म धर्म का आधार है और विशेष कर्म के समन्वय से मोक्ष की प्राप्ति होती है। आचार्यों ने भारतीय हिन्दू धर्म को मूल साधना माना है और लिखा है साधना के मिटते ही हिन्दू धर्म मिट जाएगा। तब इसमें कुछ वास्तविकता नहीं रहेगी और यह केवल ऐतिहासिक और दार्शनिक वार्तालाप का विषय मात्र रह जाएगा।

यही कारण है कि भारतीय महाकाव्यों, पुराणों तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में धर्म के जिस स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, उसका वर्णन गोस्वामी तुलसीदास जी को अभीष्ट है। गोस्वामीजी रामकथा द्वारा वास्तविक धर्म का प्रकाशन करना चाहते हैं। वेद, पुराण दर्शनों में धर्म की जो मान्यताएँ हैं उसे उन्होंने 'मानस' में वर्णित किया है। सामाजिक धर्म में गो–धर्म, नारी धर्म, व्यष्टि धर्म, समष्टि धर्म आदि को उन्होंने पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। वे सभी पात्र धर्म के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करते हैं। सत्य के समान वास्तव में कोई दूसरा धर्म नहीं है। चित्रकूट की धर्म सभा में धर्मज्ञ और नीति कुशल वशिष्ठ महाराज के सत्य प्रेम की सराहना करते हुए थकते नहीं।

इस प्रकार सत्य व्रत का सम्बन्ध धर्म से सीधे जोड़कर देखा गया है क्योंकि उसमें लोक–कल्याण व्यापक रूप से वर्तमान है। क्षमा, दया, तप, ज्ञान, सभी उसमें आ जाते हैं क्योंकि परहित के समान कोई दूसरा धर्म नहीं है। धर्म–ग्रंथों के सैद्धांतिक पक्षों को यहाँ व्यावहारिक रूप प्रदान किया गया है। वस्तुतः परम तत्व की बाह्य और आभ्यांतरिक प्रकृति को जान लेना ही धर्म के सभी रहस्यों को समझना है। हिन्दू धर्मशास्त्र ज्ञानभक्ति सबको स्वीकार करता है। भरत जैसे परम राम भक्त के चरित को गढ़ने में गोस्वामी तुलसीदास जी ने बड़ी सावधानी से उनके जीवन में भक्ति और ज्ञान का समन्वय दिखलाया है। विवेक और वैराग्य इनके भीतर सभीं है। चित्रकूट में भरत का यह भक्त रूप पूर्णतः उजागर हुआ है। अन्त में वे यहाँ तक कहते हैं–

भरत चरित कर नेम, तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय रामपद पेम, अवसि होई भव रस विरति।।

–रामचरितमानस, अयोध्या काण्ड, दो.326

भरत चरित्र के द्वारा ज्ञान से, भक्ति से, योग संयम से प्रेमाराधना से धर्म का जो चतुर्दिक निर्मल प्रकाश फैला है वह कर्त्तव्य और लोकहित दोनों के मार्ग को प्रशस्त बनाता है। यह धर्म मानव के श्वास क्रिया से लेकर भौतिक और आध्यात्मिक सूक्ष्म चेतनाओं में आविष्ट है।

मानव की क्रियाशधीलता के मूल में जिज्ञासा, चिन्तन, संघर्ष और प्रगति के बीज सन्निहित रहते है। भौतिक कामनाओं की प्राप्ति एवं आध्यात्मिक जीवन के उपक्रम में इन प्रवृत्तियों का योग महत्त्वपूर्ण होता है। हमारे मन में अनेक इच्छाएँ सदा जन्म लेती हैं। इसी में कुछ अच्छी होती है और कुछ पतन के राह पर ले जानेवाली। इससे हमारा जीवन जर्जरित हो जाता है, दुखाग्नि की प्रज्वलित ज्वाला में हम अन्तः–बाह्य जलते रहते हैं और जीवन से छुटकारा नहीं मिलता। ऐसे ही समय में धार्मिकता और आध्यात्मिकता प्रकट होकर प्रज्जवलित जीवन को शांति की स्निग्ध सुखात्मक छाया प्रदान करती है।

इन्हीं आध्यात्मिक प्रयत्नों को दर्शन की संज्ञा भी दी जाती है। जिसमें ज्ञान पिपासा की शांति के निमित्त आत्मा–परमात्मा, जीव–सृष्टि, माया और जगत् से सम्बद्ध ज्ञान को प्राप्त करना लक्ष्य होता है। जब व्यक्ति लौकिक धर्म कर्त्तव्यों की अवहेलना कर सांसारिकता से थककर शांति के शीतल कुण्ड की कामना करता है तब वह अपने मूल की ओर देखने लगता है। हम कौन हैं? क्या हैं? कहाँ से आए हैं? कहाँ जाना है? कहाँ जा रहे हैं? संसार क्या है? हमारा निर्माता कौन है? संसार, जीव और परमात्मा का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है? क्या इस बंधन से मुक्ति संभव है? ब्रह्म, जीव, जगत् माया का कारण तत्त्व क्या है इत्यादि की प्रबल जिज्ञासा हमें प्रकाश तत्त्व की ओर संलग्न करती है। इसी कारण मानव की आध्यात्मिक समस्याएँ चिन्तनात्मक और अन्तर्मुखी हो जाती है और वह इन प्रश्नों के समाधान खोजता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत चित्रकूट के महत्त्व को स्वीकार करते हुए लिखा है– 'उस पुरूष समाज के प्रभाव से चित्रकूट की रमणीयता में पवित्रता भी मिल गयी। उस समाज के भीतर नीति, स्नेह, शील, विनय, त्याग आदि के संघर्ष से जो धर्म ज्योति फूटी उससे आस–पास का सारा प्रदेश जगमगा उठा– उसकी मधुर स्मृति से आज भी वहाँ के वनस्थली परम पवित्र है। चित्रकूट की सभा की कार्रवाई क्या थी, धर्म के एक–एक अंग की पूर्ण और मनोहर अभिव्यक्ति थी। रामचरितमानस में वह सभा एक आध्यात्मिक घटना है। धर्म के इतने स्वरूपों की एक साथ योजना ह्रदय की इतनी उदात्त वृत्तियों की एक साथ उद्‌भावना तुलसी के ही विशाल मानस में संभव थी।[23]

'चित्रकूट संज्ञक काव्यों में भरत हों या राम ऋषि के समक्ष अपने मत को प्रकट करने में सकुचाते हैं। राम शुद्ध अन्तःकरण और कोमलता के साथ माताओं से मिलते हैं वहाँ की शिष्टता देखने योग्य है। भरत और राम अपने श्वसुर को पिता के स्थान पर रखकर सारा भार उन्हीं पर छोड़ देते हैं। चित्रकूट में कौशल्या आदि माताओं की सेवा में सीता की तत्परता कोल–किरातों का मृदुल और सुशील व्यवहार ये सभी एक साथ धर्म के प्रत्येक अंग की पुष्टि करते प्रतीत होते हैं। भावात्मक प्रसंगों के आधार पर 'चित्रकुट संज्ञक' काव्यों की रचना हुई है जिसमें ये पूरे भाव स्वच्छन्द रूप से अभिव्यक्त है। निम्न अनुच्छेद में विवेच्य कृतियों का धार्मिक एवं आध्यात्मिक परिवेश प्रतिबिम्बित है।

4.3.क. विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'–

'चित्रकूट चित्रण' में विद्याभूषण 'विभु' ने प्रकृति चित्रण को ही आधार बनाकर चित्रकूट की पाँच छवियों का वर्णन किया है। इसमें उनका पवित्र धार्मिक भाव ही शुरू से अन्त तक चित्रकूट के रम्य स्थलों को देखकर स्फुरित होता है। चूँकि, चित्रकूट एक तपोवन है और वहाँ ऋषि–मुनियों का ही निवास है। अभी तक वहाँ निशाचरों ने उस भूमि का स्पर्श नहीं किया है। अतः वहाँ के घाट, वहाँ के पत्थर, वहाँ की नदियाँ, यहाँ तक कि वहाँ का स्टेशन भी उनको आकर्षित करते हैं।

नाना मंदिरों में विविध प्रतिमाएँ सजाई जातीं है। उनकी आरति होती है। घंटा और शंख बजते हैं। पर्वों में विशेष कर चित्रकूट की शोभा और भी बढ़ जाती है। इस प्रकार उन्होंने रोम–रोम में राम को रमे हुए पाकर गद्‌गद् स्वर से उन समस्त छवियों का वर्णन किया है जो भारतीय जनों में सर्वाधिक प्रभावकारी है।

4.3.ख. रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट'–

रामानन्द 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट' खण्डकाव्य करूण रस प्रधान है। करूण रस में सभी रसों की स्थिति मानी गयी है। धर्म और अध्यात्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि साधक प्रत्येक परिस्थिति में अपने को प्रसन्न रखकर विपरीत स्थितियों को परमात्मा का प्रसाद मानकर ग्रहण कर लेता है। अन्यत्र जो लक्ष्मण, कैकेयी को बुरा भला कहते थे वे अब इस प्रकार बोलते हैं–

लक्ष्मण ने फिर कहा कि मझली
माँ ने किया बड़ा उपकार।
भाग्योदय है आज हमारा
पाया बन में सौख्य अपार।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–29)

वे आश्रमों में ऋषियों के तप, विद्यार्जन, आदि कर्मों को देखकर अपने नव जीवन की सराहना करते हैं। इन तपस्वियों का जीवन इनके लिए आदर्श बन जाता है। ये तपस्वी कभी पीताम्बर की कल्पना नहीं करते। वल्कल धारण कर अपने शरीर को जर्जर करते हुए सभी प्राणियों के सुख के लिए ध्यानरत हैं। इनका कोई साथी नहीं, धर्म और कर्म ही साथी है जिसका साथी धर्म और कर्म हो, उसको किसी साथी की आवश्यकता नहीं होती है–

धर्म कर्म सहचर विवेक सुत
समदम इनके किंकर हैं।
भक्ति भवानी संग बिलसते
इनके उर में शंकर हैं।।

(चित्रकूट, पृ0सं0–31)

इन महर्षियों से धर्मराज भी डरते हैं, घन इनकी छाया करते हैं। अतः इस धार्मिक जीवन से बढ़कर किसी चक्रवर्ती सम्राट का जीवन इससे उच्च नहीं हो सकता। सरयू नदी के समान यहाँ की पयस्विनी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। चित्रकूट के दृश्य ही अयोध्या में अंकित किये गये हैं। वे मानते है कि यदि वे यहाँ नहीं आते तो अत्रि और अनसूया जैसे दम्पति के दर्शन संभव नहीं होते। ऐसे ऋषि किसी राजा के राजमहल में नहीं जाते। लक्ष्मण जी का यह विचार उनकी धार्मिक और आध्यात्मिक भावना को उद्घाटित करती है। राजभवन में राजा क्या, दासी का भी मन बदल जाता है और ऋषियों के आश्रम में हिंस्र पशु भी अहिंसक बन जाते हैं। संसार में शायद ही ऐसे किसी मनुष्य ने जन्म लिया हो जिससे कोई पाप कर्म न हुआ हो। जन्म–मृत्यु के चक्र में तो यह सहज संभव है। अतः पाप–पुण्य की रेखाओं को पश्चाताप मिटा देता है। इन्द्रिय ही जीवन–रथ के अश्व हैं, जो कभी विश्राम नहीं लेते। मन रूपी सारथि आठों पहर व्याकुल करता रहता है। आत्मा ही इस पथ का आरोही है। वह शुद्ध है, सनातन है, अमर है और उसे कभी निष्प्राण होना नहीं पड़ता। उसे न वायु सुखा सकती है और न नीर् गला सकता है अथवा न हीं अनल जला सकता। इस प्रकार गुरूदेव वशिष्ठ दशरथ की मृत्यु को भुलाकर आत्मानुसंधान द्वारा शोध कर सबका संताप हर लेते हैं।

इस काव्य में दो प्रसंगों में करूण रस के साथ जीव, जगत् और आत्मा के प्रसंगों को स्मरण किया गया है। कर्मवाद की प्रशंसा की गयी है–

सोचा–होता है कठोर अति
इस जगतीतल में कर्त्तव्य
मानव तो यह पराधीन है,
अति दुष्कर होता भवितव्य।

(चित्रकूट, पृ0सं0–97)

केवट की भक्ति किस प्रकार भक्तों के लिए आदर्श का मार्ग बन गया। यह सब राज्य त्यागने पर ही संभव हुआ। सद् और असद् का विचार मन में जो नहीं लाते हैं उन्हें अपना अभिनन्दन, अपनी प्रशंसा अच्छी नहीं लगती। प्रवृत्ति और निवृत्ति संसार में दो ही पथ हैं। धर्म राज्य में प्रवृत्ति के लिए कहीं अवकाश नहीं है। यद्यपि निवृत्तिमार्गी और प्रवृत्तिमार्गी दोनों के जीवन में सुख–दुःख तो आते ही रहते है। लेकिन उन्हें दोनों को समान मानकर चलना है। कहीं कर्म प्रमुख है तो कहीं ज्ञान। दोनों का अवसान आनन्द के समुद्र में एक साथ हो जाता है। इस साधना के पथ पर संयम नियम से पूर्ण वीर पुरूष ही चल सकते हैं। त्याग, तपस्या और वैराग्य ही उनके मन में प्रेम का साहस भरता हुआ आगे बढ़ाता चलता है। संसार जड़ और चेतन से परिपूर्ण है लेकिन ये सभी मानव सेवा के लिए ही है। वृक्ष लताएँ अपनी अंजलि में भर–भर कर हमें मेवा प्रदान करती हैं। हवा शीतलता देती है, रवि की किरणें प्रकाश देती हैं। वन्य जीवन त्याग

की शिक्षा प्रदान करते है। अगर रात–दिन सेवा भाव में निरत रहे तो मनुष्य अमिट आभा को प्राप्त कर सकता है।

वस्तुतः राम और भरत, लक्ष्मण और सीता का जीवन धर्म में कर्म और कर्म में धर्म की श्रेष्ठ व्याख्या है। वहाँ प्राण से भी बढ़कर धर्म को स्थान दिया गया है। इसीलिए इनके जीवन की अमरता अब तक धरती पर प्रेरणा का संदेश देने में सफल हुई है। वे अपने दैविक, दैहिक और भौतिक ताप को धर्म मार्ग से चलकर अपने पास फटकने नहीं देते। इसीलिए वहाँ की प्रजा को त्रिताप कभी नहीं व्यापते हैं –

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज काहू नहिं व्यापा।

गोस्वामीजी के इस सुर में सुर मिलाते हुए शास्त्री जी कहते हैं–

उस वन–पथ पर चलकर हम भी
आज नितांत बने निष्पाप,
दैविक–दैहिक तथा सभी ही
आज मिटे भौतिक संताप।

(चित्रकूट, पृ0सं0–134)

चूँकि, चित्रकूट के सभी ताप श्रीराम के कठोर त्याग और अत्रि आदि ऋषियों के धार्मिक–आध्यात्मिक वातावरण से पिघल गये हैं। इनके मन में न ही राग है और न द्वेष। अतः इस करूण काव्य में धर्म के उसी स्वरूप की उत्कृष्ट व्याख्या कवि ने की है।

4.3.ग . मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत 'चित्रकूट'–

'चातक' कृत चित्रकूट में पूरी कथा राम के चारों ओर घूमती हुई ऐसा प्रतीत हो रही कि वह जैसे चित्रकूट की परिक्रमा कर रही है। चित्रकूट में राम वन के अलौकिक वैभव का दर्शन करते हुए सीता के विचार जानना चाहते हैं। वहाँ अहिंसा छायी हुई है। वहाँ के जन धर्मव्रती हैं, घोर संयमी हैं और इनकी इन्द्रियाँ अपने वश में हैं। प्रकृति ही उनकी पोषिका और सहायिका है। वहाँ कोई मनस्ताप से दुःखी नहीं है। लक्ष्मण का अमर्ष भी वहाँ शांत हो गया है। शंकाएँ मन की क्षणभर में शांत हो जाती है। समस्या स्वयं समाधान बनकर प्रकट हो जाती है। जीवन और मरण में वहाँ विशेष अन्तर नहीं रह जाता है। वहाँ अयोध्या के सारे दग्ध–हृदय शांति का अनुभव करते हैं। राजा का सत्य के लिए प्राण त्याग करना धर्म के अनुरूप है। अतः पुत्रों का धर्म होता है कि वह पिता के रास्ते पर चलें–

पुत्र धर्म क्या स्वधर्म तज
एक पितृ शासन पालन।
सेवनीय क्या नहीं सौख्य, सुख
एक सत्य का परिपालन।।
किन्तु पिताजी के कृत्यों में

नहीं किसी विधि अघ का लेश।
त्याग सत्य पर देह उन्होनें
दिव्य देह में किया प्रवेश।।

(चित्रकूट,पृ0सं0 58–59)

अर्थात् सत्य से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है। सत्य के लिए महाराज दशरथ ने देह का त्याग कर दिव्य देह में प्रवेश पाया। इस काव्य में व्यक्ति–धर्म, समाज–धर्म, लोक–धर्म और राज–धर्म सबका पालन एक साथ किया गया है। सत्य इन सभी धर्मों के केन्द्र में है। सत्य के लिए यश के लिए देह और प्राण का त्याग कोई रघुवंशी कभी भी कर सकता है–

वचन स्वप्नगत होने पर भी,
होता प्रत्याहार कहीं।
रघुकुल की तो परम्परा यह,
प्राण जाय पर वचन नहीं।

(चित्रकूट,पृ0सं0 70)

इसमें हरिश्चन्द्र से लेकर दशरथ तक की पूरी परम्परा प्रकट कर सत्यसंध होने का लक्ष्य को पूरा किया गया है। सबका मत है कि स्वयं राम ही हमारा आगे का कार्यक्रम निर्धारित करें, जिसे धर्म और कर्त्तव्य से सम्बन्धित कोई भी कार्य न बिगड़े–

अब करूणाकर स्वतः बताएँ,
साधन ऐसा कोई आर्य।
रहे धर्म कर्त्तव्य आपका,
और न बिगड़े मेरा कार्य।

(चित्रकूट, पृ0सं0 74)

इस काव्य में कर्म–पथ पर आरूढ़ होने के लिए गुरू तथा श्रीराम प्रतिबद्ध हैं। अत्रि–अनसूया के प्रसंग में सीता को पतिव्रत्य धर्म पर विशद प्रकाश डाला गया है। कुल मिलाकर इसमें धर्म और अध्यात्म को तुलसीदास रचित 'रामचरिमानस' सदृश उसी की परम्परा में स्वीकृत बातों को ही नये ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

4.3.घ . रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'–

रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट' के चतुर्थ सर्ग में राम के चरित्र द्वारा उनका धार्मिक जीवन दर्शन उपस्थित किया गया है। जब सीता तीनों माँ और बहनों को पाकर उनके अपनत्व में खो जाती हैं तो राम साधना की शिक्षा देते हुए कहते हैं–

बोले राम ध्यान रखना,

हो मिलन हर्ष में खोई।

माताओं बहनों को

होने पाये कष्ट न कोई।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–35)

वे सुख–दुःख की प्राप्ति ईश्वर के कृपा से ही मानते हैं। राम सोचते हैं कि क्या धन, वैभव और पद में सुख है? क्या मर्यादा, स्वास्थ्य और सौन्दर्य में सुख है? क्या सुख ऐश्वर्यों के बीच में है? क्या परिवारजनों के बीच सुख है, क्या सुख का अर्थ वासना तृप्ति आदि में है? फिर इसका उत्तर वे स्वयं देते हुए कहते हैं–

सुख इनमें है नहीं, सदा वह छिपा मनुज के मन में।

अन्तर का सुख ही होता है प्रतिबिम्बित कण–कण में।।

जो जीवन की हर करवट पर रह संतुष्ट–जिया है।

उसनें ही अथाह सुख सागर निश्चय थाह लिया है।।

जिसको कर्त्ता प्यार उन्हें जब सुखी देश है पाता।

सचमुच उसका मन सुख से ही झूम–झूम ही जाता।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–62)

सीता भी राम के विचारों पर ही चलती हैं। अतः उनके ही मंतव्य को वह कौशल्या माँ से दुहराती हैं–

मन का ही वैभव तो प्राणी को सुखमय करता है।

वह तो केवल स्नेह तुम्हारा पाकर ही भरता है।

आर्य पुत्र का साथ और देवर की सच्ची निष्ठा।

मन को कर परिपूर्ण रहा तब दुःख की कहां प्रतिष्ठा।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–60)

यहाँ सुख और दुःख, बंधन और मोक्ष सब कुछ मन के भीतर ही माना गया है। कैकेयी सरिता से जीवन की तुलना करती हुई अपनी करूण कहानी का बखान करती हैं। घटनाओं का घटना, सरिता के पानी के बह जाने के समान है–

नियति प्रबल है जो मनुष्य की मति को ही हर लेती।

भाग्य विधान लिखा जो जैसा वैसी अति कर देती।।

लगता यहाँ विवश है नर उस अटलनियति के कर में।

नहीं विवेक साथ देता है दुःख के इस संगर में।।

मंगलमय के इस विधान को कौन टाल है पाया।

दुःख सुखमय जीवन से सुख को कब निकाल है पाया।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–39)

कैकेयी नियति को प्रबल मानकर भाग्य–विधान में लिखे हुए को स्वीकार करती है। प्रभु की नियति अटल है। मनुष्य का विवेक भी साथ नहीं देता। तब भी यह अदृश्य प्रभु हमें सम्भालते हैं। मनुष्य के हाथों में कुछ नहीं होता। श्रीराम उनके चरणों में लिपट कर उनके मन में भरे दुःख को अपने प्रेम से हर लेते हैं। ये दोनों मानते हैं इस जगत में परमात्मा जो कुछ भी करता है उसमें मनुष्य का कल्याण निहित है। जगत् की सारी घटनाएँ विधि के विधान के अनुसार घटती रहती हैं । अपने को उनसे व्यर्थ जोड़कर हम सुख–दुःख की संज्ञा को प्राप्त करते रहते हैं। तात्पर्य यह कि सृष्टि में किसी को दोष देना शिष्टाचार के अन्तर्गत नहीं आता। राम और भरत दोनों विवेकी हैं। चित्रकूट में आते ही सभी लोगों का लोभ त्याग में परिवर्तित हो गया है। ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम में परिणत हो जाता है। अतः ऋषि भी आदेश देने के बदले राम के अनुकूल हो जाते हैं। चित्रकूट में सारी समस्याओं का निदान हो जाता है।

सचमुच धर्म सबको अपने अनुसार ही बाँध लेता है। वहाँ कोई किसी का अहित नहीं कर सकता। सभी लोकात्मा में प्रतिष्ठित होकर अपनी आत्मा में सर्वात्मा को मिलाकर, हानि–लाभ से ऊपर उठ जाते हैं। सारी समस्याओं का समाधान धर्म और आध्यात्म में आत्मा के आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है। जो अवधवासी राम को लौटाने के लिए स्वयं जंगल में चौदह वर्ष तक जीवन बिता देने के लिए संकल्पित थे, वे अब उतने दुखी नहीं रह गए। भ्रातृ–प्रेम के उत्कर्ष ने सबको अनन्त सुख प्रदान किया–

राम न लौटेंगे फिर भी जन उतने नहीं दुःखी थे।
सच तो यह है भ्रातृ–प्रेम की गरिमा देख सुखी थे।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–57)

सुख–दुःख सभी सच्चे अर्थ में भय को उत्पन्न करने वाले हैं। परमार्थतः उन्हें स्वीकृत नहीं किया जा सकता। इसलिए दुःख में मूर्ख लोग ही रोते हैं। धीर पुरुष तो दोनों में समान रहा करते हैं। अब नगरवासी अयोध्या को ही चित्रकूट में ला देना चाहते हैं। सरयू का मंदाकिनी में मिलना यह सौभाग्य का सुफल माना जाने लगा। समासतः इस चित्रकूट में जैसे सारे तीर्थ आकर प्रभु श्रीराम की सेवा के लिए तैयार हो गये हैं और किसीकी मन की इच्छा पूरी नहीं होती ईश्वर की इच्छा ही पूरी होती है, यही यहाँ प्रतिपादित हुआ है। धर्म और अध्यात्म का यही निष्कर्ष है कि मनुष्य परमात्मा की इच्छा को ही अपनी इच्छा के साथ समाहित कर ले–

इच्छा पूरी हुई न मन की प्रभु इच्छा हो पूरी।
मुझे सहन करनी अब होगी चातक घन की दूरी।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–62)

भरत को राम की इच्छा में ही अपनी इच्छा दिखाई पड़ रही है। चरणपादुका मिलते ही वे अवध सिंहासन की रिक्तता को पूर्ण करने के लिए उसे प्रतीक बनाकर आसीन करने को ही धर्म सम्मत मानते हैं। अपना कर्त्तव्य करना ही मनुष्य के लिए श्रेयस्कर है। कर्म से बड़ा इस संसार में दूसरा धर्म नहीं। इसीलिए हिन्दू धर्मशास्त्र में वर्णाश्रम की व्यवस्था हुई है और कर्मवाद को सबसे ऊँचा स्थान दिया गया है। ऋषि, माताएँ, अयोध्या के नागरिक, मंत्री, जनक, वशिष्ठ सभी इस निर्णय को स्वीकार करते हैं। चित्रकूट में साधुमत और लोकमत दोनों की पुष्टि एक साथ हुई है। इसीलिए उस धरा को धर्म की चेतना से सम्पन्न माना गया। कवि कहते हैं–

कोटि–कोटि है नमन, धर्म की ध्वजा जहाँ फहराई।
कीर्ति भरत की जहाँ राम से भी आगे बढ़ छाई।।
चित्रकूट यह धर्म धरा है तीर्थभूमि जनजन की।
कर्तव्यों के आड़े आई जहाँ न प्रीति स्वजन की।।
जीवन कर्म–क्षेत्र है जिसमें त्याग स्वार्थ से ऊपर।
परहित निरत समर्पित जीवन सार्थक होता भू पर।।

(चित्रकूट,पृ0सं0–64)

इस प्रकार आलोच्य कृति में धार्मिक और आध्यात्मिक चिन्तन को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उतना ही स्थान प्रदान किया गया है जितना उसके अपने स्वरूप में निहित था। धर्म से ही पृथ्वी और सुकर्म चल रहे है, तभी दोनों की गति मिलकर साथ–साथ चलकर हमारे प्रगति मार्ग को प्रशस्त बनाती है।

4.3.ड. लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'–

लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित' में चित्रकूट की समस्त कथाओं का वर्णन किया गया है। छः शिविरों में भरत और राम की कथा अर्थात् निर्वासन और राजगद्दी दिये जाने की कथा को आधुनिक रूप प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रसंग में शरीरवाद और आत्मवाद की भी चर्चा हुई है। यहाँ भारतीय आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन में सम्पर्क कराया गया है। शरीरवाद नास्तिक विचारधारा है और आत्मवाद आस्तिक दर्शन । ऋषि–शिविर में दोनों परस्पर विरोधी दर्शनों पर विमर्श करते हुए जाबाली चार्वाक दर्शन का पोषण करते दिखाये गये हैं। जाबालि राम के समक्ष यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि इस लोक के अतिरिक्त और कोई दूसरा लोक नहीं है। उनका उत्तर देते हुए श्रीराम कहते हैं कि जगत में सत्य ही ईश्वर है। सत्य के आधार पर ही धर्म की स्थिति है। इस कर्म जगत में शुभ कर्म ही करने योग्य है। शुभ कर्मों के परिणाम स्वरूप ही अग्नि, वायु और सोम भी अपने–अपने पदों पर अधिष्ठित हैं। जाबालि के अनुसार वृद्ध पिता ने काम वासना से प्रेरित होकर राम को वनगमन का आदेश दिया था। इसलिए राम को पिता की आज्ञा की अवज्ञा करनी चाहिए। यदि इसमें भरत बाधक बनते हैं तो उनसे युद्ध भी करना चाहिए–

उचित राम को पिता अवज्ञा

आएँ भरत बीच में तो युद्ध श्रेय है।

(चित्रकूट, पृ0सं0 101)

किन्तु इसे अन्य ऋषि स्वीकार नहीं करते ऐसा करना भरत भाव को लांछित करना होगा, इससे राम की धवल कृर्ति और भरत का शीलयुक्त आचरण दोनों कलंकित होंगे। जाबालि तपस्या को संसार से पलायन मानते हैं। पुनर्जन्म की मिथ्या माया में भटकना व्यर्थ है। वर्तमान को भोगना ही तप है–

देह क्षेत्र है, शरीर यज्ञ भी

जिस संसार भाव को तजकर

परम पलायनवादी बनकर

आप तपस्वी बनते, हम उसी त्याज्य को सत्य मानते

अनभोगा शरीर शव हो जाता

x x x x

वर्तमान को मुक्त भोगना तप होता।

(चित्रकूट चरित, पृ0सं0 102)

उनके अनुसार भरत के भक्ति भाव और राम की पितृ भक्ति आदि की बातें उठाना राज–धर्म की निन्दा करना है। शरीरवाद मर्यादाओं को नहीं मानता और आत्मवाद मर्यादाओं को तोड़ने का विरोधी है। वामदेव कहते हैं–

भरत प्रणीत स्वधर्म धर्म है

राम प्रणीत स्वधर्म धर्म है

इन दो स्वधर्मों में

ज्ञान हमारा खण्डित होकर

टूट रहा है यदि

निष्काम भाव हो मन में

भरत ग्रहण करे स्वभाव को

रामग्रहण करे स्वधर्म को

दोनों ही परमार्थिक होंगे।

(चित्रकूट चरित, पृ0सं0 104)

वशिष्ठ और अत्रि भरत भाव को ही रामतत्त्व तक ले जाने का रास्ता अपनाने को कहते हैं। इस प्रकार अनुशंसित भरत भाव ही हमें सत्य तक ले जाएगा।[24]

आलोच्य कृति में भरत राम के भक्त रूप में चित्रित हुए हैं। उनके भक्तिभाव को ही भरत भाव कहा गया है। भरत भाव पर विचार व्यक्त करते हुए कवि ने विभिन्न व्यक्तियों द्वारा भक्ति के स्वरूप का

विश्लेषण कराने का प्रयास किया है। साथ ही ज्ञान के साथ उसकी संगति भी बैठायी गयी है। जनक इसके पुरोधा बने हैं निमित्त मात्र बनकर रहना जो भी आवे उसको सहना भक्ति भाव है।[25] ज्ञान के अभाव में भक्ति नहीं हो सकती। भरत को लगता है कि भोग भक्ति का विरोधी है। ज्ञान को छोड़कर भक्ति को स्वीकार करना शील को खो देना है। ज्ञान और भक्ति एक दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि पूरक हैं। यह ज्ञान जनक को याज्ञवल्क्य से मिला है। चित्रकूट में आकर जनक सबको मुक्ति भाव में बहते हुए देखते हैं। उनके द्वन्द्व का समाधान जो ज्ञान और भक्ति के संदर्भ में उठा था, उसका समाधान याज्ञवल्क्य करते हैं–

दोनों ही हैं एक सत्य की
दो छायाएँ,
दोनों ही में मुक्ति साध्य है
दोनों में होती बाधाएँ
एक पवित्र भाव यज्ञ की
दोनों बनती हैं समिधाएँ

(चित्रकूट चरित,पृ0सं0 85)

याज्ञवल्क्य के अनुसार 'भरत भक्ति की मर्यादा का परम ज्ञान ही भाव भक्ति है'[26] भरत एक अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त हैं। वे भक्ति को वैयक्तिक साधना मानते हैं। इसलिए वे समझ नहीं पाते कि वैयक्तिक साधना को भी सर्वव्याप्त बनाया जा सकता है। माण्डवी से जब भरत इन बातों को व्यक्त करते हैं तो वह उनकी उस बात को स्वीकार करती हुई परामर्श देती है कि इसे भी राम की इच्छा मानकर अपना सब कर्म उन्हें समर्पित करने से ही काम होगा–

समझे इसे राम की इच्छा
निर्णय यदि है राम समर्पित/
तो यह मंत्र बनेगा
जीवन देगा।

(चित्रकूट–चरित,पृ0सं0 61)

भक्ति को ईश्वर प्राप्ति के अनेक मार्गों में सबसे सुलभ माना गया है। उसमें भी सगुण भक्ति की सुलभता प्रायः सभी वैष्णव भक्तों को मान्य है। गोस्वामी जी आदि भक्तों ने निर्गुण भक्ति की तुलना में सगुण भक्ति को ही कठिन बताया है। प्रायः नर रूपधारी नारायण की लीलाओं को ठीक से नहीं समझते वे दिग्भ्रमित हो जाते हैं। 'अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा',[27] उनके अनुसार मनुष्य कौन कहे मुनियों को भी यह भ्रम नहीं छोड़ता। आलोच्य कृति में कैकेयी के माध्यम इसे स्वीकार किया गया है–

भक्ति मनोरम अक्षय वारिधि
सबके लिए सुलभ नहीं है,

इतनी गहरी उर्मि लहरियाँ

सबकी उतनी पैठ नहीं है।

(चित्रकूट चरित, पृ0सं0 44)

इसीलिए यह जानते हुए भी राम परात्पर ईश्वर हैं, वे 'लीला बपुधारी हैं' कैकेयी ने राम को वन में भेजा, एवं भरत से राम की आराधना करते हुए अवध का राज्य संभालने को कहती है। कैकेयी जिस भक्ति को सबके लिए सुलभ नहीं मानती वह निर्गुण नहीं सगुण राम की ही भक्ति है। उसकी दुर्लभता के कारण ही कैकेयी के कृत्य लोकमानस की समझ से परे बने रहे हैं। लोक लांछन का कारण भी लोगों की अज्ञानता ही है। भक्ति की सार्थकता केवल आराध्य की स्वरूप सेवा तक निहित नहीं होती, बल्कि आराध्य के स्वरूप को विश्व के स्वरूप से तादात्म्य कर देखना आवश्यक है। भरत को उपदेश देते समय राम उन्हें कायिक भक्ति की जगह मानसिक भक्ति की ओर मोड़ते हैं। उनका मानना है कि काया रूपी राम इस चित्रकूट में तुम्हारे सामने हैं पर राम का स्वरूप मात्र इतना ही नहीं, आवश्यकता है राम के विश्वरूप देखने की–

मेरा रोम–रोम सृष्टिमय

मेरा रोम–रोम विश्वमय'

(चित्रकूट चरित,पृ0सं0 134)

इसलिए उनका आदेश है कि 'भरत राम को नहीं राम के भाव गहो तुम'[28] राम के भाव को गहना यानि सम्पूर्ण विश्व को राममय देखना, मानना, ही सच्ची भक्ति है। जनता ही जनार्दन है और उसकी सेवा सच्ची भक्ति है। श्रीराम कहते हैं–

मैं हूँ वहाँ जहाँ जन–जन हैं।

दीन दुःखी हैं, पराश्रित हैं।

निरालम्ब अवलम्बहीन हैं,

भोग रहे प्रारब्ध घोरतम,

मेरा जागृत रूप बंधुवर, वहाँ मिलेगा।

(चित्रकूट–चरित,पृ0सं0 132)

राम की स्पष्ट घोषणा है सारा जगह ही परमेश्वर है मैं सेवक सचराचर रूप हूँ।[29]

कर्म की प्रधानता स्वीकार करते हुए कवि ने कैकेयी के माध्यम से अपने विचार प्रकट किये हैं, उसके अनुसार कर्म यज्ञ है, कर्म श्रेष्ठ है। बुरा कर्म भी वही करता है जिसमें अच्छे कर्म करने की क्षमता होती है। यदि कुछ किया ही नहीं जाय तो अच्छाई बुराई का निर्णय कैसे होगा। बिना कर्म के मनुष्य शव होता है–

करता मनुष्य है

कर्म श्रेष्ठ है

करता ही है तो अच्छा भी करता

कर्त्ता है तो कर सकता वही बुरा भी

निष्क्रिय से कुछ भी नहीं हो पाता

वह तो शव है अस्थि मात्र है।

(चित्रकूट चरित,पृ0सं0 128)

इसी कारण वशिष्ठ कैकेयी को कर्मनिष्ठ प्रतिमा, कर्मभाव की गरिमा स्वीकार करते हैं। कर्म की महत्ता का प्रकाशन माण्डवी की उक्तियों से भी होता है। वह मानती हैं कि मानव जीवन कर्म के लिए बना है। कर्म मानव ही करता है देवता नहीं। देवता केवल अर्जित पुण्य के भोक्ता होते हैं। वे पुरूषार्थ विहीन होते हैं अतः वे दुःख–सुख से हीन होते हैं। दूसरी ओर, कर्म करने के कारण ही मानव दुःख–सुख का भोक्ता होता है–

कर्म करे भोगे फल,

शमन करे अपने पापों का

यह तो केवल मानव करता

कर्महीन देवता केवल

अर्जित पुण्य भोगता होता

मानव जीवन पुरूषार्थ जन्म है

उसकी क्या तुलना किसी अन्य से

देव वर्ग पुरूषार्थहीन, कर्महीन है

दुःख–सुख से वंचित भावहीन है।

(चित्रकूट चरित,पृ0सं0 132)

इस प्रकार 'चित्रकूट चरित' काव्य में आत्मा, जीव और जगत् तथा मानव शरीर की बौद्धिक व्याख्या द्वारा अन्ततः आत्मभाव को ही भक्ति भाव की संज्ञा देकर स्वीकार किया गया है। 'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों में बहुत विचार के बाद गोस्वामी तुलसीदास की भावभूमि का ही सहारा लेकर सभी प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत हुआ है। भव्यता प्रदर्शन की दृष्टि से राम आदि पात्रों को लाकर दार्शनिक क्षेत्र के कुछ प्रश्नों को यहाँ उभारा गया है। किन्तु भरत चरित के समक्ष सभी दर्शनों के पाँव शीघ्र ही उखड़ जाते हैं।

निष्कर्ष–

'चित्रकूट' संज्ञक सभी कृतियों का धार्मिक एवं आध्यात्मिक परिवेश स्रोत कथाओं के अनुरूप ही है। इन सभी कृतियो में भी भक्ति की प्रधानता व्यक्त है। अतः रामचरितमानस ही सभी कवियों का उपजीव्य

ग्रंथ धार्मिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रतीत होता है। दरअसल, गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि बहुत ही समन्वयात्मक है और उसमें सारे दर्शनों के मत मिलकर एक साथ व्यक्त हुए हैं। इन काव्यों में भी नारी को नर से कम महत्त्व नहीं दिया गया है और उस दृष्टि से सीता, कैकेयी, माण्डवी सभी के चरित्र उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः परिवार और समाज में बहुत सी ऊँची–नीची श्रेणियाँ है। इनको धर्म और आध्यात्म ही पाट सकता है और तभी इन श्रेणियों के सम्बन्ध का उत्कर्ष रूप प्रकट किया जा सकता है।

*****

चतुर्थ अध्याय

संदर्भ तालिका

1. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास,, बालकाण्ड दो. 30/ख
2. ————वही———— , अयो.दो 161/2
3. ————वही———— , अया.दो 101/1
4. चित्रकूट, रामेश्वरदयाल दुबे, पृ.सं. 14, द्वि.स
5. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 31,आ.शि
6. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, अयो.दो. 303/2
7. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, अयो.दो. 226/3
8. चित्रकूट, रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री', पृ.सं. 82, पं.स.
9. ————वही———— पृ.सं. 84, पं.स.
10. ————वही———— पृ.सं. 85, प.स.
11. ————वही———— पृ.सं. 92, पं.स.
12. ————वही———— पृ.सं. 121, स.स.
13. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, अयो.दो. 9/1
14. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं. 129,रा.शि
15. ————वही————, पृ.सं. 25,आ.शि
16. ————वही————, पृ.सं. 71,भ.शि
17. कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ.सं 1/9
18. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, अयो.दो. 49
19. ————वही————, अयो.दो. 01
20. ————वही————, अयो.दो.171
21. ————वही————, अयो.दो. 308/3
22. ————वही————, अयो.दो. 315
23. गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं 68

24.	चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा,	पृ.सं. 105,ऋ.शि
25.	———————वही—————————,	पृ.सं. 92,ज.शि
26.	———————वही—————————,	पृ.सं. 83,ज.शि
27.	रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास,	बालकाण्ड.दो. 22/1
28.	चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा,	पृ.सं. 134,रा.शि
29.	———————वही—————————,	पृ.सं. 133,रा.शि

*****

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय

काव्य सौन्दर्य

रामकाव्य में मुख्य रूप से मर्यादावादी और रसिकतावादी प्रवृत्तियों के दर्शन होते है।[1] हिन्दी साहित्य की विकास यात्रा के आलोक में यह तथ्य पुष्ट होता है कि प्रस्तुत शोध प्रबंध के शोध कार्यों हेतु प्रयुक्त आधार ग्रंथ जिनकी विवेचना और तुलना की जा रही है, वे सभी इस काल के प्रतिनिधि कवियों की अग्रणी श्रेणी से इतर है। इसके बाद भी हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में इन कवियों और उनकी रचनाओं का विशेष योगदान अवश्य है। सभी कवियों ने आदिकवि महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण तथा गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस को ही अपनी-अपनी रचनाओं का आधार बनाया है। इस प्रकार इन काव्यों में भी लगभग उन सभी प्रवृत्तियों के दर्शन होते है जिनका विशद विवेचन पहले के अध्यायों में किया गया है।

5. काव्य सौन्दर्य के आधार पर 'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों का विवेचन–

इस अध्याय में सभी आलोच्य कृतियों का काव्य के विभिन्न प्रसाधनों यथा कलापक्ष एवं भावपक्ष (रस, अलंकार, छन्द, भाषा आदि) का विश्लेषत्मक पद्धति को शोध कार्य के प्रविधि के रूप में प्रयुक्त करते हुए अधोलिखित आधार बिन्दुओं के सापेक्ष समग्र मूल्यांकन का क्रमबद्ध रूप से निम्न अवतरणों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

किसी भी काव्य कृति के साहित्यिक अध्ययन के रूप को विद्वज्जनों ने काव्य सौष्ठव अथवा काव्य सौन्दर्य नाम से अभिहित किया है। इसके अन्तर्गत कला भूमि अथवा कलापक्ष तथा भावभूमि अथवा भावपक्ष की विवेचना उपयुक्त मानी जाती है। भावभूमि के अन्तर्गत काव्य रस, प्रकृति चित्रण एवं वस्तु विवरण को प्रमुखता दी गई है, जबकि कला-भूमि पर अलंकार, भाषा व छन्द विचरण करते हैं।[2] आलोच्य कृतियों के काव्य सौन्दर्य के मूल्यांकन हेतु निम्नलिखित आधार बिन्दुओं को मानदण्ड बनाया गया है–

5.1. कला पक्ष–

(क) भाषा

(ख) छन्द विधान

(ग) अलंकार विधान

5.2. भाव पक्ष–

(क) प्रकृति चित्रण

(ख) रस

5.1.क. 'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों के कला पक्ष का विवेचन–

'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों का सौन्दर्य कलापक्ष की प्रौढ़ता के कारण निखर गया है। आलोच्य कृतियों में भाषा और शब्द विन्यास की दृष्टि से बड़ा ही अन्तर दिखायी पड़ता है और इसी प्रकार, छन्द चयन और अभिव्यक्ति प्रेषण में भी अन्तर है। 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण' से यह परम्परा शुरू होती है। यह रचना 1924 की है। अतः यह द्विवेदी काल की रचना हुई। उसके बाद शास्त्री जी द्वारा 'चित्रकूट' की रचना 1956 में की गई है और 60 वें दशक के बाद चातक कृत 'चित्रकूट' और दूबे कृत 'चित्रकूट' की रचना हुई है। लक्ष्मीकांत वर्मा रचित चित्रकूट चरित की रचना 1987 की है जो सर्वथा नयी काव्य प्रणाली का अनुसरण करती है। इसमें नये भाव, नई अभिव्यक्ति, नयी व्यंजना, नये संवाद और छन्द के क्षेत्र में सर्वथा मुक्त छन्द का प्रयोग हुआ है। अतः भाषा और भाव दोनों के क्षेत्र में परस्पर पर्याप्त अन्तर देखा जाता है। इन कवियों ने नये भावों का नये ढंग से प्रकाशन किया है। जैसे सर्ग के स्थान पर शिविर का प्रयोग। राम–भरत, जनक, अत्रि सबके अपने शिविर हैं। उन सभी शिविरों में विचार मंथन चलता है। संसद में उसे तार्किक ढंग से प्रस्तुत करना है। इसी प्रकार कुछ काव्यों में पूज्य भावों को स्मरण करते हुए उस वनस्थली का सांगोपांग वर्णन किया गया है। वहाँ कथा नहीं, बल्कि कथा का स्मरण मात्र है। वहाँ कथा प्रधान नहीं स्थान प्रधान है। वहाँ की घटना प्रधान नहीं है अपितु उपेदश और उनकी शिक्षा प्रधान है। इस प्रकार भाषा का एक स्तर कहीं निर्विवाद रूप से स्थित नहीं है। सबको मिलाने वाले जो तत्त्व हैं वह मूल स्रोत से मिला हुआ विषय और आख्यान है।

5.1.क. भाषा–

काव्यभाषा का बहिरंग अर्थात् कलापक्ष सम्बन्धी अध्ययन काव्यभाषा के अध्ययन से ही सम्बन्धित माना जाता है। केवल भाषा का व्याकरणिक या भाषा शास्त्र अध्ययन ही काव्यभाषा का अध्ययन नहीं है। कविता की बनावट के सर्जनात्मक तत्त्व में संवेदना भी प्रमुख है। शब्द और अर्थ के अंतः सम्बन्ध की निर्मिति अर्थात् भाषा की चिन्तन कवि कर्म या काव्य प्रक्रिया का सबसे आवश्यक पहलू है, क्योंकि भाषा में अभिव्यक्ति ही नहीं की जाती **वरन्** अनुभव भी किया जाता है। उसमें कितनी दूर या समीप की स्मृतियाँ आ पायी हैं, कहाँ तक अर्थ छवियाँ नियोजित हैं, यह भी देखा जाता है। मुक्तिबोध के अनुसार 'कलात्मक सौन्दर्य काव्यभाषा का सिंहद्वार है। इसी में गुजरते हुए कीर्ति के मर्म क्षेत्र में विचरण किया जा सकता है।' इस मर्म–क्षेत्र में पहुँचकर' उसे पहचान कर, उसके मार्ग से ही उस जीवन जगत् पर ले जाया जा सकता है, जो जीवन–जगत् आभ्यन्तर और बाह्य इन दो तत्त्वों से निर्मित है। वह जीवन जगत् जो मानव सम्बन्धों, जीवन–मूल्यों, ज्ञान दृष्टियों तथा गहन मानसिक प्रतिक्रियाओं का एक संवेदनात्मक समन्वय है, जो कलाकार के अन्तःकरण में अनेक मिश्र रूपों में संचित होकर अपने सारे वैभव और समृद्धि के साथ अभिव्यक्ति के क्षणों में उद्भासित हो उठता है। इस प्रकार शब्द का ज्ञान, शब्द की अर्थवत्ता तथा सही पकड़ ही कृति बनाती है। ध्वनि, लय, छन्द आदि के सभी प्रश्न इसीमें से निकलते हैं और इसीमें विलय भी

होते हैं। इतना ही नहीं सारे संभावित संदर्भ भी यहीं से निकलते हैं। इसी में युग संवृद्धि का कृतिकार को सामाजिक उत्तरदायित्व का हल मिलता है। इस प्रकार अनुभव से साक्षात्कार के क्षण को शब्द और अर्थ चरम परिणति पर पहुँचाने के हमारे हथियार हैं।[3]

काव्य कृतियों की भाषा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा कवि और पाठक एक दूसरे की मानसिक भावनाओं और विचारों का संप्रेषण एवं ग्रहण करते हैं। रचनाओं के माध्यम से रचनाकारों द्वारा रचित विचारों का ग्रहण पाठक द्वारा तो किया जा सकता है परन्तु रचनाकार उनकी प्रतिक्रियाओं से निर्लिप्त रहता है। भाषा के अन्तर्गत संवाद योजना, शब्द–भण्डार, तथा लोकोक्तियों, मुहावरें आदि पर विचार किया गया है।

5.1.क.1. विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'–

विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण' की भाषा द्विवेदी युगीन भाषा से मिलती–जुलती है। संस्कृत निष्ठ खड़ी बोली और शब्दों का प्रयोग खण्डकाव्य की सौन्दर्य वृद्धि में विशेष योगदान करता है। प्रस्तुत कृति में कहीं–कहीं पर तत्सम, विशेषण तथा अप्रचलित का प्रयोग जान बुझ कर किया गया है। भाषा में प्रयुक्त संवाद–योजना, शब्द–भण्डार, लोकोक्तियाँ और मुहावरे आदि के उदाहरण निम्नांकित है–

5.1.क.1.अः संवाद योजना–

चित्रकूट से सम्बन्धित काव्यों में संवादों का भी उपयोग पात्रों के चरित्र निरूपण के हित में किए गए हैं। नाटक का यह तत्त्व काव्यों में चरित्र चित्रण के लिए बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। संवाद प्रायः दो या अधिक पात्रों के मध्य होता है और पारस्परिक कथनों के काट में तर्क सहित प्रस्तुत किया जाता है। संवाद के लिए यह आवश्यक है कि भाषा पात्र की प्रकृति के अनुकूल हो, उसमें संक्षिप्तता हो, वह पात्र के अन्तर्मन को स्पष्ट करता हो एवं सहज और रोचक हो। जिस संवाद में पात्र के प्रेम, क्रोध, धृणा, व्यंग्य आदि का जितनी सशक्त अभिव्यंजना होगी वह संवाद उतना ही अधिक सफल होगा।

विद्याभूषण 'विभु' के इस काव्य में कहीं भी किसी पात्र के बीच कोई संवाद नहीं है। इसका मूल कारण है कि कवि ने पात्रों के जीवन सम्बन्धित घटनाओं के विवेचन न कर वहाँ के स्थान और उसके सौन्दर्य का वर्णन किया है। यद्यपि कई जगहों पर प्रतिभा, तुलिका आदि का मानवीकरण किया गया है और उन्हीं के साथ लेखक स्वयं बातें करता है और कथा क्रम को आगे बढ़ाता है। यथा–

प्रतिभे! कर प्रवेश तू अपना इस वन की गहराई में।
अन्तरिक्ष के तुंग शिखर पर अन्तस्थल की खाई में।।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0सं0–23)

5.1.क.1.आ. शब्द भण्डार–

इस रचना में रचनाकार ने काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाने के तत्सम, तद्भव, विदेशज आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

तत्सम शब्द–

हे सौन्दर्य्यागार! रूपखनि! सुषमासार मनोहारी!

हे उपवन की अतुलितशोभा! हे सजीवछवितनुधारी।।

दिव्यदतीयों! भव्यभूतियों! विधिविचित्रकृति! चपलाओं!

विचरणशीला कमलपखुरियों! प्रेमपुतलियों! बहलाओ।

(चित्रकुट चित्रण, पृ0 सं0–27)

विदेशज शब्द–

जरजदोजी[4], कामखाब[5] सालिमा[6], गोटा–चुन्नी[7] आदि अरबी–फारसी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है

अप्रचलित शब्द–

ऊज्झटित,[8] कलाप,[9] कपिवल्ली[10], क्षीरपणी[11], चित्रपुच्छ[12], चैत्ररथ[13], जीमूत[14], तंतुनाभ[15], मयूरसारिणी[16], वानीर[17] आदि उस काल के शब्दों का जिन्हें आज लोग नहीं पहचानते उनका प्रयोग हुआ है।

इस रचना में कहीं–कहीं विशेषण युक्त शब्द तथा सामासिकता से पूर्ण अनगढ़ शब्दों का भी प्रयोग है। यथा–

विशेषण युक्त शब्द–

क. 'कविकुल गुरू की रामायण में',[18] '

ख. काव्य केसरी कालिदास ने',[19]

सामासिकता से पूर्ण अनगढ़ शब्द–

'तिमिरासुरदाहकहोली'[20] इत्यादि।

5.1.क.1.इः लोकोक्तियाँ/मुहावरे–

क. कुआँ न प्यासों के घर आता, प्यासे उस तक जाते है[21]।

ख. जिसकी लाठी भैंस उसी की[22]।

ग. सरसों जमा हथेली उपर[23]।

घ. मन बहलावे[24]।

ङ धोखे की टट्टी[25]।

च. बक भक्तों की बन आई[26]।

छ. नाम बड़े दर्शन थोड़े [27]।

5.1.क.2 रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट'–

शास्त्री' जी की 'चित्रकूट' की भाषा शुद्ध परिमार्जित एवं परिस्कृत साहित्यिक हिन्दी भाषा है। इन्होंने एक सर्ग में गीत की योजना की है वहाँ भी उनकी भाषा शुद्ध हिन्दी ही है। इनकी भाषा साठ के दशक के पूर्व की है। इसमें संस्कृत निष्ठ शब्दों का प्रयोग उसकी लालित्यवर्धन हेतु ही किया है। कहीं–कहीं जान बुझ कर तद्भव शब्दों का प्रयोग भाषा में प्रवाहता के लिए किया है। यथा हर्षित होकर सुर करते थे, पारिजात–पुपों की वृष्टि।[28] भाषा के अन्तर्गत यहाँ उनकी संवाद योजना, शब्द भण्डार, मुहावरे आदि पर संक्षेप में विचार किया गया।

5.1.क.2.अ. संवाद–

किसी भी काव्य को तब गति मिलती है जब उसमें संवाद की योजना ठीक ढंग से की गई हो। यह योजना काव्य में नाटकीयता उत्पन्न करता है। शस्त्रीजी ने भी राम–सीता, सीता–अनुसुया, राम–लक्ष्मण, राम–भरत, राम–कैकेयी आदि के बीच संवाद के द्वारा उनके भावों को प्रकट करवाया है। जैसे– तो वह बोल उठी अनुसूया/सीता से रोती–रोती/तुम्हें न रानी कुश–कंटक–मय/पथ में हाय, व्यथा होती?[29] अन्य उदाहरण है–

राम–भरत संवाद–

कहो,कहो, हे भरत! न रोको तुम अपना उद्गार अहो!
नयन–नीरनिधि के पहना दो/ मुझको मौक्तिक–हार अहो!
हाय कहूँ क्या भैया! मैं तो/भवसागर में डूब रहा,
भारभूत है देह बनी यह/ जीवन से मैं उब रहा।[30]

इस तरह की संवाद योजना पूरे काव्य में की गई है।

5.1.क.2.आ. शब्द भण्डार–

इसमें तत्सम,तद्भव आदि शब्दों को प्रस्तुत किया गया है।

त्त्सम शब्द–

तन्वी[31], धन्वी[32], चरण[33], पाषाण[34], स्पर्श[34], तरू [35], कानन[37], तट[38], भूरूह[39], तोय [40], मार्जारी[41], लुब्धक, [42] सोपान[43] इत्यादि।

तद्भव शब्द–

पाहन, [44] कलेजा, [45] इत्यादि।

देशज शब्द–

पिन्हा।[46]

यहाँ विशेषण युक्त शब्दों का प्रयोग भी द्रष्टव्य होता है जैसे– रविकुल गुरू के संग सभा में[47]।

5.1.क.2.इ. मुहावरे–

क. पत्थर पर डुब जाना	–	यहाँ शिला पर दूब देख कर[48]
ख. मन हरना	–	इस सरिता तट पर मन हरती[49]
ग. दाल गलना	–	तेरी खुब गली थी दाल[50]
घ. घड़ो पानी पड़ना	–	सौ घट पानी आज पड़ा है[51]
ङ काठ बनना	–	काठ बने वे वहीं खड़े थे[52]
च. दाँत पीसना	–	दॉत पीस के अंधी–अंधे[53]
छ. कलेजा मुँह का आना	–	अहह, कलेजा मुँह तक आया[54]

5.1.क.3. मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत चित्रकूट'–

'चातक' कृत चित्रकूट साठोत्तरी कवित के श्रेणी में आती है। काव्य सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए युगीन भाषा यानी खड़ी यानी हिन्दी का ही प्रयोग किया गया है। भाषा प्रवाहमय है और कहीं कोई शब्द अनगढ़ और प्राचीन नहीं है और कही–कही संस्कृत के श्लोकों का अनुवाद बहुत ही सरल और परिमार्जित भाषा में किया गया है। जैसे– 'परित्याज्य है व्यक्ति वंश–हित/और राज्य–हित है परिवार,/मातृभूमि के लिए किन्तु है/यह समर्पण देश बलिहार।'[55]

5.1.क.3.अ. संवाद–

कथाक्रम को आगे ले जाने के लिए कवि ने अनेक पात्रों के बीच संवादों की सुन्दर योजना की। जैसे– राम–सीता, राम–कैकेयी, राम–भरत, राम–वशिष्ठ आदि।

क. राम–भरत के बीच–

अश्रु बहाते अश्रु पोछकर
उन्हें अंक में बैठा कर
x x x
भरत भ्रातृवर, घर पुर में है
सब प्रकार सब कुशल वहाँ ?
कैसी कुशल? कहाँ ? कौशल में ?
कुशल रूप जब आप यहाँ ।

(चित्रकूट, पृ0 सं0–23)

यहाँ चातक जी ने बहुत छोटे संवाद द्वारा ही बहुत कुछ भरत के मुहँ से कहलवा दिया है।

5.1.क.3.आ शब्द भण्डार –

इस कृति में चातक जी ने तत्सम, तद्‌भव तथा देशज शब्दों का प्रयोग किया है। कहीं–कही संस्कृत पदावली को सरल हिन्दी में प्रस्तुत किया है।

तत्सम शब्द–

दुकूली[56], लावणीय [57], परिधि[58], पुटी[59], चंचुभूत[60], निमज्जित[61] आदि।

तद्भव शब्द–

नयन[62], संकट[63] आदि।

देशज शब्द–

लेपन[64], बबुआ[65] आदि।

5.1.क.3.इ. लोकोक्तियाँ/मुहावरे–

बिना नीर मछली व्याकुल[66]।

लगे जल में भरने आदि[67]।

5.1.क.4. रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'–

आलोच्य कृति की भाषा परिनिष्ठ हिन्दी है। इसमें प्रयुक्त संवाद बहुत सहज और सरल है। यह तीर्थ– भूमि राम और भरत के प्रेम मिलन को बार–बार उद्भाषित करती है। अतः कवि की भाषा उस प्रेम रूपी मंदाकिनी का सहज स्पर्श पाकर तरंगायित हो रही है। दुबे जी ने पूरा चित्रकूट की कथा को पाँचों सर्गों में कह दिया है। इनकी भाषा बिल्कुल सहज अनवद्य है।

5.1.क.4.अ. संवाद–

प्रस्तुत काव्य में प्राकृतिक परिवेश में पात्रों के चरित्र को अनेक संवादों द्वारा उभारा गया है। छोटे–छोटे संवाद हैं, जिनमें कहीं कोई उक्ति वैचित्र्य नहीं केवल सहज अनुराग का आग्रह मात्र है। इस रचना में सीता–लक्ष्मण, राम–सीता, राम–कैकेयी, सीता–उर्मिला, लक्ष्मण–सुमित्रा आदि के बीच सुन्दर संवाद की योजना की गई है।

सीता–लक्ष्मण का संवाद–

क. सीता बोली घृणित पंख में कमल नहीं क्या मिलता?
कंटक भरी डाल पर ही क्या सुमन नहीं खिलता?
x x x x x x
तो साकार बने जगती में जीवन के सुख–सपने
भावी! तुम हो भली, इसलिए सभी भले है लगते।
x x x x x x
भोग रहीं वन में रहकर आज यह दण्ड सारा।

(चित्रकूट, पृ0सं0–14)

राम–कैकेयी–

ख. बेटा बैठो! निकट, तुम्हें मैं अपनी कथा सुनाउँ

चले गए वे तुमसे कहकर जी का जलन मिटाउ।

(चित्रकूट, पृ0सं0–38)

5.1.क.4.आ. शब्द भण्डार–

इस खण्ड काव्य में अधिक से अधिक तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है। जिससे इसकी भाषा परिनिष्ठित हो गई है। इस काव्य की कथा वस्तु पौराणिक है। इसलिए तत्सम शब्दों के प्रयोग से भाषा सांस्कृतिक भावों, अनुभूतियों, विचारों को अभिव्यंजित करने में पूर्ण रूप से सक्षम है। तद्‌भव शब्दों के प्रयोग से भाषा में बोध गम्यता, सहजता, सरलता आ गई है। कहीं–कहीं कवि ने देशज शब्दों का प्रयोग किया है जिससे भाषा का सौन्दर्य बढ़ गया है। विदेशी शब्दों के प्रयोग से इस काव्य की भाषा की व्यापकता बढ़ गई है। भाषा प्रांजल परिनिष्ठित और प्रवाह से परिपूर्ण है। कही–कही तत्सम शब्दों के अधिकता के कारण भाषा जन सामान्य के पहुँच से बाहर हो गई है। कवि ने एक अर्थ देने वाले अनेकानेक शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे– नदी के लिए नदी, तटनी इत्यादि। 'झर–झर करता निर्झर देखों' जैसे प्रयोग से भाषा में ध्वन्यात्मकता आ गई है।

तत्सम शब्द–

क्षितिज[68], श्याम[69], घन[70], मुख[71], पद[72], चिह्न[73], संदेश[74], धरा[75], कण[76], सारणी[77], भिक्षा[78], आकृति[79], सहसा[80], पुलक[81], सुमन[82], कली[83], मुकुल[84], खग[85], मृग[86], चंचल[87], गति[88], मति[89], वायु[90], शुद्ध[91], उत्कंठित[92], तरू[93], शिखर[94], शाखा[95], उत्सुक[96], मुखर[97], श्रृंग[98], आसिन[99], वारिध[100], अनिल[101], चपल[102] इत्यादि।

तद्‌भव शब्द–

नई[103], सुध–बुध[104], उँचा[105], बहुत[106], दायाँ–बायाँ[107], पाहुन[108], छाँह[109] इत्यादि।

देशज शब्द–

चहेक[110], हलचल[111], चल–दल[112], झाँकि[113], अटपट[114], साठी[115] आदि।

विदेशज शब्द–

सफरी[116], पर्दा[117], बाट[118], तरकश[119] इत्यादि अरबी, फारसी और पुर्तगाली शब्दों का बड़ी ही सुन्दर प्रयोग है।

5.1.क.4.इ. लोकोक्तियाँ/मुहावरे –

इस कृति में कवि ने लोकोक्तियों का प्रयोग नहीं कर मुहावरा के द्वारा काव्य के सौन्दर्य को निखारा है।

क.	आँखे मुंद जाना	–	और राम के बिना पिता की आँखें कब मुंद जाएँ[120]।
ख.	विपदा का पहाड़ ढाना	–	अच्छे–भले राज्य पर विपदा का पहाड़ ही ढाए [121]।
ग.	खाई खोदना	–	स्नेह–अजिर में ही विभेद की जिसने खोदी खाई[122]।
घ.	बल खाना	–	तटनी का घुमाव तो देखो! कितना ही बल खाती[123]।
ङ.	आग लगाना	–	स्वयं जली क्यों नहीं कि जिसने घर में आग लगाई[124]।
च.	ठठोली करना	–	भाभी अपनी बात कह रहीं की सौमित्र ठठोली[125]।
छ.	आसन जमना	–	किन्तु, अयोध्या में ही तुम आसन अभी जमाए [126]।

5.1.क.5. लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'–

भाषा की दृष्टि से 'चित्रकूट चरित' की भाषा मानक खड़ी बोली है। इस भाषा के प्रयोग से काव्य सौन्दर्य, भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति में वृद्धि हुई है। इसमें बोलचाल की भाषा का भी प्रयोग है, किन्तु इसमें प्रयुक्त प्रचलित शब्द भी रचना प्रक्रिया में बँधकर किसी विशेष अर्थ और भाव के बोधक बने हैं। वे निश्चित ढंग के बिम्ब तैयार करते हैं जिनसे अर्थ बोधन की क्षमता बढ़ जाती है। आलोच्य कृति की भाषा शब्दों को अर्थवान बनाने, बिम्ब निर्मित कर शब्दों के अर्थाभिव्यक्ति पूर्णतः सक्षम है।

आलोच्य कृति की भाषा के बारे में प्रत्यक्ष रूप से कुछ नहीं कहा है किन्तु, इसमें कुछ ऐसी उक्तियाँ प्राप्त होती है जिनसे भाषा के सृजनात्मक रूप के प्रति कवि के दृष्टि का अंदाज लगाया जा सकता है। कवि यह मानता है कि शब्द ही शक्ति है, जिसका अपव्यय नहीं किया जाना चाहिए। आदिवासी युवजनों को एक वृद्ध सलाह देते हुए कहते है–

> शब्द शक्ति है,
> उसका अपव्यय महापाप है।

(चित्रकूट चरित, पृ0सं0–18)

और भावों को संदर्भहीन बनाने वाले प्रयोग भी वांछनीय नहीं है। भरत और माण्डवी का वार्त्तालाप इन्हीं भावों को ध्वनित करता है–

> अर्जित भाव जटिल हो करके
> संदर्भों से छूट रहे थे
> मैंने केवल कुछ शब्दों के
> अर्थ उधारे,
> भावों को संदर्भ दिया है।

(चित्रकूट, चरित, पृ.सं. 64)

5.1.क.5.अ. संवाद –

संवाद योजना के द्वारा घटना क्रम का विकास होता है और उनमें नाटकियता उत्पन्न होती है।

वशिष्ठ – क्या आज्ञा है मुनिजन बोले? कौन सत्य है?

याज्ञवल्क्य – बहुत कठिन है भेद बताना। राम भरत के भाव पक्ष का

जाबाली – कायरता है यह हम सबकी। हम सत्य नहीं कह पाते खुलकर

क्यों डरते हैं सत्य पक्ष से।

याज्ञावल्क्य – क्या है सत्य बताएँ हमको, हम भी जाने मर्म आपका आदि।

पूरी पुस्तक में संवाद योजना इसी रूप में प्रयुक्त हुई है। इसमें कहीं–कहीं अधिक तार्किकता को प्रश्रय दिया गया है। अतः कथन तर्क–वितर्क का स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं, किन्तु वैविध्य और वैचित्र्य दोनों दृष्टियों से इन संवादों का महत्त्व अधिक है। कहीं–कहीं शैली में उपदेश और प्रवचन प्रमुख हो गये हैं।

5.1.क.5.आ. शब्द भण्डार –

अतः भाषा को अभिव्यक्तिक्षम बनाने के लिए कवि ने बिम्बों, सूक्तियों, मुहावरों इत्यादि से भी काम लिया है। बोलचाल की भाषा के साथ इसमें तत्सम बहुल शब्दावली का प्रयोग हुआ है। कहीं–कहीं तत्सम का तद्‌भवीकृत रूप भी मिलता ह। जिससे काव्य सौन्दर्य में वृद्धि ही हुई है, यथा–

तत्सम का तद्‌भवीकृत रूप–

(क) गहन से लगे हुए रघुकुल उपर,

(क) राम सुअन को गहन मुक्तकर/मैंने ही पुरुषार्थ दिया है।

(चित्रकूट, चरित, पृ.सं. 39–40)

इस कृति में कुछ ऐसे शब्द भी प्रयुक्त हुए जिनका प्रचलन विशेष पारिभाषिक रूप में होता है यथा–

(क) सधवा को ईच्छा, लिए सिंघारा[127]

(ख) हम निहंग हैं, हम वनवासी[128]

(ग) तुम भूमि–पुत्र हो वन–मानुस हो[129]

(घ) हे भक्त सुअन हे प्रकृत पुत्र तुम[130]

(ङ) कभी न इनमें खुनुस हुई है[131]

5.1.क.5.इ. **मुहावरे/लोकोक्तियाँ** –

आलोच्य कृति में मुहावरों, कहावतों और सूक्तियों का प्रयोग देखने में आता है। इससे भाषा को अधिक सम्प्रेषणीय और तीव्र बनाया गया है, जैसे –

1. नाव संभालना– हमसे कहा भरत वध्य है नाव संभालो[132.]
2. वाण चढ़ाना– प्रत्यंचा पर वाण चढ़ाओ[133.]
3. जूझारू बाजा बजाना– और जूझारू वाद्य बजाओ[134]
4. स्वांग करना– सबसे सब स्वांग कर रहे है।[135]
5. चक्रव्यूह रचना– कैसा चक्रव्यूह रच डाला।[136]
6. उद्‌याचल गहराना– धनीभूत होकर गहराया अन्तर्मन में उदयाचल[137]
7. विश पीना– कैसे पी लूँ राजनीति विष[138]
8. उल्कापात होना– उल्कापात गिरेंगे निशिदिन[139]

लोकोक्तियाँ –

1. अर्थ सदा अनर्थ का साथी, [140]
2. घटना ही बनती दुर्घटना, [141]

सुक्तियाँ–

1. मिलता है ऐश्वर्य उसी को
   जो परमार्थ भाव रखता है,[142]
2. कर्महीन देवता केवल
   अर्जित पुण्य भोक्ता होता, [143]
3. मानव जीवन पुरूषार्थ जन्य है[144]
4. तप कायिक ही नहीं है केवल
   वह संकल्प शक्ति है मन की[145]
5. परम ज्ञान ही भाव भक्ति है[146]
6. भरत धर्म की धुरी सुघर हैं।
   राम 'तथास्तु' शक्ति है जिसकी[147]
7. बिना देह को भक्ति न मिलती
   बिना भाव के भजन न होता[148]
8. माँ से माँ अवतरित सदा हो
   माँ की माँ से ही उठे उमगे[149]
9. प्रजा राम, भरत, क्या जाने

उसे चाहिए अच्छा शासक[150]

10. यदि सेवा से कष्ट इष्ट को

तो सेवा भी सहज त्याज्य [151]

11. निमित्त मात्र बनकर रहना,

जो भी आवे उसको सहना भक्ति भाव ह[152]

12. राजा बनने का अधिकारी केवल वह है जो हो स्वयं तपस्वी।[153]

13. विषम सत्य की रक्षा को मर्यादा कहना महानाश है[154]

14. वर्तमान को मुक्त भोगना भी तप होता[155]

15. राम भरत में भेद नहीं कुछ राम कर्म की मर्यादा है

भरत धर्म की धुरी मनोरम[156]

16. राज्य प्रजा का ही होता है[157]

17. व्यक्ति अंश है ईश्वर का ही[158]

18. कालचक्र की गति निर्मम है[159]

19. जो कुछ जैसा दिखता है कभी नहीं वैसा होता है[160]

20. कर्त्ता मनुष्य है कर्म श्रेष्ठ है[161]

21. कर्म यज्ञ है[162]

22. कर्म भावमय, भाव कर्ममय

यही तपस्या की स्थिति है[163]

23. सारा जग ही परमेश्वर है[164]

24. विश्व रूप ही राम भाव है[165]

25. इस रचना को अनुभव करना

स्वयम् राम को पा जाना है[166]

इस प्रकार आलोच्य कृति में मुहावरों और कहावतों की अपेक्षा सूक्तियों को अधिक महत्त्व मिला है। सूक्तियों की सूत्रात्मक उक्तियाँ गागर में सागर भर देती हैं।

5.1.ख. 'चित्रकूट' संज्ञक काव्य की छन्द योजना–

आलोचना की इस क्रम में विवेच्य कृतियों में छनद योजना पर प्रकाश डाला जाएगा। विशेष रूप से मात्रिक और वार्णिक छन्दों, इनकें भेदों पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया है। छन्द विधान के अवलोकानार्थ प्रमुख छन्दों को ही मान्यता देने की पक्ष में है क्योंकि अलोच्य कृतियों की संख्या अत्याधिक है। इस कारण छन्दों की सूक्ष्म विभक्ति और उनके अवलोन से बचा जाएगा।

5.1.ख.1. विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'–

'विभु' के इस काव्य में मात्रिक छन्दों का सम्यक प्रयोग देखने को मिलता है। निम्न दो छन्दों में मात्रा की गणना कर इसे समझा जा सकता है।

क.	चतुर चितेरे की रचनाएँ देख चेतना चकतराती।	(30)
	चर्मचक्षु–गति–चर्चा क्या जो, चरमावधि से टकराती।।	(30)
	अचलाचल चातुर्य चिरंतन, अच्युत चरित सिखाते हैं	(30)
	चित्ताकर्षक चित्रकूट का चित्रण चारू दिखाते है।[167]	(30)
ख	उठो–उठो कह उठा सवेरे जगको सजग बनाता है	(30)
	काणत्र त्रय का पाठ भली विधि तीन बार बतलाता है	(30)
	उषा वातत्रय सेवन से दोष तापत्रय खोते हैं।	(30)
	वर्गमय उपरान्त मोक्ष कके वे अधिकारी होते है।[168]	(30)

5.1.ख.2. रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट'–

शास्त्री जी कृत चित्रकूट को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें शास्त्र को बहुत अच्छा ज्ञान था। इसलिए उन्होंने इस रचना में सवर्त्र छन्द के नियमों का ध्यान रखा है। दोहा, सोरठा इत्यादि पदों की रचना भी की है। यथा–

दोहा–

अम्ब! बंधु दोनो गये, तजकर मेरा साथ
अब तो केवल राम, है अनाथ के नाथ।[169]

इसमें में तेरह और ग्यारह मात्राओं का ठीक–ठीक प्रयोग हुआ है। अतः यह सिद्ध होता है कि यह दोहा छन्द है।

सोरठा–

भू–तनया–सौमित्र, श्रीहरि से सहमत हुए
पर्ण–कुटिर विचित्र, तनने को उद्यत हुए।[170]

इसमें में ग्यारह और तेरह के विराम पर चौबीस मात्राएँ हैं। अतः यह सोरठा है।

इसके पश्चात कहीं–कहीं काव्यों में संगीतात्मकता उत्पन्न करने के लिए छन्द बदल दिए गए हैं। जैसे सर्ग के अंत में वशंस्थ, मालिनी मन्द्राकांता आदि का प्रयोग हुआ है। यथा–

वंशस्थ–

हरितिमा की सुषमा यहाँ है,
विमोहित चित वनस्थली है।

अमोल है बोल बिहंगमों के
सुधा रानी कोकिल–काकली है।[171]

मालिनी–

सुरपति–सुत ने भी की यही धृष्टता थी
तन धर कर आया काग का थ अभागा।[172]

कवित्त –

एक राम देखा यही स्वप्न दाशरथि ने कि
कोई केसरी ह"जल रहा दावानल में।[173]

यह वार्णिक समवृत्त छन्द है।

मन्द्राकांता–

आशंका से अपशकुन की व्यग्र हो के बड़े ही,
कान्ता से औ अनुजवर से पुण्डरीकाक्ष बोले
"शोभाशाली इस उटज को त्याग के शीर्घता से
पादाब्जों की विमल रज ले अत्रि के शांति पावें।[174]

इसमें में म,भ,न,त,त,दो गुरू को प्रयोग होता है। अतः इस पंक्ति में भी यही रूप परिलक्षित होता है। इसलिए यह मन्द्राकांता है।

गीत–

षष्ठ सर्ग के अन्त में शोक गीतों का नियोजन है, जैसे–'अहह, उड़ा निशीथ में करस्थ कीर है।'[38] या

'थी छोटी सी चिनगारी!
भस्मसात जिसने किया सोने का संसार
केकय दुहिता की दिया मति को जिसने मार,
थी तुच्छ मंथरा नारी।

(चित्रकूट, पृ.सं.104)

फिर एक गीत का मुखड़ा है यदि आज भरत आ जाते रूला गये वे रूला गये' पुनः दशरथ अपनी जर्जर स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं– 'अब आयी चलन की बेला। तड़प रहा हूँ आज अकेला।' अन्यगीत का मुखड़ा है– 'वन में चला गया अभिराम राम मेरा।' इन गीतों में महाराज दशरथ का दग्धहृदय पूर्णतः शब्दित हुआ है। जैसे, वे राम के वियोग में अब अपना जीवन संसार में रहने योग्य नहीं समझते। 'संसार में भला है अब कौन काम मेरा'। इन सभी गीतों की भाषा अत्यन्त सरल, सुबोध और सुन्दर मुखड़ों से सम्पन्न है। शोक की संतप्तता में जितने तरह के भाव उमड़ सकते हैं उनको गीत का रूप दिया गया है।

5.1.ख.3. मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत चित्रकूट'–

कविवर मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत 'चित्रकूट' में चार चरणों की चतुष्पदियों का प्रयोग आदि से अन्त तक किया गया है। इन्होंने द्वितीय और चतुर्थ चरणों को सप्रयास तुकांत रूप देने का यथा सम्भव प्रयत्न किया है। छन्दों की परिभाषा के अनुसार, अनेक छन्द मात्रिक और वर्ण वृत्त छन्दों के किसी प्रकार से समाविष्ट नहीं हो पाते। उदाहरण द्रष्टव्य है–

क. कही शिखर से निर्झर गिरते
कल कल कही प्रवाहित श्रोत,
वर वृक्षों की सघन छाँह में
अति शीतल सविता–उद्योत।[177]

ख. पड़ कैकेयी के कुचक्र में
किया पिता ने व्रत दुष्कर
किंतु विरह से व्याकुल हो वे
तात सिधार गए सुर–पुर।[178]

यह एक विषम मात्रिक छन्द है तथा मात्रिक छन्दों के किसी भी प्रकार में व्यवस्थित नहीं होता। वर्णों की गणना के आधार पर उपरोक्त चतुष्पदी इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा की काफी निकट प्रतीत होते है क्योंकि इसमें भी ग्यारह–ग्यारह वर्ण है । परंतु प्रथम और द्वितीय में बारह–बारह वर्ण है। गणना के आधार पर यह सिद्ध होता है कि यह इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा नहीं हो सकती। इसकी प्रथम पंक्ति में गणों की संरचना ज,स,ज,स के क्रम में है। अतः प्रथम पंक्ति के आधार पर यह जलोद्धतगती है।

5.1.ख.4. रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'–

इस कृति में छन्दों की सम्भाविता का पता लगने हेतु कुछ अवतरणों की मात्राओं की गणना करने से यह स्पष्ट होता है कि इसमें न ही तो वार्णिक छन्द है और न ही मात्रिक। इनमें छन्दबद्धता का अभाव है। यथा–

क. मिला कौर संदेश धरा को, कण–कण सहसा पुलकित
वनराजी हँस रही, सुमन खिलते कलियाँ भी मुकलित।[179]

ख. कोटी–कोटी है नमन, धर्म की ध्वजा जहाँ फहराई
कीर्ति भरत की जहाँ राम से भी आगे बढ़ छाई।[180]

इसमें वर्णों की संख्या इक्कीस है पर यह वर्णिक छन्द नहीं है और मात्राओं की गणना करने पर इसमें अठ्ठाईस और उन्तीस मात्राएँ है। यह मात्रिक छन्द भी नहीं है। किसी प्रकार की इसमें छन्द बद्धता नहीं है।

5.1.ख.5. लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'–

वर्मा जी कृत 'चित्रकूट चरित' आधुनिक काल के नयी कविता के होने के कारण इसमें छन्द सम्बन्धी वही मान्यताएँ अपनाई गई है जो नई कविता के अनुकूल है। इसमें प्रयुक्त अधिकांश छन्द मुक्त हैं परन्तु रचना छन्द मुक्त नहीं है। शिविर के अन्त और आरंभ करते हुए प्राचीन मात्रिक छन्दों को नवीन कलेवर प्रदान कर प्रयुक्त करने की रीति भी अपनायी गयी है, जैसे–मातृ शिविर का आरंभिक छन्द देखा जा सकता है–

> चित्रकूट में कामद गिरि की/घाटी में था अवध शिविर का,
> माताओं के बीच चल रहा/वहीं प्रवाद था राम भरत का।[181]

इन छन्दों में प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ प्रयुक्त हुई हैं। यह प्रयोग इसे प्राचीन चौपाई छन्द के अनुरूप बनाता है। इसी प्रकार ऋषि–शिविर का अंतिम रूप देखने योग्य है, यथा–

> बढ़ी जा रही तरू छायाएँ (15)
> कहीं जा रही जिज्ञासाऐं (15)
> फटी जा रही है शंकाएँ (15)
> बढ़ी जा रही मौन दिशाएँ [182] (15)

इसके प्रत्येक चरण में 15–15 मात्राएँ प्रयुक्त हुई हैं। अतः यह सब मात्रिक वृत्त का उदाहरण बनता है। प्राचीन चौपाई छन्द से उसकी निकटता सहज ही स्थापित होती है। काव्य का अन्त भी 16 मात्रिक समप्रवाही वृत्त से हुआ है। जैसे–

> हो गयी विसर्जित सभा तभी (16)
> सब उठे चले नीज शिविर ओर (16)
> प्राची में उगता दीप्तमान (16)
> वह सोम कलश तम तिमिर तोर[183] (16)

यह सोलह मात्रिक समप्रवाही वृत्त प्राचीन पादाकुलक छन्द के निकट पड़ता है। इसके चरणों के आरम्भ में विषम मात्रिक शब्द प्रयुक्त नहीं हुए है। इस पूरे काव्य में बहुलता मुक्त छन्द की है, पर भावानुकूल होना उसकी सर्वोपरि विशेषता है। छन्द प्रयोग की दृष्टि से इस कृति को नयी कविता की उत्तम उपलब्धि कह सकते हैं।

5.1.ग. चित्रकूट काव्यों में अलंकार विधान–

अलंकार किसी बात को बनाकर या सजाकर कहने की एक विशिष्ट शैली है। अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति 'अलम' से हुई है। जिसका अर्थ है भूषित करना, अर्थात जो भूषित करता है वही अलंकार है।

अलंकार के प्रयोग से कविता अधिक सुन्दर लगने लगती है। आलोचना के इस क्रम में विवेच्य कृतियों में समय–समय पर दृष्टिगत अलंकारों का वर्णन किया गया है।

5.1.ग.1. विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'–

'विभु' जी ने खण्ड काव्य 'चित्रकूट चित्रण' में अलंकार योजना का विशेष ध्यान दिया गया है। कवि ने अपनी कृति में मुख्य रूप से शब्दालंकारों अनुप्रास तथा अर्थालंकारों में उपमा, रूपक और प्रतिवस्तूपमा आदि का प्रयोग किया है।

'विभु' के इस कृति में अनुप्रास अलंकार अत्यंत सुन्दर वर्णन किया गया है। अनुप्रास के विभिन्न भेदों के साथ उनके उदाहरण द्रष्टव्य है–

अंत्यानुप्रास–

क. चिदानन्द आनन्द कन्द की यह विचित्र वसुधा प्यारी।
विन्धाचल विख्यात इसी पर बढ़ा रहा शोभा न्यारी।।[184]

ख. जहाँ तपोवन बने हुए ऋषि–मुनियों के सुखदाई।
जहाँ मिलन श्रीराम–भरत का प्रेम–रूप भाई–भाई।।[185]

ग. उमर चली उत्कण्ठा सरिता रूकना दुष्कर जानो/मानो[186]

घ. अतः सकल उपयोगी साधन लेकर चलने की ठानी/सैलानी[187]

ङ हार्दिक स्वागत किया सुरों ने न्योछावन करते मोती/बोती।[188]

इन पंक्तियों में 'प्यारी–न्यारी', 'सुखदाई–भाई', 'जानो–मानो', 'ठानी–सैलानी', 'मोती–बोती' में अत्यानुप्रास है। इसी प्रकार से पूरा काव्य में अत्यानुप्रास की योजना की हैं।

छेकानुप्रास–

चतुर चितेरे की रचनाएँ चेतना चकराती।[189]

वृत्यानुप्रास–

क. चर्मचक्षु–गति–चर्चा कया जो चरमावधि से टकराती।[190]

ख. अचलाचल चातुर्य चिरंतन अच्युत चरित सिचाते।[191]

ग. चित्ताकर्षक चित्रकूट का चित्रण चारू दिखाते।[192]

घ. अतल वितल तल और तलातल पूरित जिसकी माया से।[193]

ङ तरलित तुरंगतरंग तोय की तीरों पर बह आती है।[194]

च. कोई पशु क्रय–विक्रय करते, कोई रोग छुड़ाते है।[195]

यहाँ एक ही वर्णो की आवृति बार–बार हुई हैं। अतः यहाँ वृत्यानुप्रास है।

रूपक–

मेल समीर सुरभि का स्वान्तः कली खिलाता है।[196]

मेल के लिए समीर उपमान रूपक है।

उपमा–

बीजों की का माला सी लटकी कैसी सुन्दर फलियाँ।[197]

यहाँ बीज उपमेय के लिए माला उपमा है। अतः यह उपमा अलंकार है।

प्रतिवस्तूपमा–

दूर आवरण हो जाते है दिव्य चक्षु खुल जाते है।
जैसे सलिल और साबुन से सारे मल धुल जाते है।।[198]

यहाँ दूसरा वाक्य पहले वाक्य के सादृश्य ही है और अर्थांतरन्यास में दूसरा वाक्य पहले वाक्य का समर्थन करता है। इसलिए यहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार है।

5.1.ग.2. रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट'–

शास्त्री जी ने चित्रकूट में अलंकारों का प्रयोग किया है। जिसमें मुख्य रूप अनुप्रास, उपमा, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग है। इन अलंकारों में अनुप्रास का अत्यंत सुन्दर वर्णन है।

अनुप्रास अलंकार–

अत्यानुप्रास–

क. वन में भी थे सब साधन
करते हरि का आराधन।[199]

ख. जग कर कौसल्या–नन्दर ने, पाई विपुल–व्यथा
फिर दुःस्वप्न कथा।[200]

ग. इनकी अहा क्षमा जननी है, पुण्य पिता, भ्राता संतोष
शांति गोहिनी, भिक्षा कोष।[201]

घ. चमक चमक पथ बतलाती, रजनी में इनको शम्पा
मुनियों की अनुकम्पा।[202]

यहाँ 'साधन–आराधन', 'व्यथा–कथा',संतोष–कोष',अनुकम्पा आदि में अत्यानुप्रास है। यह पूरा काव्य इसी रूप में रचित है।

छेकानुप्रास–

चमरी किनको चमर डुलाती, इन निर्जन में खड़ी–खड़ी।[203]

यहाँ चमर चमर, खड़ी–खड़ी का प्रयोग एक ही बार हुआ है। अतः यहाँ छेकानुप्रास है।

वृत्यानुप्रास–

क. चित्रकूट पर चित्र लिखे से, ये खग–मृग मन हरते है।[204]

ख. श्रीहरि ने वन–वैभव देख, अवध –विभव में भूल गये।[205]

इसमें एक ही वर्ण की आवृति बार–बार हुई है। अतः यह वृत्यानुप्रास का उदाहरण है।

यमक–

पुष्करिणी पुष्कर में जल को, पुष्कर से लाती भर–भर।[206]

यहाँ पुष्कर का प्रयोग दो बार हुआ है और दोनों के अर्थों में भिन्नता है। एक का अर्थ जलाशय और दूसरा का पुष्कर स्थान से है।

उपमा–

क. गिरिजा–सी नगपति, यह भी कोई कन्या है।[207]

ख. सीता के गुण–गीता–सी।[208]

यहाँ सीता की उपमा पार्वती से की गई है और दूसरे में गीता से। अतः इन दोनों उदाहरणों में उपमा अलंकार है।

रूपक–

क. शुचि–सलिल पिया था, कोटि क्रीड़ा जहाँ की।[209]

ख. उदर–दरी से तू निकला है, जैसे कीट पनालों से।[210]

'शुचि' के लिए 'सलिल', 'कोटी' को लिए 'क्रिड़ा', 'उदर' के लिए 'दरी' और 'कीट' के लिए 'पनाल' का रूपक बॉधा गया है।

5.1.ग.3. मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत चित्रकूट'–

आलोच्य काव्य में चातक जी ने अलंकारों का भरपूर प्रयोग किया है। अन्य चित्रकूट संज्ञक काव्यों की ही भांति इसमें अनुप्रास अलंकार के विविध रूप के साथ उपमा, रूपक आदि अलंकारों का भी प्रयोग है।

अनुप्रास अलंकार–

अत्यानुप्रास–

क. शीतल सुखद सघन छाया
नीचे शाल–ताल–पत्रों से एक विशाल सदन छाया।[211]

ख. करती कल–कल लारी गान
करा रही श्रवते–पय पान।[212]

ग. और न जिसको सकता नाप
बंधु–अनुगनता का माप।[213]

घ. मृग, चकोर, शुक्र, पिक सारी

आ–आकर बारी–बारी।[214]

ङ बिंबा मुँह भर लिए प्रभर

द्राक्षा–गुच्छ घृष्ट–लंगूर।[215]

यहाँ 'दाया–छाया', 'गान–पान', 'नाम–माप', 'सारी–बारी', 'प्रभूर–लंगूर' आदि में अत्यानुप्रास है। इसका प्रयोग चित्रकूट में बहुत किया गया है।

वृत्यानुप्रास–

क. सुभग फूल–फल देना इनका, लोष्ट–यातना का प्रतिफल।[216]

ख. जटा–जूट सिर पर निवध्य कर, और त्रोण कर के कटि वध्य।[217]

ग. रूद्र रोद्र में हुए युद्ध को रौद्र रूद्र पटतर कटिवध्य।[218]

घ. किंचित कोल्ह किरातों ने तब, आकर सत्वर सभय कहा।[219]

छेकानुप्रास–

फूट–फूट कर विलख–विलख वह फेर–फेर कर कर मुख पर।[220]

एक जैसे वर्ण की आवृति एक बार हुई है। अतः यह छेकानुप्रास का उदाहरण है।

यमक–

क. वह फेर–फेर कर कर मुख पर

नत नयनों ने उन्हें निरखती।[221]

ख. पूछा फिर शंकित स्वर से

जलतो नहीं रहें हैं अब भी

तात,तात मेरे ज्वर से ?[222]

यहाँ 'कर' का प्रयोग दो बार हुआ है और दोनों के अर्थ भिन्न है। 'कर' का अर्थ करना से है और दूसरे का हाथ से। दूसरे उदाहरण में तात का अर्थ पिता और दूसरे में जलने से है। अतः यहाँ यमक है।

रूपक–

क. प्रकृति–नटी रचती है कैसी, नित नव–उत्कर्षित आकृति।[223]

ख. पृष्ठ शिला धर्षण मिस–मृग ने बिम्ब मुँह भर लिए प्रभु।[224]

यहाँ 'प्रकृति' के लिए 'नटी' और 'पृष्ठ' के लिए 'शिला' का रूपक बाँधा गया है।

उपमा–

क. मुनियों–सी सस्वर उचारते वेद–ऋचाऐं शुक–सारी।[225]

ख. खीले कमल–सी निकलती जल से अमिट रूप रखकर।[226]

ग. नील जलज–मुख हुआ आज था सना पंक में पांडु–कमल।[227]

घ. भरत–भ्रमर को जकड़ा प्रभु ने पंखड़ियों बाहों से।[228]

5.1.ग.4. रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'–

आलोच्य कृति में अनुप्रास, उपमा,रूपक आदि का प्रयोग कर कविता में संगितात्मकता, लय, प्रवाह उत्पन्न किया है। इसके प्रयोग से भाषा का सौन्दर्य देखते ही बनता है।

अनुप्रास अलंकार–

कुंज–कुज में नया चित्र हैं और नई हैं झाँकि।

जी भरता ही नहीं देखकर, ऐसी शोभा बाँकी।।[229]

'झाँकि–बाँकी' में अन्त्यानुप्रास का सौंदर्य है। इसी प्रकार कवि ने पूरे काव्य में अन्त्यानुप्रास का सौंदयै विखेरा है।

छेकानुप्रास–

क. एक दिवस तटिनी तट बैठी सीता फटिक शिला पर।[230]

ख. मनोरंजन मीनों से करती तंडुल उन्हें खिलाकर।[231]

ग. उधर देखना शश–शावक भी कैसे खेल रहे है।[232]

घ. प्रेम–प्रहारों को वे दोनों कैसे झेल रहे है।[233]

ङ हरा चीर धरती का मानव उड़ा जा रहा नभ में।[234]

छेकानुप्रास का प्रयोग पूरा काव्य में किया गया है। 'तटनी–तट', 'मनोरंजन–मीन', 'शश–शावक', 'प्रेम–प्रहार', 'हरा–चीर' का प्रयोग उपरी पंक्तियों में उल्लेखित है। इसी तरह से अन्य उदाहरण है, 'चातक चुक'[235], 'चारू–चित्रमय'[236] 'कोल–किरात'[237], 'मूल–फल'[238], 'करती–केली'[239], 'मनोरम–मीने'[240], 'वायु–विकम्पित'[241], 'कलित–कुमुदिनी'[242], 'पुत–प्रयाग'[243], 'गौरव–गरिमा'[244] आदि में वर्णों की आवृति बार–बार की गई है। अतः यह छेकानुप्रास है। इस प्रकार के प्रयोग ने काव्य को आकर्षक बना दिया है। छेकानुप्रास के प्रयोग से काव्य में संगीतात्मकता, लयबद्धता और प्रवाहमयता आ गई है।

उपमा–

शिशुओं–सा ही सुख पाउँगा मिला प्रकृति का पालना।[245]

कवि ने उपमा अलंकार के प्रयोग से भावों की अत्यंत सुन्दर अभिव्यंजना की है। जिस प्रकार शिशु अपने माता–पिता के पालने में नैसर्गिक आनन्द की अनुभूति करते है उसी प्रकार राम चित्रकूट की प्रकृति के पालने में आनन्द पाने की आकांक्षी है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

पूत सती–सा गन्ध रूप–रंग सब मोहक है इसके।[246]

उपर्युक्त उद्धरण में चंपा फूल की पवित्रता की तुलना सती नारी की पवित्रता से की गई है। इसमें उपमा अलंकार का चमत्कार है।

रूपक–

क. सत्प्रवृत्तियों की बेलों को स्नेह सलिल से सींचे।[247]

ख. उर–सर में नित नए स्नेह के कंज खिला करते है।[248]

इसमें कवि ने बिना निषेध किए हुए उपमेय 'सद्प्रवृत्तियों' को 'बेल' उपमान रूप कहा है और 'स्नेह' उपमेय को 'सलिल' उपमान रूप कहा गया है। इसी प्रकार दूसरे उदहारण में भी 'उर' उपमेय के लिए 'सर' उपमान और 'स्नेह' उपमेय को 'कंज' उपमान रूप कहा गया है। इस उद्धरण में सांग रूपक अलंकार का सौन्दर्य है। रूपक अलंकार के प्रयोग द्वारा स्थान–स्थान पर चमत्कार उत्पन्न किए है। रूपक के अन्य उदहारण है–

'प्रकृति नटी ने किसके स्वागत में यह साज सजाया।[249]

'प्रकृति' उपमेय को नटी उपमान रूप कहा गया है। इसी तरह कवि ने पुराने उपमान के स्थान पर नये उपमान का भी प्रयोग किया है। यथा–

स्नेह–समीरण में हिल–डुलकर जीवन–सुमन खिलेगा।[250]

'स्नेह' के लिए 'समीरण' उपमान तथा 'जीवन–सुमन' में रूपक का सौन्दर्य है।

उत्प्रेक्षा–

लाली फैली ललना–मुख पर ब्रीड़ा भाव दिखाती।
राम विहँस कर बोले, मानों घन पियूष बरसाता।[251]

कवि ने अपनी कल्पना शक्ति से सर्वत्र उत्प्रेक्षा का सौन्दर्य भर दिया है। सीता जी स्फटिक शिला पर बैठकर साठी का चावल खिला रही हैं। इसमें वह तल्लीन थी। तभी चुपके से राम उनके पीछे से आकर खड़ा हो गए। जब सीता ने पीछे देखा तो राम मुसका रहे थे। इससे सीता के मुख पर ब्रीड़ा का भाव आ गया। उनके मुँह पर लाली फैल गयी। इस पर कवि कल्पना करता है मानो घन पियुष बरसाता है। इसी प्रकार से कवि ने पूरे काव्य अलंकारों का प्रयोग कर काव्य के सौन्दर्य को बढ़ा दिया है।

5.1.ग.5. लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'–

अलंकार के प्रयोग की दृष्टि से यह काव्य अति सीमित महत्त्व का प्रतीत होता है। अलंकार प्रयोग के प्रति अनावश्यक मोह से कवि बचा हुआ है। परम्परा से प्राप्त कुछ साधर्म्यमूलक अलंकारों का प्रयोग भी इसमें मिलते हैं। कवि कि दृष्टि मूलतः परम्परा का अनुसरण करती है। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तिय ाँद्रष्टव्य है–

उपमा–

(क) कर्म की कठिन ताप–सी जटिल कैकेयी कंचन चित्रा [252]

(ख) कमल नाल की माला पहने/ज्योति शिखर–सी, धूम्रहीन तुम[253]

(ग) दो खंजन से नयन खुले छिन पलकों में उड़ते–उड़ते[254]

(घ) वन वैभव–सी भरत जटा थी/कीर्ति लता–सी शुभ संकुल[255]

(ङ) भरत प्रशांत महासागर हैं/अन्तरमन में रत्न छिपाये[256]

(च) सारा अवध प्रेत नगरी–सा बैठ/मंथरा के कूबड़ पर स्वर्गलोक को ललकारेगा[257]

रूपक

(क) इतनी गहन मोह–निशा में ज्योति–पर्व उतरेगा कैसे[258]

(ख) अर्थ अर्गला खोल–खोलकर/जिसमें स्वर्णिम भाव दिया हो[259]

(ग) मर्यादाएँ मोह–निशा में टूट रही थी[260]

(घ) मुझे याद कर लेना उसी क्षण/जब लहराए कीर्ति ध्वजा तब[261]

उत्प्रेक्षा

(क) थी शिथिल देह, जटिल भंगिमा, आकुल अन्तस पीड़ा से
लगता जैसे कपिला कोई रँभा न पाती व्रीड़ा से[262]

(ख) था धनुष पड़ा सम्मुख उनके ज्यों प्रश्नचिह्न हो मूर्तिमान
तूणीर पड़ा था शांत मौन, ज्यों रोष कोश हो लिए ग्लानि।[263]

(ग) वे चरण राम–सीता के थे, थी जटा भरत की राग भरी।
लगता मिलती हो श्यामा से अनुराग राग की दोपहरी।[264]

(घ) देखो वैदेही के आँसू, ज्यों खड़ी कमलनी भरे नीर,
नयनों का यह गंगाजल/कर रहा भाव का नीर–क्षीर।[265]

उदाहरण–

ढीली प्रत्यंचा लटक रही, जैसे आकांक्षा का उतार
जैसे प्लावन के पूर्व सदा, उर्मिल हो जाता तप्त ज्वार[260]

उल्लेख–

किन्तु भला मैं कैसे भूलूँ/उस प्राणी को
जिसनें संज्ञा के अर्थों को/मौन सकर्मक अर्थ बताया,
कैसे भूलूँ ऐसे सहचर/ऐसे गुरू प्रतिभा को[267]

संदेह

(क) वैदही को कैसे मानूँ वह विदेह है/या अमूर्त्त है,
या है मूलाधार शक्ति, वह स्तनपान कराया मैंने

आँचल में ढक पोसा–पाला/ परम देह धारी सुन्दर वह
कैसे अमूर्त की संज्ञा दे दूँ मैं/कैसे मिथ्या भ्रम को पालूँ[268]

(ख) सम्मुख खड़ी जानकी थी या स्वयम् ज्ञान की पुत्री सीता
वल्कल वसना, बनी योगिनी, सिद्ध कामना–पूरित प्रीता[269]

अप्रस्तुत प्रशंसा–

(क) देखा सुधीरता है अधीर, देखा स्थिरता कम्पमान।
देखा अस्थिरता लिए पीर, करती जाती थी दग्ध प्राण
देखा मर्यादा करूण हुई, देखा ध्रूव को द्रवित मान
देखा अनुमान मान गलते, देखा ढलते विज्ञान–ज्ञान[270]

(ख) हे दीप कलंकित आँचल के, तुम दोनों हो पवमान सदा।
मेरे अचिंत्य असफलता के/दो ज्वलंत पक्ष तुम बनो सदा[271]

5.2. 'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों के भाव पक्ष का विवेचन–

प्रबंधकाव्यों में भाव पक्ष का विवेचन इसलिए आवश्यक होता है, जिससे रस की अवतारणा हो सके। रस काव्य का प्राण तत्त्व होता है। प्रसंग की मार्मिकता स्वयं ही वाणी द्वारा फूट पड़ती है। इन प्रसंगों में विभिन्न रसों का सम्बन्ध रहता है। शृंगार के स्थायी भाव रति अथवा प्रेम का क्षेत्र व्यापक है। मानव ही नहीं, अपितु प्राणी मात्र इस सौन्दर्य का अनुभव करते हैं। वैज्ञानिक एवं सहृदय कवि वनस्पतियों में भी इसे घटित देखते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार प्रबंध काव्यों में पात्र के चित्रण में जिस प्रकार उसके शील स्वरूप को, उसके अन्तस् की प्रवृत्तियों को भी प्रत्यक्ष कराना पड़ता है, उसी प्रकार उसके अंग, सौष्ठव आदि को भी प्रत्यक्ष कराना पड़ता है। यहाँ तक ही नहीं, प्रकृति के नाना रूपों के साथ मनुष्य के हृदय के सामंजस्य को प्रदर्शित करने, प्रतिष्ठित करने के लिए उसे वन, पर्वत निर्झर आदि अनेक वस्तुओं को ऐसी स्पष्टता के साथ अंकित करना पड़ता है कि श्रोता और पाठक का अन्तःकरण उनका पूरा बिम्ब ग्रहण कर सके। दृश्य चित्रण में केवल अर्थ ग्रहण कराना नहीं होता, बिम्ब ग्रहण भी कराना होता है।[272] 'चित्रकूट' संज्ञक कृतियों का सौन्दर्य अत्यन्त मनोरम बन पड़ा है। यद्यपि रामकथा को सानुबंध रीति से वर्णित करने वाले महाकाव्यों से ये किंचित् भिन्न हैं।

आलोच्य कृतियों में भाव पक्ष के अन्तर्गत प्रकृति चित्रण, रस आदि पर संक्षेप में विवेचन किया गया है।

5.2.क. प्रकृति चित्रण–

प्रकृति के सौन्दर्य पक्ष का सम्बन्ध कविता से सीधे है। प्रकृति को सहज मनोदशा तथा विचार गर्भित दृष्टि से मनुष्य देखता है। मानव फूल को देखकर, पक्षियों का कलरव सुनकर प्रसन्नता प्रकट करता

है। सामान्य दशा में प्रकृति की यह मोहकता एक आलम्बन है। जब मानव हृदय में हर्ष–शोक के भाव क्रांति मचाते रहते हैं तो प्रकृति उन्हें संपादित करती है। अतः इस अवस्था में वह उद्दीपन कहलाती है। कभी–कभी मानव के विचार प्रकृति के किसी व्यापार को देखकर क्रियाशील होते हैं। कभी विचारों से प्राकृतिक व्यापारों का मेल बिठाया जाता है। कभी–कभी मनुष्य प्रकृति के सम्बन्ध में भी सोचता है किन्तु जब वह प्रकृति का कोई दृश्य–व्यापार देखकर मानवीय क्रियाओं या वस्तुओं को उसके समक्ष रखता है तब प्रकृति का आलंकारिक वर्णन होता है। प्रकृति के आलंकारिक वर्णन को यद्यपि काव्य में श्रेष्ठ स्थान नहीं दिया गया है, तथापि प्रकृति का वह रूप भी काव्य सौष्ठव के लिए ग्राह्य बन जाता है। काव्य में कल्पना का भी स्थान है। बिना कल्पना के काव्य में न तो ऊँचाई आ सकती है और न भाव–संवेदना ही। विषय से साक्षात्कार कराना कला का उद्देश्य होता है और बाह्य दृश्यों से उसका अनुपम मेल कराकर उन दृश्यों को आनन्दात्मक बनाना भी उसी के लक्ष्य में शामिल है। यहीं पर काव्य–भाव और कवि–कर्म एक साथ आ जाते हैं। शब्द और अर्थ की सम्पृक्ति काव्यभाषा में घटित होती है। कविता को पूर्णतः अर्थ समृद्ध होने के लिए शब्द का आश्रय लेना पड़ता है।

5.2.क.1. विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'–

'चित्रकूट' संज्ञक काव्य सभी खण्ड काव्य और इन काव्यों की घटनास्थली चित्रकूट है। इसलिए चित्रकूट पर आधारित सभी काव्यों में कवि ने प्रकृति का वर्णन किया है। 'विभु' जी ने इस काव्य में प्रकृति का कहीं–कहीं मानवीकरण ही कर डाला है। इनके इस काव्य में चित्रकूट की उस झाँकि का दर्शन होता है जो 1924 में वहाँ विद्यमान थी। यद्यपि आज भी चित्रकूट के हरे–भरे दृश्य , नदी वातातवरण हमारा मन आकर्षित करता ही है। विभु चित्रकूट में दूब पर जब मृग के छौने दोड़ते तो उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो मखमल पर दौड़ रहे हो। यथा–

जहाँ दूब–मखमल पर मृग के छौने दौड़ लगाते है।
ललितलतातरूतरदलों में कलरव स्वर में गाते हैं
किल फेनिल निर्झर–गिरि गल में मणिमाला पहनाता है।
मृदुल फूलवासित मलयानिल सब के दिल बहलाता।[273]

वृक्ष का सौन्दर्य–

जो तरू पहले खड़े हुए थे नंगे दीन भिखारी से
कंचन–पत्राभूषण पहने लगते हैं छविधारी से
मन को कैसा लुभा रही है किसलय की यह अरूणाई
क्या दिनकर से डर कर उषा पत्तों में छिपने आई।[274]

इस तरह के प्रकृति–चित्रण से पूरा काव्य भरा है। जहाँ प्रकृति नाना रूपों में प्रकट हुई है।

5.2.क.2. रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट'–

'शास्त्री' जी ने इस काव्य में प्रकृति चित्रण किया है परन्तु उतना ज्यादा नहीं जितना 'विभु' जी के काव्य में प्राप्त होता है। यहाँ चित्रकूट में वर्णित रामकथा के साथ कवि ने प्रकृति का, वहाँ के परिवेश का, वहाँ के निवासी आदि का वर्णन किया है। अम्बर का एक चित्र यहाँ प्रस्तुत है–

नील–नभ भी ऐसा जिसका/है न कही कोई आधार!

जिसकी उलटी छाती पर भी/बहती है गंगा की धार![275]

जब रामभद्र, लक्ष्मण और सीता समेत वापस जनकपुरी को चले गये थे। उस दृश्य के बारे में सोचकर कवि को ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके विरह में यहाँ सभी रो रहे हैं। वहाँ के दृश्य का एक चित्रण–

क. पीले–पीले दीख रहे है/पत्रों के ये पुज सभी

क्या जाने ये उजड़ चुके है/ कब के मंजु–निकुंज सभी ?[276]

ख. गिलहरियों के संग रोते है/अब ये शशक सदैव यहाँ

कानों में भन–भन करते है/अब ये मशक सदैव यहाँ।[277]

कवि जब चित्रकूट का दर्शन करता है तो उसे वहाँ के प्रत्येक दृश्य में विरह भाव ही दिखाई देता है। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि राम के जनकपुर वापस चले जाने से वहाँ के प्रकृति दुःखी है और वह रो–रो अपनी व्यथा कह रही है। वहाँ के पशु–पक्षी आदि सभी राम के विछोह में व्याकुल हो रो रहे हैं।

5.2.क.3. मोहनलाल गुप्त 'चातक' कृत चित्रकूट'–

चातक जी ने सभी की ही भाँति चित्रकूट में घटी घटना के वर्णन क्रम, वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य, वातावरण की पवित्रता आदि का चित्रण किया है। इनके इस काव्य में प्रकृति मानों रूप धर सारी क्रियाएँ रही है। यहाँ प्रकृति का मानवीकरण रूप का उल्लेख किया गया है। निम्न पंक्तियों में प्रकृति के सौन्दर्य का चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है। यथा–

नदी का वर्णन–

दे–देकर दूकूल को थपकी
करती कल–कल लोरी गान,
अंचल में समेट तिनकों को
करा रही श्रवते–पय पान।[278]

वहाँ के पुनित प्रभाव से पशु–पक्षी के स्वभाव में भी परिवर्तन हो गया है। निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

मुनियों–सी सस्वर उचारते
वेद–ऋचाऐं शुक–सारी
निज भाषा में पुनः सुनाते
सभी विहग बारी–बारी।[279]

चित्रकूट की शोभा का वर्णन–

कहीं शिखर से निर्झर गिरते
कल–कल कहीं प्रवाहित श्रोत,
पर वृक्षों की सघन छाँह में
अति शीतल सविता–उद्योत।[280]

इसमें प्रकृति का बिम्बात्मक रूप भी चित्रित है–

सभी विटप ही बने तपस्वी
चिर उत्तिष्ठ एक पद से,
करते प्रमुदित मातृभूमि का
पूजन पात्र पुष्प दल से।[281]

वृक्षों को देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानों मुनिजन एक पैर पर खड़ा होकर तपस्या करते हैं।

5.2.क.4. रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'–

इस काव्य की कथा 'रामचरितमानस' में वर्णित चित्रकूट प्रसंग के जैसी ही है। यहाँ भी कथा का सृजन चित्रकूट की भूमि पर ही हुआ है यानि घटनास्थली चित्रकूट है जो प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है। ऐसे मे कवि वहाँ के प्रकृति का वर्णन कैसे नहीं करता। इस काव्य में चित्रकूट की शोभा में कवि ने यहाँ तक लक्ष्मण और सीता के मुँह से कहलावाया है कि वे कैकेयी को इस बात के लिए धन्यवाद देना चाहते है जिसके कारण उन्हें प्रकृति को इतने निकट देखने का अवसर मिला। यथा–

देखो, यहाँ लताएँ तरू से कैसी लिपट रही है
शाखाओं के भूज बंधन में सिमट रही है।[282]

नदी का सौन्दर्य–

झर–झर करता निर्झर देखो अर्घ्य चढ़ाने आता ।
मन्दाकिनी माँ की गोदी के अंचल में छिप जाता। [283]

इसी तरह से यह पूरा काव्य प्रकृति के नाना रूपों के वर्णन से भरा हुआ है।

5.2.क.5. लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'–

आलोच्य कृति की घटना स्थली चित्रकूट है। चित्रकूट में प्राकृतिक शोभा की कहीं भी कमी नहीं है। कवि चाहता तो उसके विस्तृत वर्णन के लिए अवसर निकाल सकता था किन्तु यह काव्य के सौन्दर्य को बोझिल बना देता। इसलिए कवि ने इसमें प्रकृति का संक्षिप्त संश्लिष्ट और अवसरानुकूल वर्णन किया है। जैसे–

संध्या का चित्र–

धीरे–धीरे संध्या ढरकी, हो गया क्षितिज अरूणाभ रिक्त
हो गयी दिशाएँ तिमिर वरण हो गयी निशा तमपूर्ण रिक्त।[284]

घनीभूत रात्रि का मानव अन्तर्मन से तादात्म्य दिखाते हुए कवि कहता है–

रात कहीं काजल कगार पर ढहती जाती थी क्षण अविरल।
घनीभूत होकर गहराया अन्तर्मन में उदयाचल।[285]

रात्रि की नीरवता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है–

तृण–तृण कम्पित स्वेद युक्त था,कण–कण चित्रित चित्रकूट था
लता–लता पर लिखा प्रश्न था, पुष्प–पुष्प उसका उत्तर था।

(चित्रकूट चरित,पृ.सं.111)

नयी आशा लिए प्रातःकालीन सूर्योदय का वर्णन इस प्रकार हुआ है–

तरू–तरू से शाखा–शाखा से जागे स्वर, राम राम जै राम राम
कपि रूप वहाँ तरू पर बैठा था, भावलीन ले ध्यान धाम
पक्षी बोले चहके कीर और मैना बोली जै राम राम
ऐसा लगता जड़ चेतन में जागा स्वरूप श्रीराम राम

(चित्रकूट चरित,पृ.सं.136)

उपरि वर्णित पद्यांश में प्रकृति चित्रों के प्रति कवि का राग बोध बड़ी गहराई के साथ उभरा है। यहाँ प्रकृति का मात्र वर्णन ही नहीं किया है बल्कि उसके व्यापारों से उत्पन्न सूक्ष्म प्रभावों और अदृश्य बोधों को भी प्रकट किया गया है। इनमें लोकानुभूति और संवेदनाओं के लिए अनुकूल बिम्बों का सृजन किया गया है और लाक्षणिक प्रयोग भी अत्यंत सफल हुए हैं।

रूपचित्र–

प्रबंधात्मक कृतियों में मानव और मानवेत्तर सौन्दर्य के चित्रण के लिए पर्याप्त अवसर होता है। मानव सौन्दर्य का अंकन कवि ने संक्षेप में किया है। किन्तु व्यक्ति के आन्तरिक सौन्दर्य को प्रत्यक्ष करने में कवि को सफलता मिली है। जैसे, माण्डवी को मूर्तिमति तपस्या कहना अपने आप में अनुपम आंतरिक सौन्दर्य को प्रकाशित करता है–

मूर्तिमती तपस्या–सी तुम
श्वेत वस्त्र धारण कर रहती

छाया–सी बन मेरी सम्बल
खुले केश यह
मौन सरोवर नवयौवन का
चन्दन तिलकित भाल अलौकिक
सजल नयन, मीनाक्षी चंचल
कमल नाल की माला पहनें
ज्योति शिखर–सी, धूम्रहीन तुम।

(चित्रकूट चरित,पृ.सं.63)

सीता का सौन्दर्य–

सन्मुख खड़ी जानकी थी या स्वयं ज्ञान की पुत्री सीता
वल्कल वासना बनी योगिनी, सिद्ध–कामना पूरित प्रीता
दमक रहा था आनन श्री से, तपस काम था मृदुल विलय था
ललित ललाम लुनाई में वह श्याम मधुरा भाव निलय था।

(चित्रकूट चरित,पृ.सं.86)

आदिवासी युवक का चित्र–

भावुक युवजन/यष्टि देह से हृष्ट पुष्ट थे
उन्नत ललाट, वज्रोपम था वक्ष मनोरम
ललित मर्मभेदी आँखों में/डोल रही थी ज्योति शुभ्रतम।

(चित्रकूट चरित,पृ.सं.15)

ऋषि चित्र–

गैरिक वसना वृद्ध ऋषि की काया उमरी तमस चीर कर
श्वेत केश थे विघ्न रूप था, उनमें भृकुटी तनी थी ताप वहन कर।
सहसा आगे बढ़े ऋशिवर रूद्राक्ष संभाले अपना सुन्दर
लगता जैसे विराट वट खड़ा हो गया सम्बल बनकर।[286]

कल्पना तत्त्व–

काव्य में सामान्यतः चार प्रकार के चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। चाक्षुष चित्र, ध्वनि चित्र, गंध चित्र और स्पर्श चित्र। इस काव्य में ऐसे उदाहरण उत्तम रूप में बने मिलते हैं।

चक्षुष चित्र–

तभी मंच उदित हुए दो/भावुक युवजन,

यष्टि देह हृष्ट पुष्ट थे/उन्नत ललाट, वज्रोपम था वक्ष मनोरम

ललित मर्मभेदी आँखों में डोल रही थी ज्योति शुभ्रतम।

(चित्रकूट चरित,पृ.सं.15)

ध्वनि चित्र–

कैसा कोलाहल होता यह/कैसा जनरव?

कैसी भीड़ बढ़ी आ रही/यहाँ शिविर तक

लगता वनवासी है/सारी रात यहाँ घाटी में

गोष्ठ जगाए चिन्तारत थे/लगता हुई विसर्जित सभा उन्हीं की।

(चित्रकूट चरित,पृ.सं.69)

स्पर्श–चित्र–

रोक न पाई भाव सुनयना कपिला–सी दौड़ी बिलखाकर

आँचल से पोछा सब श्रम कण चूमा आनन साँसें भर भर

(चित्रकूट चरित,पृ.सं.86)

इस काव्य में कल्पना के सहारे वर्तमान में भविष्य की बातें की गयी हैं। भरत चिन्ता करते हैं कि यदि वे अवध के राजा हुए तो वैसी स्थिति में उसकी अवस्था कैसी होगी। यह वर्णन अवध के भावी स्वरूप की कल्पना है जो बड़ा ही भयानक है–

सारा अवध प्रेत नगरी–सा

बैठ मंथरा की कूबड़ पर

स्वर्गलोक को ललकारेगा

सारी मौन अयोध्या में बस

उल्कापात गिरेंगे निश दिन

वृक्षों पर अंगार उगेंगे। [287]

5.2.ख. 'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों में रस का विवेचन–

प्रस्तुत अध्याय में आलोच्य कृतियों की रस का अवलोकन यथेष्ट है। इस अवतरण में हम रसों के मुख्य विभेदों के अध्ययन को ही अभिष्ट मानते हुए प्रमुख रूप से नौ रसों पर विचार करेंगे। भक्तिपरक

दृष्टिकोण से देखने पर विवेच्य कृतियों में भक्तिरस की ही प्रधानता लक्षित होती है। रामानन्द त्रिवेदी रचित 'चित्रकूट' का अंगीरस करूण है, जबकि शेष कृतियों का अंगी रस शांत है। यद्यपि प्रसंगों के आवर्त्तन से उनमें श्रृंगार, हास्य अद्‌भुत तथा वीर रस के उदाहरण भी हमें मिल जाते हैं।

5.2.ख.1. विद्याभूषण 'विभु' कृत 'चित्रकूट चित्रण'–

'विभु' जी की कृति 'चित्रकूट चित्रण' की पृष्ठभूमि भक्ति पर आधारित न होकर वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन पर आधारित है। इस कृति में रचनाकार की दृष्टि वहाँ घटी घटना पर न जाकर प्रकृति सुषमा पर टिक गई है इसलिए इस काव्य में रसों का उतना सुन्दर विवेचन नहीं मिलता है जितना अन्य चित्रकूट संज्ञक काव्यों के कवियों की रचना में प्राप्त होता है। इसमें प्रधान रूप शांत रस, भक्ति रस ही प्राप्त होता है।

भक्ति रस–

'जब तोते को राम नाम का पाठ पढ़ाया जाता है

x x x x x x

चित्रकूट के घाट संत मिल ईश्वर के गुण गाते है।

(चित्रकूट चित्रण,पृ.सं.3)

राम जब त्रेता युग में चित्रकूट पर निवास किए थे, उनके पुण्य प्रभाव से वहाँ वनस्थली भक्तिमय हो गई। आज भी वहाँ निवास करने वाले पक्षी राम के नाम का उच्चारण करते है।

अद्‌भूत रस–

कवि को वहाँ के लोगों को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आज के चित्रकूट और तब के चित्रकूट में बहुत अन्तर आ गया। इसलिए तो कहते है कि कही आज सति सीता आ जाए तो वहॉ के लोगों को देख शर्म से दब जायेंगी। यथा–

'सती सीता तथा अनुसूया यहाँ कही जो फिर आवें

ललनाओं की लीला लख वे तुरन्त धर जावें।

(चित्रकुट चित्रण, पृ.सं.20)

शांत रस–

जहाँ तपोवन बने हुए थे ऋषि मुनियों के सुखदायी।

जहाँ मिलन श्रीराम–भरत का प्रेम–रूप भाई–भाई।।

जिसके दर्शन को जाते है दौड़–दौड़ आज भी नर–नारी।

आकर्षित हमको करती है उसी चित्र की छवि न्यारी।।[290]

ऋषि मुनियों के साथ श्रीराम–भरत के मिलन से वह धरती आज भी पुनित बनी हुई है। जहाँ तपोवन हो, ऋषीगण हो, वहाँ का वातावरण शांत, निर्मल, स्वच्छ और पवित्र होता है और जहाँ काव्य में ऐसा वर्णन होता है वहाँ शान्त रस होता है।

वात्सल्य रस–

कवि ने वात्सल्य रस की सर्जना बहुत सुन्दर ढंग से किया है। किस तरह वहाँ के पशु अपने बच्चों से लाड करती है उसी का वर्णन किया है'–

'नीलगाय अपने बच्चों को छिप–छिप दुध पिलाती

बीच बीच में नई कोपले लेकर उसे खिलाती है'[291]

5.2.ख. रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट'–

कविवर रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' जी की 'चित्रकूट' में कथानक के अनुसार विभिनन प्रसंगों और घटनाओं के वर्णार्थ सृजित काव्य खण्डों में विभिन्न रसों का परिपाक अनायास ही हुआ है। इस काव्य का प्रधान रस करूण है और इसके साथ शांत रस, करूण रस, वात्सल्य रस, विभत्स रस आदि का निरूपण हुआ है।

करूण रस–

क. रोये अत्रि नयन में उनके

निरद मानों घिर आए[292]

ख. अहह उड़ा निशीथ में करस्थकीर है!

समाप्त खेल हो गया, अदृष्ट–दोष है[293]।

ग. धँसता जाता हूँ दल–दल में

फँसता जाता हूँ पल–पल में

x x x

यदी संग मुझे वह ले चलता

भवसागर तो तर जाता मै।[294]

दशरथ की मृत्यु, राम वनागमन के कारण अयोध्या और चित्रकूट का वातावरण दुख से भर गया है।

शांत रस–

ऋषि मुनियों की तपो भूमि है यहाँ नहीं है वैर विरोध,

जंगल के भी जीवन यहाँ पर

रखते हैं कुछ मन में बोध[295]

चित्रकूट ऋषि–मुनियों की तपोभूमि होने के कारण कवि का मानना है कि चारों ओर का वातावरण शांत है, पवित्र है, जीव जन्तु में भी इस वातावरण की पावनता स्वतः ही भर गई है। वे अपने वैर–विरोध के भाव को भूल चुके है। इस काव्य में शान्त रस यहॉ परिपाक हुआ है।

वात्सल्य रस–

क. बचपन में तुमने पाला था / मुझको अंक बिठा कर अम्ब

आज दयामयि,पुत्र तुम्हारा / राम तुम्हें देता अवलम्ब।[296]

ख. मुझ–सा ही तुतला–तुतला कर / मुझे बोलना सिखलाया

तुमने ही तो डगमग–डगमग / मुझे डोलना सिखाया।[297]

एक माँ का अपने शिशु के साथ सहज प्रेम को बहुत ही सुन्दर रूप से चित्रित किया गया है।

विभत्स रस–

खा ले माँस हमारा भी रे

हम भी जाते हैं सुरधाम।[298]

किसी भी व्यक्ति के द्वारा मानव माँ स खाने की बात से ही व्यक्ति की मन में घृणा का भाव जग जाता है और यहाँ श्रवण के माता–पिता श्रवण के हत्या के पश्चात हत्यारा राजा दशरथ से ऐसी बाते करते है।

रौद्र रस–

दाँत पीस वे अंधी–अंधे

होते थे नरपति पर क्रुध।[299]

श्रवण के माता–पिता अपने पुत्र के हत्या पर हत्यारा के प्रति क्रोधित होकर अपने दाँत इत्यादि को पीसते है। इस पंक्ति में कवि ने रौद्र रस का बहुत सुन्दर चित्रण किया है।

5.2.ख.3. मोहनलाल गुप्त 'चातक' चित्रकूट–

चातक जी की इस कृति की पृष्ठभूमि भक्ति पर आधारित है। कवि ने सर्वज्ञात तथ्यों के आधार पर ही इस काव्य का सृजन किया है। इसमें कवि ने अपनी ओर से बहुत ज्यादा कथानक में परिवर्तन नहीं

किया है। इस काव्य की कथा भी 'रामचरितमानस' की कथा से मिलती है कुछ प्रसंगों को छोड़ कर शेष कथा स्रोत ग्रंथ के अनुरूप ही है। इस काव्य का प्रधान रस शान्त है, तथापि कथानक के विस्तार के विभिन्न घटनाक्रमों के वर्णनानुसार कुछ रस पुष्ट हुए है जैसे श्रृंगार, वीर, वीभत्स, करूण, भक्ति और वात्सल्य। निम्न अनुच्छेदों में इन्हीं रसों का मूल्यांकन काव्यगत रस सामग्री के आधार पर किया गया है।

श्रृंगार रस–

चित्रकूट में राम और सीता नदी किनारे बैठ कर नदी की क्रियाओं देख रहे थे और उसी के माध्यम से कवि ने राम और सीता के मन में उत्पन रतिभाव का वर्णन किया है।

इतने में दीखी वह बहती
दो काल धवन शिलाओं पर
ऐसा लगता जहाँ खिसकता
उभय नितंबों से अंबर।[300]

वीर रस–

वे श्रृगाल के स्वप्न–भंग से
महा व्याघ्र से तमक उठे
लोहित ज्वालामय विद्युत से
आज अचानक दमक उठे।[301]

भरत के आगमन के समाचार से ही मन में क्रोध और उनसे युद्ध करने का भाव जागृत होता है।

करूण रस–

क. यहाँ रूदन का तुमुल नाद सुन
सगज हो गई सेनाऐ
पुरजन करने लगे परस्पर
भाँति –भाँति की शंकाएँ।[302]

ख. फुट–फुट कर लग बिलखने
सीता सह व्याकुल लक्ष्मण
पशु–पक्षी और लताएं–वृक्ष
जड़ सभी लगे रोने तत्क्षण।[303]

भक्ति रस–

हुआ उसी के द्वारा निर्मित

भ्रातृ–भक्ति का माप नया।[304]

भरत के भ्रातृ प्रेम के रूप भक्ति का नया रूप प्रकट हुआ है।

5.2.ख.4. रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट'–

आलोच्य कृति में दुबे जी ने कथानक के अनुसार विभिन्न प्रसंगों और घटनाओं के वर्णनार्थ रसों का परिपाक हुआ है। इस कृति में वीर, करूण, रौद्र, शान्त, वात्सल्य, भक्ति आदि रसों का संगम दृष्टिगत होता है। कहीं–कहीं श्रृंगार रस भी परिलक्षित होते है। निम्न अनुच्छेदों में रसों का उदाहरण उद्धृत किया जा रहा है।

श्रृंगार रस–

आकर चुपके खड़े राम थे, पड न जाए परछाहीं।

सीता क्रीड़ा में निमग्न थीं, पीछे देख न पाई।।[305]

एक दिन सीता नदी के किनारे फटिक शिला पर बैठ कर मनोरंजन कर रही थी, मछलियों को दाना खिला रही थी उसके दाने को देख कर मछलियॉं उछल–कूद रही थी जिसे देख सीता को अपना बचपन याद आ जाता है और उसे पता ही नहीं चलता कि कब उसके पीछे राम आ गयें है। सीता की दृष्टि राम पर जाती है तो वह लाज से लाल हो जाती है। यहाँ संयोग श्रृंगार है।

वीर रस–

खड़े हो गए, बाँधा परिकर अपना धनुष सम्भाला

तीक्ष्ण दृष्टि डाली बाणों पर तरकश देख–भाला।[306]

भरत के चित्रकूट आगमन की सूचना पाकर लक्ष्मण भरत से युद्ध करने हेतु पूरी तेयारी कर लेते हैं।

रौद्र रस–

लक्ष्मण का आरकत वदन लख वे थोड़ा चकराए।[307]

भरत का ससैन्य पुरवासियों सहित आने की बात सुनकर क्रोध से लक्ष्मण लाल हो जाते है। वे रोष, आवेश से पूरी तरह भर जाते हैं।

करूण रस–

गई राम की दृष्टि, खड़ी थीं दूर ठिठक माताएँ।

सित वसना दीना थीं माना हिम–आक्रान्त लताएँ।

धाए राम गिरे चरणों में भभर पडी माताएँ।[308]

जब चित्रकूट में राम अपनी माताओं को श्वेत वस्त्र में देखते है तो पिता की मृत्यु के व्यथा से व्यथित हो जाते है। उनके हृदय में और राम धाए से माताओं के चरणों में गिर जाते है।

हास्य रस–

पूँछ पकड़ मर्कटी कीशकी खींच रही थी नीच।

x x x x x

हँस बोली श्रृति पुरूष के पूँछ नहीं है होती।

होती तो क्या, उसे पकड़कर नारी हर्षित होता।[309]

कहीं–कहीं कवि ने कथा में सहजता, रोचकता लाने के लिए हास्य रस का भी वर्णन किया है जिससे कथा बोझिल नहीं हुई है। जब चारों बहने एक साथ चित्रकूट में मिलती है तो आपस में अपने बचपन को याद करती हुई हास्य–विनोद करती हैं।

वात्सल्य रस–

कैकेयी ने कहा कि बेटा! तुम पुरूषोत्तम ऐसे

जयोति पुंज को भला जगत् में तिमिर छुएगा कैसे?[310]

इस काव्य में जब राम अपनी माताओं से मिलते हैं तो उनके मन में माताओं के प्रति श्रद्धा का भाव उमड़ता है और माताओं के मन में राम के प्रति वातसल्य भाव भर जाता है।

इस प्रकार हम देखते है कि आलोच्य कृति में कवि ने विभिन्न रसों के द्वारा काव्य के सौन्दर्य में वृद्धि हुआ है।

5.2.क.5. लक्ष्मीकांत वर्मा कृत 'चित्रकूट चरित'–

वर्मा जी कृत 'चित्रकूट चरित' में करूण रस, रौद्र रस, वीभत्स रस, अद्भूत रस, भक्ति रस तथा वात्सल्य रस इत्यादि का वर्णन स्पष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है। निम्न अवतरणों में वर्मा जी कृत 'चित्रकूट चरित' से विभिन्न रसों का आस्वादन कराते हुए उद्धरणों का संक्षेप में प्रस्तुतीकरण करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

करूण रस–

कैकेयी के कृत्यों के कारण राम का वन जाना, पिता के मृत्यु आदि भरत के आत्मग्लानि का कारण बनता है। वे सबके मूल में अपने को मानकर लोक लांछन के शिकार होते हैं। उनका शोकावृत्त भाव इस प्रकार है–

माँ ने मेरा स्वत्व छीन कर/ऐसा कलुषित दंश दिया है;

जहाँ न ज्योति पहुँच पाती है/ जहाँ न कोई किरण भटकती;

x x x x x x x

लगता भरत व्यथित पीड़ित–सा

गलता ग्लानि गरल में निश–दिन।[311]

इस उक्ति में पिता की मृत्यु और राम के निर्वासन से पराभव प्राप्त भरत आलंबन, माता कैकेयी के कृत्य से लोक निन्दा रामभद्र के शील स्नेहादि उद्दीपन, विवर्णता, प्रलाप, निश्वास आदि अनुभाव एवं ग्लानि, व्याधि, दैन्य, चिन्ता, विषाद आदि संचारियों से पुष्ट स्थायी भाव शोक की परिणति करूण रस में हो रही है।

रौद्र रस–

आलोच्य कृति में रौद्र रस की अभिव्यक्ति कई स्थलों पर हुई है। क्रोध से रौद्र रस की उत्पत्ति होती है। मंथरा के प्रति भरत का क्रोध इस प्रकार है–

अवध राज्य में आग लगाकर

तू करती प्रलाप यहाँ पर

सदा जले तुम मनस्ताप से

मिले न शांति तुझे जीवन भर

आज शाप देता मैं तुमको।[312]

क्रोध की व्यंजना के लिए निषादराज के प्रति युवजन की यह युक्ति भी देखी जा सकती है जहाँ निषादराज द्वारा भरत पक्ष का समर्थन किये जाने के कारण उनसे युद्ध करने तक को युवाजन तत्पर हो जाते हैं। वे भरत को अवध का राजा नहीं स्वीकारते। उन्हें राम राज्य चाहिए। पिछले पन्द्रह दिनों कैकेयी के शासन के अत्याचार को उन्होंने भोगा है। इसलिए वे विद्रोह करने को आतुर है–

पर हम सब विद्रोह करेंगे

अपदस्त भरत को करके

कैकेयी को निर्वासन दे

अवध राज्य के सिंहासन पर

रामभद्र को ही लायेंगे।[313]

यहाँ आदिवासियों का भरत के प्रति क्रोध सत्वज है। इसमें स्वार्थ नहीं, परमार्थ और लोक कल्याण निहित है। इसी प्रकार, मंथरा पर किया गया भरत का क्रोध ही सत्वज है।

विभत्स रस–

आचार्यों ने इसके शुद्ध, शोभण, उद्वेगी, तीन उपभेद स्वीकार किये हैं। 'चित्रकूट चरित' में उद्वेगी रूप का उदाहरण प्राप्त होता है। शोकाकुल भरत के मानस पटल पर राम के अभाव में अवध में घटने वाली घटनाओं के चित्र में इसकी व्यंजना हुई है–

मेरे कारण राज्य अवध का
हुआ मसान–सा निर्मम निर्जन।

x x x

त्यागा आज लषन ने मुझको
त्यागेंगे कल प्रभु भी मुझको
त्यागा मुझे धर्म ने जबसे
त्यागेंगे जड़ चेतन मुझको।

x x x

एक अकेला मैं हूँगा बस
और अकेली माता होगी

x x x

सरयू तट के कलश कगूरों
पर होगा राक्षस का पहरा।[314]

अद्‌भुत रस–

अद्‌भुत रस का उदाहरण राम का विश्व रूप के साथ तादात्म्य कथन में सहज ही देखा जा सकता है। भरत से राम का कथन है कि

विश्वरूप ही राम भाव है
उससे ही होता है आविर्भाव।
उसका ही होता पुरूर्भाव।[315]

अन्त में कहते है।–

मेरा रोम–रोम सृष्टिभाय
मेरा रोम–राम विश्वमय,
मेरा अपना स्वरूप क्या?

सब विराट् में लीन भावमय।[316]

यहाँ लोकोत्तर वस्तु यानि राम के विश्व–रूप का श्रवण, आलम्बन, राम के द्वारा ही उसका कथन और आक्षितिज हिरण्य गर्भ आभा का फैलना उद्दीपन, पुरजनों की आँखों का नम होना, सबका अन्तर्मुखी एवं रसप्लावित हो जाना, उन भाव एवं वितक्र, हर्ष, भ्रांति आदि संचारियों से पुष्ट विस्मय भाव अद्‌भुत रस में परिणत हुआ है।

भक्ति रस–

इस कृति में भक्ति की विशद अभिव्यक्ति भरत के माध्यम से हुई है। भरत राम की अनन्य भक्ति के मूर्त रूप हैं। यह भक्ति भाव ही भरत भाव है। वे अपने जीवन तथा आचरण से भक्ति के सभी सैद्धान्तिक विचारों का अवस्थागत पालन करते है। यथा–

निमित्त मात्र बनकर रहना

जो भी आवे उसको सहना

भक्ति भाव है।[317]

निष्कर्ष–

काव्यरूप की दृष्टि से विद्याभूषण विभु द्वारा चरित 'चित्रकूट चित्रण' पाँच खण्डों में नियोजित खण्डकाव्य है। रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री' द्वारा रचित 'चित्रकूट' सात सर्गो मं रचित करूण रस प्रधान खण्डकाव्य है। मोहनलाल गुप्त द्वारा रचित 'चित्रकूट' को लम्बी कविता या कथा काव्य कहा जा सकता है। रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट' पाँच सर्गों मे नियोजित है। लक्ष्मीकांत वर्मा रचित 'चित्रकूट–चरित' छः शिविरों में नियोजित खण्ड–काव्य है। इन कृतियों में काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का सन्निवेश सर्वत्र मिलता है। ये तत्त्व मानवीय संवेदना तथा हृदयस्पर्शी शैली का संयोग पाकर मार्मिक स्थानों के वर्णन में अधिक समर्थ हुए हैं। काव्य रसिकों ने इनमें अधिक आकर्षण एवं सौन्दर्य का दर्शन किया है।

महान कवियों के लिए शब्द भण्डार की सम्पन्नता निःसंदेह अति आवश्यक होता है। जैसा गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों में देखा जाता है। उन्होंने तत्सम, तद्‌भव, देशज और विदेशी शब्दों का बिना किसी संकोच के व्यवहार किया। संस्कृत के मर्मज्ञ होने के कारण उनकी रचनाएँ तत्सम संस्कृत पदावली से भर गई हैं। जन–भाषा के शब्दों के भी उन्होंने अधिकाधिक उपयोग किया है। विदेशी, अरबी–फारसी शब्दों को ग्रहण करने में भी उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ है। उतना विस्तृत शब्द भण्डार हिन्दी के किसी कवि में उपलब्ध नहीं है।

'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों में प्रकृति का उद्दीपन रूप–वर्णित नहीं है, क्योंकि तपस्या में, सहिष्णुता में प्रकृति का उद्दीपन रूप प्रायः घटित नहीं होता। जैसे नारद को तप भ्रष्ट करने के लिए कामदेव ने प्रकृति में नवीन परिवर्तन कर दिया था और वे सारे भाव रतिभाव उत्पन्न करने वाले थे। किन्तु चित्रकूट में आश्रम के ऋषियों के बीच और कोल–किरातों की सेवा द्वारा जहाँ सारे अभाव भाव में पाट दिए गए हों, वहाँ प्रकृति उद्दीप्त नहीं हो सकती। हाँ, उससे सहानुभूति का आभास पाया जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस में राम की उपस्थिति एवं संस्पर्श से प्रकृति का कण–कण संतप्त और संवेदनशील दिखायी पड़ता है।[318]

उपरि विवेचन से स्पष्ट है कि आलोच्य सभी कवियों ने काव्य सौन्दर्य के लिए अलग–अलग पद्धतियाँ अपनायी है। सभी कवियों की रचनाओं में कला पक्ष में भाषा के अर्न्तगत संवाद, शब्द भण्डार, लोकोक्तियाँ और मुहावरे आदि का वर्णन किया गया है। भाव पक्ष के अर्न्तगत प्रकृति एवं रसों का विवेचन किया गया है। चूँकि सभी कृतियाँ चित्रकूट से सम्बन्धित है इसलिए पाठकों को आकर्षित करने में सक्षम है। रसों के विवचेन में करूण रस, शांत रस, रौद्र रस आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आधुनिक कविता की विशेषताओं में एक विशेषता है उसका बुद्धितत्त्व के प्रति आग्रह। इस कृति में बौद्धिक संवेगों की प्रमुखता है। परिणामस्वरूप इन कृतियों में राजसत्ता और शासक की समस्या को सर्वथा आधुनिक विचारशील वातावरण में रहकर व्यापक बौद्धिकता को प्रतिष्ठित किया गया है। अयोध्या के शासन का केन्द्र बिन्दु कौन हो– राम, भरत या कैकेयी–इस पर सभी राजा, ऋषि, सामंत, आदिवासी, प्रजा, माताएँ आदि तर्क–वितर्क में उलझते हैं। इसमें कल्पना तत्त्व के माध्यम से अनेक अनकही और अनुद्घाटित घटनाओं और पात्रों को प्रत्यक्ष किया गया है। आलोच्य कृतियों की भाषा संरचना में कवि का शब्द–संस्कार बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इस प्रकार मुहावरा, सूक्ति, छन्द प्रयोग, अलंकार, अभिव्यक्ति, संप्रेषणीयता सभी दृष्टि से सभी कृतियॉ 'चित्रकूट' संज्ञक काव्यों की परम्परा में उत्कृष्ट हैं।

चित्रकूट की कथा पौराणिक है। अतः सभी काव्यों में उस कथा को नये ढंग से रखने का उपक्रम हुआ है। कवियों ने अपनी समसामयिक दृष्टि और नयी भाषा भूमि का उपयोग करते हुए उन बातों को तर्काश्रित और विवेकपूर्ण बनाते हुए प्रांजल शैली में रखने का प्रयास किया है। इन काव्यों में परस्पर समयान्तराल के चलते वर्णन–शैली में विविधता आयी है। तथापि, संप्रेषण की दृष्टि से ये सभी काव्य भाव, भक्ति तथा करूणा की अभिव्यक्ति में सफल हुए हैं। भरत की भक्ति को यहाँ भरत भाव के नाम से सम्बोधित किया गया है तथा राम के विश्वरूप को भी स्मरण करने में कहीं बाधा नहीं आयी है।

पंचम अध्याय

संदर्भ तालिका

1. रामकथाः भक्ति और दर्शन , विश्वम्भर दयाल अवस्थी, पृ.स. 310, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद
2. काव्य दर्पण, पंडित दहिन मिश्र, पृ.सं.412, भारती भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना
3. तारसप्तक, दूसरा संस्करण, अज्ञेय, पृ.सं. 308–309
4. चित्रकुट चित्रण, विद्याभूषण 'विभु', पृ.सं. 26, च.छ.
5. ——— वही ———— पृ.सं. 26, च.छ.
6. ——— वही ———— पृ.सं. 26, च.छ.
7. ——— वही ———— पृ.सं. 26, च.छ.
8. ——— वही ———— पृ.सं. 24, च.छ.
9. ——— वही ———— पृ.सं. 28, च.छ.
10. ——— वही ———— पृ.सं. 35, च.छ.
11. ——— वही ———— पृ.सं. 35, च.छ.
12. ——— वही ———— पृ.सं. 13, तृ.छ.
13. ——— वही ———— पृ.सं. 12, द्वि.छ.
14. ——— वही ———— पृ.सं. 41, च.छ.
15. ——— वही ———— पृ.सं. 37, च.छ.
16. ——— वही ———— पृ.सं. 32, द्वि.छ.
17. ——— वही ———— पृ.सं. 39, च.छ.
18. ——— वही ———— पृ.सं. 02, प्र.छ.
19. ——— वही ———— पृ.सं. 32, च.छ.
20. ——— वही ———— पृ.सं. 08, द्वि.छ.
21. ——— वही ———— पृ.सं. 27, च.छ.
22. ——— वही ———— पृ.सं. 33, च.छ.

23. ——— वही ————— पृ.सं. 04, प्र.छ.

24. ——— वही ————— पृ.सं. 22, च.छ.

25. ——— वही ————— पृ.सं. 35, च.छ.

26. ——— वही ————— पृ.सं. 34, च.छ.

27. ——— वही ————— पृ.सं. 35, च.छ.

28. चित्रकूट, रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री', पृ.स. 4, प्र.स.

29. ——— वही ————— पृ.स. 25, द्वि.स.

30. ——— वही ————— पृ.स. 86, प.स.

31. ——— वही ————— पृ.स. 3, प्र,स.

32. ——— वही ————— पृ.स. 3, प्र,स.

33. ——— वही ————— पृ.स. 3, प्र,स.

34. ——— वही ————— पृ.स. 3, प्र,स.

35. ——— वही ————— पृ.स. 3, प्र,स.

36. ——— वही ————— पृ.स. 6, प्र,स.

37. ——— वही ————— पृ.स. 8, प्र,स.

38. ——— वही ————— पृ.स. 8, प्र,स.

39. ——— वही ————— पृ.स. 13, प्र,स.

40. ——— वही ————— पृ.स. 8, प्र,स.

41. ——— वही ————— पृ.स. 89,प,स.

42. ——— वही ————— पृ.स. 65,च,स.

43. ——— वही ————— पृ.स. 4, प्र,स.

44. ——— वही ————— पृ.स. 17, प्र,स.

45. ——— वही ————— पृ.स. 24,द्वि,स.

46. ——— वही ————— पृ.स. 4, प्र,स.

47. ——— वही ————— पृ.स. 117,स,स.

48. ——— वही ————— पृ.स. 7, प्र,स.

49. ——— वही ————— पृ.स. 8, प्र.स.

50. ——— वही ———— पृ.स. 57,तृ.स.

51. ——— वही ———— पृ.स. 68, च.स.

52. ——— वही ———— पृ.स. 76, च.स.

53. ——— वही ———— पृ.स. 76, च.स.

54. ——— वही ———— पृ.स. 130,स.स.

55. चित्रकूट, मोहनलाल गप्त 'चातक', पृ.सं 58

56. ——— वही ————, पृ.सं 3

57. ——— वही ————, पृ.सं 3

58. ——— वही ————, पृ.सं 3

59. ——— वही ————, पृ.सं 39

60. ——— वही ————, पृ.सं 42

61. ——— वही ————, पृ.सं 43

62. ——— वही ————, पृ.सं 29

63. ——— वही ————, पृ.सं 48

64. ——— वही ————, पृ.सं 25

65. ——— वही ————, पृ.सं 67

66. ——— वही ————, पृ.सं 29

67. ——— वही ————, पृ.सं 31

68. चित्रकूट, रामेश्वरदयाल दुबे, पृ.स. 5,प्र.स

69. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

70. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

71. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

72. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

73. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

74. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

75. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

76. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

77. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

78. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

79. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

80. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

81. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

82. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

83. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

84. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

85. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

86. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

87. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

88. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

89. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

90. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

91. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

92. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

93. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

94. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

95. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

96. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

97. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

98. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

99. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

100. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

101. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

102. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

103. ——— वही —————, पृ.स. 5,प्र.स

104. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

105. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

106. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

107. ——— वही ————, पृ.स. 6,प्र.स

108. ——— वही ————, पृ.स. 7,प्र.स

109. ——— वही ————, पृ.स. 7,प्र.स

110. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

111. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

112. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

113. ——— वही ————, पृ.स. 6,प्र.स

114. ——— वही ————, पृ.स. 13,द्वि.स

115. ——— वही ————, पृ.स. 20,द्वि.स

116. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

117. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

118. ——— वही ————, पृ.स. 5,प्र.स

119. ——— वही ————, पृ.स. 9,प्र.स

120. ——— वही ————, पृ.स. 14,द्वि.स

121. ——— वही ————, पृ.स. 14,द्वि.स

122. ——— वही ————, पृ.स. 14,द्वि.स

123. ——— वही ————, पृ.स. 21,द्वि.स

124. ——— वही ————, पृ.स. 14,द्वि.स

125. ——— वही ————, पृ.स. 15,द्वि.स

126. ——— वही ————, पृ.स. 15,द्वि.स

127. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं.68, भ,शि

128. ——— वही ————, पृ.सं.23, आ,शि

129. ——— वही ————, पृ.सं.25, आ,शि

130. ——— वही ————, पृ.सं.25, आ,शि

131. ——— वही —————, पृ.सं.48, मा,शि

132. ——— वही —————, पृ.सं.16, आ,शि

133. ——— वही —————, पृ.सं.16, आ,शि

134. ——— वही —————, पृ.सं.16, आ,शि

135. ——— वही —————, पृ.सं.19, आ,शि

136. ——— वही —————, पृ.सं.19, आ,शि

137. ——— वही —————, पृ.सं.54, मा,शि

138. ——— वही —————, पृ.सं.60, भ,शि

139. ——— वही —————, पृ.सं.68, भ,शि

140. ——— वही —————, पृ.सं.32, आ,शि

141. ——— वही —————, पृ.सं.50, मा,शि

142. ——— वही —————, पृ.सं.38, मा,शि

143. ——— वही —————, पृ.सं.62, भ,शि

144. ——— वही —————, पृ.सं.62, भ,शि

145. ——— वही —————, पृ.सं.65, भ,शि

146. ——— वही —————, पृ.सं.83, ज,शि

147. ——— वही —————, पृ.सं.83, ज,शि

148. ——— वही —————, पृ.सं.88, ज,शि

149. ——— वही —————, पृ.सं.88, ज,शि

150. ——— वही —————, पृ.सं.89, ज,शि

151. ——— वही —————, पृ.सं.92, ज,शि

152. ——— वही —————, पृ.सं.93, ज,शि

153. ——— वही —————, पृ.सं.93, ज,शि

154. ——— वही —————, पृ.सं.100, ऋ.शि

155. ——— वही —————, पृ.सं.102, ऋ.शि

156. ——— वही —————, पृ.सं.106, ऋ.शि

157. ——— वही —————, पृ.सं.107, ऋ.शि

158. ——— वही —————, पृ.सं.109, ऋ.शि

159. ——— वही —————, पृ.सं.124, रा.शि

160. ——— वही —————, पृ.सं.127, रा.शि

161. ——— वही —————, पृ.सं.128, रा.शि

162. ——— वही —————, पृ.सं.128, रा.शि

163. ——— वही —————, पृ.सं.129, रा.शि

164. ——— वही —————, पृ.सं.130, रा.शि

165. ——— वही —————, पृ.सं.130, रा.शि

166. ——— वही —————, पृ.सं.130, रा.शि

167. चित्रकूट चित्रण, विद्याभूषण 'विभु', पृ.सं.1, प्र.छ.

168. ——— वही —————, पृ.सं.1, प्र.छ.

169. चित्रकूट, रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री', मुख्य पृष्ठ

170. ——— वही —————, पृ.स. 21, प्र.स.

171. ——— वही —————, पृ.स. 20, प्र.स.

172. ——— वही —————, पृ.स. 20, प्र.स.

173. ——— वही —————, पृ.स. 20, प्र.स.

174. ——— वही —————, पृ.स. 21, प्र.स.

175. ——— वही —————, पृ.स. 102,छ.स.

176. ——— वही —————, पृ.स. 104,छ.स.

177. चित्रकूट, मोहनलाल गप्त 'चातक', पृ.सं 01

178. ——— वही —————, पृ.सं 24

179. चित्रकूट, रामेश्वरदयाल दुबे, पृ.स. 5,प्र.स

180. ——— वही —————, पृ.स. 64,प.स

181. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं.37,मा,शि

182. ——— वही —————, पृ.सं.110,ऋ.शि

183. ——— वही —————, पृ.सं.136,रा.शि

184. चित्रकूट चित्रण, विद्याभूषण 'विभु', पृ.सं.2, प्र.छ.

185. ——— वही —————, पृ.सं.3, प्र.छ.

186. ——— वही —————, पृ.सं.3, प्र.छ.

187. ——— वही —————, पृ.सं.3, प्र.छ.

188. ——— वही —————, पृ.सं.4, प्र.छ.

189. ——— वही —————, पृ.सं.1, प्र.छ.

190. ——— वही —————, पृ.सं.1, प्र.छ.

191. ——— वही —————, पृ.सं.1, प्र.छ.

192. ——— वही —————, पृ.सं.1, प्र.छ.

193. ——— वही —————, पृ.सं.1, प्र.छ.

194. ——— वही —————, पृ.सं.5, प्र.छ.

195. ——— वही —————, पृ.सं.13, प्र.छ.

196. ——— वही —————, पृ.सं.24,च.छ.

197. ——— वही —————, पृ.सं.26,च.छ.

198. ——— वही —————, पृ.सं.3,प्र.छ.

199. चित्रकूट, रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री', पृ.सं.3,प्र.स.

200. ——— वही —————, पृ.सं.21,प्र.स.

201. ——— वही —————, पृ.सं.31,द्वि.स.

202. ——— वही —————, पृ.सं.31,द्वि.स.

203. ——— वही —————, पृ.सं.19,प्र.स

204. ——— वही —————, पृ.सं.20,प्र.स

205. ——— वही —————, पृ.सं.26,द्वि.स

206. ——— वही —————, पृ.सं.27,द्वि.स

207. ——— वही —————, पृ.सं.12,प्र.स

208. ——— वही —————, पृ.सं.19,प्र.स

209. ——— वही —————, पृ.सं.21,प्र.स

210. ——— वही —————, पृ.सं.34,द्वि.स

211. चित्रकूट, मोहनलाल गप्त 'चातक', पृ.सं 02

212. ——— वही ————, पृ.सं 03

213. ——— वही ————, पृ.सं 05

214. ——— वही ————, पृ.सं 05

215. ——— वही ————, पृ.सं 06

216. ——— वही ————, पृ.सं 10

217. ——— वही ————, पृ.सं 14

218. ——— वही ————, पृ.सं 14

219. ——— वही ————, पृ.सं 12

220. ——— वही ————, पृ.सं 32

221. ——— वही ————, पृ.सं 32

222. ——— वही ————, पृ.सं 23

223. ——— वही ————, पृ.सं 08

224. ——— वही ————, पृ.सं 06

225. ——— वही ————, पृ.सं 09

226. ——— वही ————, पृ.सं 11

227. ——— वही ————, पृ.सं 17

228. ——— वही ————, पृ.सं 43

229. चित्रकूट, रामेश्वरदयाल दुबे, पृ.स. 21.द्वि.स

230. ——— वही ————, पृ.स. 20.द्वि.स

231. ——— वही ————, पृ.स. 20.द्वि.स

232. ——— वही ————, पृ.स. 21.द्वि.स

233. ——— वही ————, पृ.स. 21.द्वि.स

234. ——— वही ————, पृ.स. 21.द्वि.स

235. ——— वही ————, पृ.स. 21.द्वि.स

236. ——— वही ————, पृ.स. 21.द्वि.स

237. ——— वही ————, पृ.स. 21.द्वि.स

238. ——— वही ————, पृ.स. 21.द्वि.स

239. ——— वही —————, पृ.स. 22.द्वि.स

240. ——— वही —————, पृ.स. 22.द्वि.स

241. ——— वही —————, पृ.स. 22.द्वि.स

242. ——— वही —————, पृ.स. 22.द्वि.स

243. ——— वही —————, पृ.स. 22.द्वि.स

244. ——— वही —————, पृ.स. 22.द्वि.स

245. ——— वही —————, पृ.स. 23.द्वि.स

246. ——— वही —————, पृ.स. 17.द्वि.स

247. ——— वही —————, पृ.स. 16.द्वि.स

248. ——— वही —————, पृ.स. 05.प्र.स

249. ——— वही —————, पृ.स. 23.द्वि.स

250. ——— वही —————, पृ.स. 10.प्र.स

251. ——— वही —————, पृ.स. 20.द्वि.स

252. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं.37,मा,शि

253. ——— वही —————, पृ.सं.63,भ,शि

254. ——— वही —————, पृ.सं.115,रा,शि

255. ——— वही —————, पृ.सं.117,रा,शि

256. ——— वही —————, पृ.सं.83,ज.शि

257. ——— वही —————, पृ.सं.67,भ,शि

258. ——— वही —————, पृ.सं.61,भ,शि

259. ——— वही —————, पृ.सं.65,भ,शि

260. ——— वही —————, पृ.सं.38,मा.शि

261. ——— वही —————, पृ.सं.39,मा.शि

262. ——— वही —————, पृ.सं.81,ज.शि

263. ——— वही —————, पृ.सं.115,रा.शि

264. ——— वही —————, पृ.सं.117,रा.शि

265. ——— वही —————, पृ.सं.118,रा.शि

266. ——— वही ————, पृ.सं.115,रा.शि

267. ——— वही ————, पृ.सं.65,भ.शि

268. ——— वही ————, पृ.सं.84,ज.शि

269. ——— वही ————, पृ.सं.86,ज.शि

270. ——— वही ————, पृ.सं.116,रा.शि

271. ——— वही ————, पृ.सं.120,रा.शि

272. कामायनीः एक पुनर्विचार, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.169

273. चित्रकूट चित्रण, विद्याभूषण 'विभु', पृ.सं.2, प्र.छ.

274. ——— वही ————, पृ.सं.25, च.छ.

275. चित्रकूट, रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री', पृ.सं.7,प्र.स.

276. ——— वही ————, पृ.सं.10,प्र.स.

277. ——— वही ————, पृ.सं.87,पं.स.

278. चित्रकूट, मोहनलाल गप्त 'चातक', पृ.सं 03

279. ——— वही ————, पृ.सं 09

280. ——— वही ————, पृ.सं 01

281. ——— वही ————, पृ.सं 01

282. चित्रकूट, रामेश्वरदयाल दुबे, पृ.स. 19.द्वि.स

283. ——— वही ————, पृ.स. 21.द्वि.स

284. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं.135,रा,शि

285. ——— वही ————, पृ.सं.54,मा,शि

286. ——— वही ————, पृ.सं.25,आ,शि

287. ——— वही ————, पृ.सं.68,भ,शि

288. चित्रकूट चित्रण, विद्याभूषण 'विभु', पृ.सं.2, प्र.छ.

289. ——— वही ————, पृ.सं.20,तृ.छ.

290. ——— वही ————, पृ.सं.03, प्र.छ.

291. ——— वही ————, पृ.सं.31,च.छ.

292. चित्रकूट, रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री', पृ.सं.43,द्वि.स.

293. ——— वही —————, पृ.सं.103,ष.स.

294. ——— वही —————, पृ.सं.107,ष.स.

295. ——— वही —————, पृ.सं.14,प्र.स.

296. ——— वही —————, पृ.सं.51,तृ.स.

297. ——— वही —————, पृ.सं.52,तृ.स.

298. ——— वही —————, पृ.सं.76,च.स.

299. ——— वही —————, पृ.सं.76,च.स.

300. चित्रकूट, मोहनलाल गप्त 'चातक', पृ.सं 11

301. ——— वही —————, पृ.सं 13

302. ——— वही —————, पृ.सं 27

303. ——— वही —————, पृ.सं 26

304. ——— वही —————, पृ.सं 45

305. चित्रकूट, रामेश्वरदयाल दुबे, पृ.स. 20.द्वि.स

306. ——— वही —————, पृ.स. 27.तृ.स

307. ——— वही —————, पृ.स. 26.तृ.स

308. ——— वही —————, पृ.स. 29.तृ.स

309. ——— वही —————, पृ.स. 52.च.स

310. ——— वही —————, पृ.स. 38.च.स

311. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.सं.45,मा,शि

312. ——— वही —————, पृ.सं.125,रा,शि

313. ——— वही —————, पृ.सं.23,आ,शि

314. ——— वही —————, पृ.सं.67–68,भ.शि

315. ——— वही —————, पृ.सं.130,रा.शि

316. ——— वही —————, पृ.सं.134,रा.शि

317. ——— वही —————, पृ.सं.92,ज,शि

318. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, अयो0 दो0 136/3

उपसंहार

उपसंहार

वाल्मीकि कृत 'रामायण' से ही रामाख्यानक रचनाओं का विकास हुआ है, इसे प्रायः रामकथा के स्रोतान्वेषक सभी विद्वान् एक स्वर स्वीकार करते हैं। स्वयं गोस्वामी तुलसीदास जी ने बालकाण्ड के प्रारंभ में लिखा है–

'बन्दौं मुनि पद कंज, रामायन जेहि निरमयउ'[1]–मैं अब वाल्मीकि मुनि के चरण कमलों की बंदना करता हूँ जिन्होंने रामायण की रचना की। इसके बाद पूरी रामकथा का विस्तार विभिन्न मध्यकालीन भारतीय भाषाओं और आधुनिक भारतीय भाषाओं में हुआ। आज भी सहस्रों काव्यनद और निर्झर उससे निर्गमित हो प्रवाहित हो रहे हैं। रामाख्यानक रचनाओं के अध्ययन से पता चलता है कि इस आख्यान के वर्णन क्रम में 'कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य' है। राम के अनन्त गुण और उनकी कथा के विस्तार की अनन्तता को गोस्वामीजी तुलसीदास ने इस प्रकार व्यक्त किया है कि समस्त विश्व की नदियों के बालू को गिना जा सकता है लेकिन राम के गुणों की गणना संभव नहीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'मानस' में घटित चित्रकूट सभा की कार्यवाही को लक्षित कर कहा है– 'इस पुण्य समाज के प्रभाव से चित्रकूट की रमणीयता में पवित्रता भी मिल गयी। उस समाज के भीतर नीति, स्नेह, शील, विनय, त्याग आदि संघर्ष से जो धर्म ज्योति फूटी उससे आस–पास का सारा प्रदेश जगमगा उठा। उसकी मधुर स्मृति से आज भी वनस्थली परम पवित्र है। 'मानस' में वह सभा एक आध्यात्मिक घटना' है।[2] 'वाल्मीकि रामायण' में कुल पन्द्रह सर्गों में यह कथा वर्णित है और रामचरितमानस में कुल 85 दोहे अयोध्याकाण्ड में इसके लिए प्रयुक्त हुए हैं। कथा बस इतनी ही है चित्रकूट में राम से भरत की भेंट हो जाती है। वाल्मीकि श्रीराम के रहने के लिए इस स्थान को सर्वाधिक उपयुक्त मानते हैं। भरत राम से अयोध्या लौटकर राज्य करने का आग्रह करते हैं पर राम उसे अस्वीकार कर सारे पुरवासियों सहित उन्हें लौटा देते हैं। 'वाल्मीकि रामायण' में रामकथा से सम्बद्ध अनेक स्थलों के वर्णन में चित्रकूट का विशिष्ट महत्त्व है। कालिदास के रघुवंश और भवभूति के 'उत्तर रामचरित' में चित्रकूट तक जाने वाले कालिंदी तट पर स्थित मार्ग का उल्लेख है। 'रामायण' के अनुसार रामभद्र ने पयस्विनी या मंदाकिनी के तट पर स्थित इस पहाड़ी पर निवास किया था।

चित्रकूट पर्वत एवं उससे संलग्न वन्य सम्पदा तथा उसकी रमणीयता का वर्णन पुराणों, जातक ग्रंथों, जैन साहित्य तंत्र ग्रंथों में भी प्राप्त है। पद्मपुराण के तीर्थ माहात्म्य में चित्रकूट का उल्लेख है। भागवत पुराण में चित्रकूट एक मनोहारी चित्र के रूप में मिलता है। कालिका पुराण में कज्जल नामक एक पर्वत को चित्रकूट के पूर्व में स्थित बताया गया है। जैन पद्मपुराण के अनुसार राम एवं लक्ष्मण मालव देश में चित्रकूट पहाड़ी के पाद तक आए थे। 'ललित विस्तर' में इसका वर्णन रमणीक तथ निष्कलुष स्थल के रूप में प्राप्त होता है। एक जातक के अनुसार धर्मानुसार राज्य का शासन करने के लिए आदिष्ट एक राजा

ने इस पर्वत के लिए प्रस्थान किया था। वृहद् संहिता में भी चित्रकूट का वर्णन मिलता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि रामकथा विषयक आख्यानों तथा इतर साहित्यिक ग्रंथों में चित्रकूट से सम्बन्धित प्रभूत आधार सामग्री उपलब्ध होती है। प्रायः सभी कवियों ने इसकी रमणीयता की सराहना की है और चित्रकूट संज्ञक काव्यों में रमणीयता के साथ पवित्रता का तत्व भी समाविष्ट हुआ है। राम भरत का मिलन जैसा 'भायप भगति' का उदाहरण निश्चय रूप से अन्यतम एवं स्पृहणीय बन गया है।

हिन्दी साहित्य में यद्यपि रहीम आदि ने भी इसका वर्णन किया है किन्तु स्वतंत्र रूप से ग्रंथ आधुनिक युग में ही लिखे गये। यद्यपि इस पर कोई महाकाव्य नहीं लिखा गया, खण्ड काव्य तक ही इसकी सीमा निश्चित रही। गुप्तजी जैसे प्रबंध कवि भी केवल साकेत समाज के चित्रकूट में चलकर देखने की कल्पना मात्र करके रह जाते हैं। यद्यपि उनके समय में भी 'विद्याभूषण विभु' ने चित्रकूट चित्रण लिखकर वहाँ की छवियों का दर्शन कराया था। इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस प्रख्यात प्रसंग को आधुनिक युग में विशेष रूप से विवेच्य बनाया गया। इसमें कवियों ने अपनी कल्पना के माध्यम से समसामयिक युग की चिन्तन धारा को बोध–चेतना आदि के अनुरूप सर्वथा नवीन रूप में इसें गठित किया। अतः पारम्परीण रूप में होकर भी यह किंचित परिवर्तित और नवीन हो गई है। सर्वप्रथम कवि प्रसाद ने चित्रकूट पर एक कथा काव्य की योजना बनाई। 'कानन कुसुम' में उनकी चित्रकूट शीर्षक कविता संगृहीत है। इसमें कवि ने मार्मिक घटनाओं और संदर्भों का चयन किया है। इसमें राम–भरत मिलन का दृश्य अंकित किया गया है। इस प्रसंग का दूसरा उद्देश्य है राम और लक्ष्मण की स्वभाव की भिन्नता प्रकट करना। ऐसे महाकवि निराला ने 'तुलसीदास' में चित्रकूट का वर्णन किया है।

प्रस्तुत प्रबंध चित्रकूट स्थल पर केन्द्रित काव्यों पर आधारित है। इन चित्रकूट संज्ञक काव्यों में लक्ष्मीकांत वर्मा कृत चित्रकूट चरित, मोहन लाल गुप्त 'चातक रचित 'चित्रकूट', रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट' विद्याभूषण विभु रचित 'चित्रकूट चित्रण' तथ रामानन्द द्विवेदी शास्त्री द्वारा रचित्र 'चित्रकूट' विवेचन के आधार बने हैं। इस संदर्भ में डा0 देवकीनन्दन श्रीवास्तव रचित 'चित्रकूट के पथ पर' नामक लम्बी कविता का भी महत्त्व है। किन्तु इस प्रबंध में केवल पाँच कृतियों का ही विविध–ढंग से आलोड़न किया गया है। खड़ी बोली की कविता में जो आधुनिकता का समावेश हुआ और कविता की अन्तवर्ती चेतना में जो बदलाव आया, छन्द बदले, इन बदले हुए साहित्यिक मूल्यों के साथ आधुनिकता की एक लहर भी आई। आधुनिक हिन्दी साहित्य में पारम्परीण स्रोतों वाले विषय वस्तु के काव्य ग्रंथ भी समानान्तर गति से रचे गये। चित्रकूट संज्ञक इन पाँचों कृतियों का स्थान इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत इन पाँचों कृतियों का सामान्य परिचय दिया गया है। इसमें कृतियों के रचना काल के साथ कृतिकार के समर्पण निवेदन आदि के आधार पर उस काल को साहित्यिक दृष्टि से विश्लेषित किया गया है। जैसे मोहनलाल गुप्त 'चातक' को इस काव्य को लिखने में 'रामायण', 'मानस' और 'साकेत' से प्रेरणा मिली। किन्तु उससे भी ज्यादा वाल्यकाल में उनकी माँ ने प्रेरणा दी जो रामायण की

कहानियाँ सुनाती थी, 'मानस' का पाठ करती थी और हर्ष विभोर होकर नृत्य करने लगती थी और कभी शोक द्रवित होकर अश्रुपात करने लगती थीं। कवि के मन में ऐसी अनुभूति हुई कि इस प्रयोगवादी युग में पौराणिक आख्यानों के माध्यम से जन जागृति का प्रयास किया जा सकता है।[3]

ये काव्य चित्रकूट तीर्थ की सांस्कृतिक महत्ता के साथ इसकी आध्यात्मिक महिमा और नैसर्गिक सुषमा का आख्यान है। चित्रकूट धाम भारत का हृदय बिन्दु है। आधुनिक कवियों ने इस महिमाशाली तीर्थ के प्रति प्रेम और श्रद्धा का भाव भर दिया है। 'गीतावली' और 'विनयपत्रिका' में गोस्वामीजी ने जिस चित्रकूट के अन्तः–बाह्य का वर्णन किया है, उसको आधुनिक कवियों ने अपनी मानवीय दृष्टि के आधार पर बड़ी ही सतर्कता के साथ उभारा है। इन आलोच्य कवियों ने अपना प्रकृति प्रेम, काव्य रसिकता और भक्ति का अनुपम त्रिपुट प्रस्तुत किया है। वहाँ के झरने मंदाकिनी की पवित्र धारा और वन की शोभा ऐसी सुवर्णित है कि उसे पढ़कर काव्य रसिकों का मन उस स्थान के दर्शन के लिए लालायित हो उठता है। इन कवियों का उद्देश्य चित्रकूट के तीर्थ स्थान के रूप में चित्रित करना, बालक–बालिकाओं के हृदय में धार्मिक भाव उत्पन्न करना, राम और भरत के भ्रातृ–प्रेम को समाज में जाग्रत करना, कैकेयी के कलंक को धोना, उर्मिला माण्डवी आदि के चरित्र को नये ढंग से सामने लाना, ऋषियों के जीवन को धर्म के अंग के रूप में स्वीकार करना, राम के जीवन को तपस्यामय बनाकर संस्कारित करना तथा पात्रों की मानसिकता का आधुनिक अन्तर्द्वन्द्व स्पष्ट करते चलना है।

इन सभी कृतियों में रामानन्द शास्त्री, रामेश्वरदयाल दुबे और लक्ष्मीकांत वर्मा की कृतियाँ विशेष रूप से परिगणनीय हैं। रामेश्वरदयाल दुबे कृत 'चित्रकूट' के सम्बन्ध में प्रख्यात कवियित्री महादेवी वर्मा ने ठीक ही लिखा है– 'प्राकृतिक परिवेश में 'चित्रकूट' के कवि ने अपने पात्रों के चरित्र को उनके कथन, उपकथन द्वारा इस प्रकार उभारा है कि वे हमारे निकट विशिष्ट न होकर सामान्य और आत्मीय बन जाते हैं। उनकी कल्पना का उपयोग पात्र की मानसिकता तथा उसके अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट करने वाला है। 'चित्रकूट चरित' के रचयिता लक्ष्मीकांत वर्मा को हनुमत् कृपा से वर्णित पात्र और घटना को रूपायित करने की शक्ति प्राप्त हुई है। वस्तु–विधान के अन्तर्गत चित्रकूट प्रसंग रामकथा के आलोक में सभी आलोच्य काव्यों की कथावस्तु का वर्णन हुआ है। कविवर 'विभु' का 'चित्रकूट चित्रण' मूलतः प्रकृति वर्णन प्रधान सरस काव्य रचना है। इसे पाँच छवियों में बाँधा गया है। प्रथम में चित्रकूट स्थल का वर्णन विन्ध्याचल पर्वत के अंश रूप में किया गया है। यहाँ चित्रकूट को चित्रपुरी की संज्ञा दी गई है। चूँकि वहाँ चित्रवाज अर्थात् मुर्गा के बांग देने से दिनचर्या प्रारंभ होती है। पुनः इसके पर्यटन हेतु श्रेष्ठ ऋतु के रूप में कवि ने पावस ऋतु का उल्लेख किया है और सभी दर्शनीय स्थलों का विस्तृत वर्णन किया है। फिर चित्रवन की व्याख्या करते हुए कवि प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण एवं अंकन करता है। पंचम छवि को उपसंहार शीर्षक दिया गया है। इसमें कथा योजना बहुत कम हैं। प्रकृति वर्णन ही महत्त्वपूर्ण है। दुबे कृत 'चित्रकूट' में निर्वासित राम अपने अनुज एवं वधू के साथ चित्रकूट में कोल–किरातों को सांत्वना देते हैं। उन्हें मुनियों तथा ज्ञानियों का

दर्शन होता है। अयोध्या से आने का कारण बताया जाता है। चित्रकूटवासियों के पास राम के आगमन का संदेश आता है। 'मानस' के समान ही यह कथा है। फिर मंदाकिनी के हरितांचल में कुटिया बनती है, वहाँ लक्ष्मण और सीता के साथ राम का निवास होता है। यहाँ कैकेयी के प्रति आक्रोश भी व्यक्त हुआ है। ऋषि–मुनियों के साथ राम संस्कृति और विधि के विधान जैसे तथ्यों पर तार्किक चर्चा करते है। तृतीय सर्ग की कथा भरत के आगमन की सूचना पाकर लक्ष्मण के आवेश और उत्तेजना से प्रारंभ होती है। चित्रकूट में समस्त अयोध्या और मिथिला के वासियों का साथ–साथ जीवन प्रेम से भरा है। इसमें परिवर्तन इतना ही है कि यहाँ कैकेयी मुखर हैं और सौमित्र उर्मिला को दीप जलाना देखकर सहम जाते हैं। चतुर्थ सर्ग में श्रीराम दशरथ की मृत्यु के बाद श्राद्ध कर्म और पिण्डदान करते हैं। किरातिनियाँ लोक नृत्य दिखला कर सबका मनोरंजन करती हैं। भरत को गुरू वशिष्ट द्वारा मौन तोड़ने का आदेश होता है। राम भी उन्हीं के मुख से कुछ सुनना चाहते है। किन्तु इधर राम पिता की आज्ञा पाले और उधर भरत माताओं, प्रजाओं की सेवा करें। इसी पर पूरी सभा हामी भर देती हैं। पंचम सर्ग में सभी लौट–जाने की बात सोचते हैं।

'चित्रकूट चरित' में कथा शिविरों में विभक्त है। ये शिविर सर्ग के सूचक हैं। चित्रकूट की घाटी में आदिवासी शिविर लगा है। निषादराज युवजनों को समझाने की चेष्टा करते हैं, कि राम भरत के अनुयायी है अतः दोनों में भेद करने की कोई आवश्यकता नहीं। किन्तु युवक पन्द्रह दिनों के आपात्काल के समय क्रूर शासन को कैकेयी के माथे ही डालकर भविष्य को सोचनीय मानते हैं। इस पर निषाद और वाल्मीकि उन्हें समझाकर शांत कर देते हैं। मातृ शिविर में कैकेयी लोकलांछन को अपने लिए उज्ज्वल थाती मानती है। उसे यश–अपयश की परवाह नहीं उसने तो राम को रामायण के योग्य बनाने के लिए ही वन में निर्वासित होकर रहने की आज्ञा दी है। भरत सेवक हैं उनको भला राज्य से क्या मतलब। भरत अपने शिविर में चिन्तित हैं अतः सभी परमज्ञानी जनक के शिविर में जाते हैं जहाँ इस समस्या का समाधान संभव है। जनक सभी लोगों के साथ ऋषि शिविर में आते हैं। जहाँ वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, कौशिक, अत्रि, जाबाली आदि अनेक मतों के जानकार उपस्थित हैं। जब कोई मतैक्य नहीं हो पाता तो सभी मिलकर श्रीराम की शिविर की ओर चलते है जहाँ राम ध्यान में बैठे हैं। वहाँ भरत को वशिष्ठ के द्वारा यह आदेश होता है कि यह पादुका ही तुम्हारा अवलम्ब है, इसी को आधार बनाकर जीवन में धारण कर तुम रामभाव का वरण करो और वे पादुका प्राप्त कर अवध लौट आते हैं। इसमें स्रोत कथा अर्थात् वाल्मीकि रामायण से बहुत परिवर्तन किए गए हैं।

'शास्त्री' कृत 'चित्रकूट' करूण रस प्रधान खण्ड काव्य है। इसमें वस्तु विधान का सर्गानुरूप नियोजन हुआ है। इसका प्रारंभ चित्रकूट में सीता, राम और सौमित्र के पधारने की कथा से होता है। इनके प्रताप से हिंस्र जानवारों में भी अपनी प्रकृति की सर्वथा त्याग कर प्रेम को धारण किया है। अतीत की स्मृतियों में चित्रकूट की पूरी कथा को कल्पनाओं के माध्यम से प्रकट की गयी है फिर अनसूया आश्रम का वर्णन आता है। इन आश्रमों में यज्ञ, हवन, सत्संग आदि दिनचर्या से जुड़े हैं। सीता राम और लक्ष्मण इसी

वातावरण में समय बिता रहे हैं। चतुर्थ सर्ग में गुरू वशिष्ठ द्वारा दशरथ मरण को अनिवार्य बताते हुए अंधतापस की पूरी कथा वर्णित है। पंचम सर्ग में राघवेन्द्र कैकेयी को निर्दोष कहते हैं और हिदायत देते हैं कि कोई भी उन पर रोष न करे। वे चाहते हैं कि उपेक्षित कोल–किरातों, शबरों और निषादों की सेवा में भी वे अपने पितृ–शोक की विस्मृति का मार्ग ढूँढ़ें। फिर भरत ननिहाल से अयोध्या लौटने का वर्णन करते हैं। षष्ठ सर्ग में राम और भरत के वार्तालाप को सुमंत्र शोक विह्वल होकर सुनाते हैं। पश्चात् सुमंत्र राम को पहुँचाने के बाद अयोध्या आगमन की पूरी कथा कह डालते हैं। सातवें सर्ग में भरत के निवेदन पर विचारों का मंथन दिखाया गया है और राम उन्हें स्वयं पादुका प्रदान कर अयोध्या लौटा देते हैं। इस प्रकार कथा विधान की दृष्टि से इन काव्यों में स्रोत कथाओं में पर्याप्त परिवर्तन और परिशोधन के पश्चात् कथा के स्वरूप को गृहीत कर वर्णित किया गया है।

कथा विधान के पश्चात् चरित विधान का आयोजन हुआ है। इसमें पात्रों और चरित्र चित्रण के सम्बन्ध में मुख्य बात इतनी ही है कि यहाँ कवियों को कथा का आधार छोटा होने के कारण चरित्रों की विशेषताओं की व्याख्या करने का अवसर कम मिला है। बस पात्र के संकेत मात्र पर उनका चरित्र उजागर हुआ है। चरित्र भी अपना स्वयं विकास नहीं कर पाये हैं। चरित्रांकन के लिए कवियों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों विधियों को अपनाया है। प्रत्यक्ष विधि के अन्तर्गत, मूलतः तथ्य प्रकाशन, वर्णन और अन्य पात्रों द्वारा कथन को महत्व मिला है। इसी प्रकार परोक्ष विधि के अन्तर्गत पात्रों के अभिभाषण कार्य और अन्य पात्रों पर अंकित प्रभाव को महत्व मिला है। चरित्रांकन में कवियों ने पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को भी महत्व दिया है। इसके अतिरिक्त संवादों के माध्यम से भी इनके भीतर के मर्म को उद्‌घाटित कराने की चेष्टा की गयी है। इसमें पुरूष और स्त्री चरित्र, मुख्य और गौण चरित्र सबकी व्यवस्था है। मुख्य पुरूष पात्रों में राम, भरत, जनक, वशिष्ठ, लक्ष्मण, सुमंत्र, वाल्मीकि आदि हैं। गौण पात्रों में निषादराज, कोल–किरात, आदिवासीजन एवं युवजन हैं। मुख्य स्त्री चरित्रों में कैकेयी, कौशल्या, सीता सुनयना आदि हैं। इन पात्रों का स्वरूप एक सिद्धान्त संस्कार के भीतर वर्णित है कि वे सभी राम के समान आचरण करें, रावण के समान नहीं। इसके अतिरिक्त विवेच्य ग्रंथों का कथा विस्तार पात्रों के समग्र जीवन से सम्बद्ध न होकर खण्ड विशेष तक सीमित है। अतः उनके गुण और शील स्वभाव की विशेषताओं को समग्र परिप्रेक्ष्य में न देखकर सीमित परिप्रेक्ष्य में ही विवेचित किया गया है।

लक्ष्मीकांत वर्मा रचित 'चित्रकूट' चरित, में श्रीराम नर और नारायण दोनों रूपों में अंकित हुए हैं। वे एक साथ ब्रह्म रूप में पूरी सृष्टि में रमे हुए हैं, विश्वमय हैं तो वे जन जन में, दीन दुखियों में, अवलम्बहीनों में भी अन्तर्भूत हैं। राम की लोकप्रियता सर्वत्र सुरक्षित है। पुरूष पात्रों के चरित्रांकन में युगानुकूल परिवर्तन लक्षित होते हैं। आदिवासियों के मन में वशिष्ठ का चरित्र कूटनीतिक का लगता है। चित्रकूट चरित में मुख्य स्त्री पात्र कैकेयी यह स्पष्ट कहती है कि उसने जो भी किया है वह राम के हित के लिए ही। भरत तो मात्र माध्यम बने। कैकेयी का चरित्रांकन कर्म की प्रतिमा के रूप में हुआ है। उनमें

सहज मातृत्व के गुण भी हैं। पर वह कर्त्तव्य के लिए ममत्व का बलिदान करती है। भले ही इसके लिए उसे लोक लांछन ही क्यों न सहना पड़े। इन काव्य ग्रंथों में मूल रामकथा की प्रासंगिक कथा को ही मुख्य कथा के रूप में स्वीकृत किया गया है। इसमें प्रमुख पात्रों की संख्या स्रोत कथाओं के सामान ही है। परन्तु गौण पात्रों की संख्या में विशेष वृद्धि हुई है। युगीन प्रभाव के कारण पर्याप्त परिवर्तन और परिवर्द्धन को कवियों ने स्वीकार किया है। कवियों ने अपनी कल्पनाशीलता का भी सहारा लिया है और सृजनकाल की युगीनता को निर्मित कृतियों में प्रतिव्यक्त किया है।

परिवेश, प्रतिबिम्बन एवं विचारधारा के क्रम में इन कृतियों में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक परिवेश का प्रामुख्य के साथ वर्णन हुआ है। चित्रकूट में सम्बन्धित सभी कृतियों में तीन भिन्न–भिन्न समाज के लोगों का समागम हुआ है– अयोध्या का राज समाज, मिथिला नरेश जनक का समाज तथा चित्रकूट के वन प्रान्तर में निवास करने वाले अर्द्धसभ्य कोल–भील आदि जनजातियों का समाज। इससे अधिक समाज के प्रतिनिधित्व का अवसर भी यहाँ नहीं था। अयोध्या के सामाजिक परिवेश को विस्तार देना यहाँ अनावश्यक लगता। क्योंकि मिथिला और अयोध्या का समाज नैतिकता की दृष्टि से राम के स्नेह से वशीभूत होकर वहाँ एकत्र हुआ है। सामाजिक सम्बन्धों की मर्यादा के रक्षा के प्रति यह दोनों समाज संकल्पबद्ध है। इसी से सामाजिक रीति–नीति एवं संस्कारों की इन कृतियों में सजीव अंकन हुआ है। श्रीराम, लक्ष्मण और वैदेही के 'रामचरितमानस' में भी वार्ता क्रम में अयोध्या और जनकपुर चित्रकूट के संदर्भो से बार–बार जुट जाता है। इस समाज में शकुन–अपशकुन की चर्चा है। भरत और राम के स्नेह के अतिरिक्त उनका दशरथ के प्रति श्रद्धा भाव भी वर्णित है। अयोध्या और जनकपुर के सभी संस्कार समाज के परिवेश में घुले हुए नैतिकता और मर्यादा की रक्षा करने में समर्थ हैं। श्रीराम का संकल्प हिलता नहीं। वे यदि घर से निकल ही गये तो दीन–दलितों के दुःख का निवारण कर ही वापस लौटेंगे। वे माँ कैकेयी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं कि उनकी कृपा से ही जनता रूप जनार्दन का साक्षात्कार उन्हें हो सका है। दुर्दान्त दैत्यों के अनाचार अत्याचार की काली छाया को वे घूम–घूमकर निस्तेज करेंगे। उनके कथन में सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति, निरक्षरता के विरूद्ध साक्षरता का प्रसार, कुपोषित नौनिहालों के प्रति दृष्टि तथा निर्धन ग्रामीणों के लिए चिकित्सीय सहायता की व्यवस्था आदि की प्राथमिकता झलकती है। उपेक्षित कोल–किरातों, शबरों और निषादों की सेवा में ही वे पितृ शोक की विस्मृति का मार्ग ढूँढ़ लेने की बात करते हैं। चित्रकूटवासियों के समाज में भावुकता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य भरपूर है। वहाँ की दिनचर्या आश्रमों में व्यतीत होनेवाले यज्ञ, हवन सत्संग, महिमा तथा सेवा से युक्त है। चित्रकूट के कोल–किरात इन तीनों मूर्तियों की सेवा पूरी निष्ठा से करते हैं। वे उनके भोजन, भजन, भ्रमण, के साथ अयोध्यावासियों के लिए भी सबकी व्यवस्था करते हैं।

'चित्रकूट–प्रसंग' का मूल कारण राजनीतिक है, क्योंकि उसमें दशरथ एवं कैकेयी की मानवीय दुर्बलताएँ राजनीतिक नियमों का अतिक्रमण करतीं हैं। ज्येष्ठ पुत्र को राजनीति के अनुसार राज्याधिकार

मिलना चाहिए, किन्तु उसके स्थान पर उसका वन्य निर्वासन दशरथ की मृत्यु का कारण बनता है। चित्रकूट की सभा में राजनीतिक परिवेश पर धर्मानुशासन का वर्चस्व स्थापित हो जाता है, तथा राज्य और राजनीतिक नियमों को वहाँ हेय दृष्टि से देखा गया है। भरत राज्य को अनर्थ का कारण मानते हैं। सभी कृतियों में राजनीतिक समस्या का समाधान राम के द्वारा भरत को चरण पादुका देने और चौदह वर्ष की अवधि तक भरत द्वारा अयोध्या का शासन करने में समाधान पा लेता है। अतः विवेच्य समस्त कृतियों में प्रतिबिम्बित राजनीतिक परिवेश राजनीति पर धर्म के अनुशासन से रागात्मक हो जाता है। 'चित्रकूट चरित' में युवा पीढ़ी के माध्यम से विद्रोह तथा प्रजातांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के विचारों को भी अनुस्यूत किया गया। किन्तु मुख्यतः मूल एवं ख्यात रामकथा का राजनीतिक परिवेश द्वारा सिद्धान्त रूप में विवेच्य कृतियों में रूपान्तरण हुआ है।

आध्यात्मिक परिवेश के विवेचन में सभी कृतियाँ अपनी मूल चेतना में प्राण तत्त्व के रूप में धर्म एवं अध्यात्म को समाहित किए हुए हैं। राम भले ही नर–लीला कर रहे हों, किन्तु उनमें परात्पर ब्रह्म की झाँकी सभी कृतियों में प्रतिबिम्बत हुई है। चित्रकूट की पवित्र पुण्यस्थली में आश्रमों की संस्कृति समस्त अध्यात्म की झाँकी प्रस्तुत करती है। धर्म की ज्योति उपासना एवं कर्मकाण्ड का धार्मिक वातावरण वहाँ सर्वत्र व्याप्त है। त्रिवेदी कृत 'चित्रकूट' काव्य में प्राणायाम, ध्यान, वेद–पाठ और कर्मकाण्ड सब कुछ एक साथ वहाँ दिखाया गया है। अहिंसा वृत्ति मनुष्य क्या जीव–जन्तुओं तक में व्याप्त है। सेवा भावना और परोपकार चित्रकूट वासियों की धमनियों में और शिराओं में प्रवाहित होता है। इन अध्ययनीय कृतियों में आध्यात्मिक परिवेश नैसर्गिक रूप से वर्णित हुआ है। अध्यात्म चिन्तन में मूलतः आत्मा–परमात्मा जीव जगत्, कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग तथा जन्म–जन्मांतर के हेतु रूप पाप–पुण्यों का विवेचन किया जाता है। मूल एवं ख्यात प्रसंगों में राम को परात्पर ब्रह्म निरूपित करते हुए उनकी नर–लीला का भी समानान्तर वर्णन हुआ है। इन कृतियों में भी औपनिषदक पद्धति पर आत्मा की अमरता का वर्णन हुआ है। जगत् के अस्तित्त्व सम्बन्धी चिन्तन पर विचारकों में मतभेद है किन्तु ख्यात प्रसंगों के अनुरूप ही इसका आध्यात्मिक परिवेश वर्णित हुआ है।

काव्य सौन्दर्य के विवेचन की दृष्टि से रामकथा को सानुबद्ध रीति से वर्णित करने वाले पारम्परित महाकाव्यों से ये कृतियाँ किंचित् भिन्न हैं। कोई लम्बी कविता है अर्थात् कथा काव्य, कोई करूण रस प्रधान खण्डकाव्य है, कोई शिविरों में नियोजित खण्ड काव्य है। फिर भी इनमें मानवीय संवेदना तथा हृदयस्पर्शी शैली के संयोग से काव्य शास्त्रीय तत्त्वों का भी सन्निवेश मिलता है। भक्ति परक दृष्टिकोण से देखने पर इन कृतियों में भक्ति रस की प्रधानता लक्षित होती है। शास्त्री कृत चित्रकूट का अंगीरस 'करूण' है और श्रेष्ठ कृतियों का अंगीरस 'शांत' है। यद्यपि प्रसंग वश उसमें श्रृंगार, हास्य तथा अद्भुत वीर रस के उदाहरण भी मिलते हैं। विवेच्य कृतियों की भाषा खड़ी बोली हिन्दी है और इनमें मुहावरे, कहावतों तथा सूक्तियों के सटीक प्रयोग मिलते हैं। भावों एवं घटनाओं को प्रकृति के सापेक्ष वर्णन क्रम में सादृश्यमूलक अंलकारों के प्रयोग की भी प्रवृत्ति यहाँ मिलती है। छन्दों में विशेष रूप से वीर छन्द का प्रयोग किया गया

है, किन्तु शास्त्री जी ने कई वर्णिक एवं मात्रिक छन्दों के साथ करूण रस से संपृक्त गीतों की भी योजना की है। इस प्रकार प्रायः सभी कृतियाँ काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से आकर्षक हैं। 'चित्रकूट चरित' तो मुक्त छन्द में रचित है पर शेष कृतियाँ छन्दोबद्ध हैं। इन सभी में प्रसाद गुण सम्पन्नता और भाषा में पूर्ण प्रवाहमयता देखी जा सकती है। कुल मिलाकर 'चित्रकूट' संज्ञक कृतियों की मूल चेतना भक्ति है। तथापि वैयक्तिक रागात्मकता एवं संवेदना से भी ये कृतियाँ भरी हैं। इनमें एक ओर पारम्परीण जीवन एवं काव्य मूल्यों की रक्षा का प्रयत्न है तो दूसरी ओर उनमें आधुनिक चिन्तन का पुट और युगीन साहित्य परिवर्तन के लक्षण भी दिखाई पड़ते हैं।

समासतः ये कृतियाँ अपने काव्य सौन्दर्य और साहित्यिक महत्त्व के लिए इतिहास में अपना पृथक् स्थान बनाती हैं। इस शोधकार्य द्वारा 'वाल्मीकि रामायण' से लेकर आधुनिक काल के आठवें दशक की हिन्दी कविता में 'चित्रकूट' पर लिखे गये काव्यों, कविताओं और फुटकल संदर्भों की विवेचना की गई है। इसमें परम्परा और संस्कृति के तत्त्वों को खोजने का प्रयास किया गया है और इन काव्यों की विवेचना के क्रम में स्रोत ग्रंथ वाल्मीकि 'रामायण' और 'रामचरितमानस' से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। जहाँ–जहाँ आधुनिकता प्रखर हुई है, वहाँ–वहाँ पारम्परिक सूत्रों से जोड़कर उसकी नव्यता के मार्ग को भी आलोकित किया गया है। कवियों की पृथक्–पृथक् संवेदना एक ही घटना प्रसंगों पर किस प्रकार व्यक्त हुई है उन्हें रेखांकित किया गया है। हमारे सामाजिक समादर्श किस प्रकार मानवतावाद और नये मानव मूल्यों में ढले हैं, उनका प्रतिगामी स्वरूप भी वर्णित है। इन चित्रकूट संज्ञक काव्य के रचयिताओं द्वारा पाठकों के मन में प्रेम, करूणा से संपृक्त सामाजिक आदर्शों की अर्गला को नये ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। हमारे राम इनमें कहीं धुँधले नहीं पड़े हैं बल्कि उनका तात्त्विक और मार्मिक रूप प्रकट हुआ है। उपेक्षित पात्रों को सही ढ़ंग से सांत्वना मिली है। ये काव्य आधुनिक युग की अमूल्य निधि हैं।

उपसंहार

संदर्भ तालिका

---

1. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, बालकाण्ड, दोहा–14/घ
2. गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं. 68
3. 'चित्रकूट', मोहनलाल गुप्त 'चातक', निवेदन

परिशिष्ट

संकेताक्षर विवरणिका

1.	पृष्ठ संख्या	–	पृ.सं.
2.	प्रथम सर्ग	–	प्र.स.
3.	द्वितीय सर्ग	–	द्वि.स.
4.	तृतीय सर्ग	–	तृ.स.
5.	चतुर्थ सर्ग	–	च.स.
6.	पंचम सर्ग	–	पं.स.
7.	षष्ठ सर्ग	–	ष.स.
8.	सप्तम सर्ग	–	स.स.
9.	छवि	–	छ.
10.	छन्द	–	छं.
11.	आदिवासि शिविर	–	आ.शि
12.	ऋषि शिविर	–	ऋ.शि
13.	मातृ शिविर	–	मा.शि
14.	भरत शिविर	–	भ.शि
15.	जनक शिविर	–	ज.शि
16.	श्रीराम शिविर	–	रा.शि
17.	अयोध्याकाण्ड	–	अयो.
18.	वाल्मीकि रामायण	–	वा.रा.
१९.	रामचरितमानस	–	'मानस'

परिशिष्ट

(क) आधार ग्रंथः

1. चित्रकूट–चित्रण, विद्याभूषण 'विभु', प्रका.कला कार्यालय, प्रयाग (सन् 1924 ई.)
2. चित्रकूट, रामानन्द त्रिवेदी 'शास्त्री', प्रका. विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा (सन् 1956 ई.)
3. चित्रकूट, मोहनलाल गुप्त 'चातक',कृष्णा प्रकाशन, झाँसी (सन् 1966 ई.)
4. चित्रकूट, रामेश्वरदयाल दुबे,प्रका. शीलादेवी दुबे, निराला नगर, लखनउ (सन् 1966 ई.)
5. चित्रकूट चरित, लक्ष्मीकांत वर्मा, अंकुर प्रकाशन, दिल्ली, (सन् 1987 ई.)

(ख) सहायक ग्रंथः

अ. हिन्दी ग्रंथ–

1. असम प्रान्तीय राम साहित्य, कृष्ण नारायण प्रसाद 'मगध', मेरठ, 1958 ई
2. कालिदास की कृतियाँ, कैलाशनाथ द्विवेदी, साहित्य निकेतन, सं. 2016 वि.
3. गीतावली, गोस्वामी तुलसीदास,गीता प्रेस, गोरखपुर
4. गोस्वामी तुलसीदास, सीताराम चतुर्वेदी, चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी, 1956 ई.
5. गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं. 2019 वि.
6. गुजराती तथा ब्रजभाषा वैष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, इलाहाबाद
7. चित्रकूट की रोमांचकारी यात्रा, शंकु महाराज, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1987 ई.
8. चित्रकूट दर्शन, बाबूलाल गर्ग, उत्तर प्रदेश, 1972 ई.
9. चित्रकूट, जगदीशनारायण त्रिपाठी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1985 ई.
10. चित्रकूट दर्शिका, डॉ.श्याममोहन त्रिपाठी, सोनिया प्रकाशन, चित्रकूट, 1991 ई.
11. तुलसी रामायण (षष्ठ संस्करण.), भगीरथ मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1968 ई.
12. तुलसीपूर्व राम साहित्य, अमरपाल सिंह, रचना प्रकाशन (सन् 1948 ई.)
13. तुलसीदासत्तर राम साहित्य, रामलखन पाण्डेय, अभिनव प्रकाशन, इलाहाबाद (प्र.सं.)
14. तुलसी साहित्य के विदेशी परिदृश्य, डॉ. ऋचा मिश्रा, अंकिता प्रकाशन, दिल्ली, 144 पृ.
15. तुलसीदास के ग्यारह ग्रन्थ, युगेश्वर, (प्र.सं.), 2001, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, 388 पृ.
16. तुलसीदास और उनका साहित्य, जैन विमल कुमार, साहित्य सदन, देहरादून, (वि 2014)

17. तुलसी साहित्य की भूमिका, भटनागर रामरत्न, प्र. रामनारायण लाल, इलाहाबाद, 1946 ई.

18. तुलसीदास चिंतन और कला, (सं.), मदन इन्द्रनाथ, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1965 ई.

19. तुलसी दर्शन, बलदेव प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, (वि 2013.)

20. तुलसी, उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण, दिल्ली, (प्र.सं.)

21. दोहावली, गीता प्रेस, गोरखपूर (सं 2016 वि.)

22. मध्यकालीन काव्य भाषा, रामस्वरूप चर्तुवेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1974 ई.

23. मानस अनुशीलन, सुधाकर पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं. 2014 वि.

24. माानस की रामकथा, परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद, 1953 ई.

25. मानस–पियुष (पाँच खण्डों में), अंजनी नंदन शरण, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 1968 वि.

26. राम कथा उद्भव और विकास, फाडर कामिल बुल्के, भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहाबाद, 1940.

27. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2016 वि.

28. रामकथा के पात्र, भह राजुकर ग्रन्थम, राम बाग, कानपुर, (प्र.सं.),

29. राम काव्य धारा– अनुसन्धान और चिन्तन, भगवती प्रसाद सिंह, इलाहाबाद, 1939.

30. रामचरितमानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन, राज कुमार पाण्डेय, संधान प्रकाशन,कानपुर, 1967 ई

31. रामकथा, गोपाल उपाध्याय, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, 432 पृ.

32. रामायण के आदर्शपात्र, गीता प्रेस, गोरखपुर, उ.प्र.

33. विनय पत्रिका, गीता प्रेस, गोरखपुर, (सं 2016 वि.)

34. रामायण कालीन संस्कृति, शान्ति कुमार, दिल्ली

35. रामायण कालीन समाज, नूनाराम व्यास, 1958

36. वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस में सौन्दर्याभिव्यक्ति, संगीता कुमारी, यश पब्लिकेशन, दिल्ली

37, वाल्मीकि रामायण का समीक्षात्मक अध्ययण, मिनि, भारद्वाज, शुभद्रा प्रकाशन, दिल्ली (प्र.सं.),2002,पृ.2041

37. वाल्मीकि और तुलसीः साहित्यिक मूल्यांकन, राम प्रकाश अग्रवाला, प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ, 1966.

39. वाल्मीकि रामायण काव्यानुशीलन, शिवबालक राय, मोतीलाल बनारसीदास, प्रयाग, 1958

40. वाल्मीकि रामायण में रस विमर्श, महावीर अग्रवाला, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली (प्र.सं.),1992

41. समकालीन हिन्दी आलोचना (सं) परमानन्द श्रीवास्तव, साहित्य अकादमी,दिल्ली,1998 (प्र.सं.),492 पृ.

42. साहित्य विधाएँ, शशिभूषण सिंघल, आधुनिक प्रकाशन, दिल्ली, 2002, 255 पृ.

43. हिन्दी साहित्य कोश, (खण्ड–2), धीरेन्द्र वर्मा (संपादक)

44. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, काशी (सं 2002 वि)

45. हिन्दी की शब्द संपदा, पं विद्यानिवास मिश्र, राजकमल प्रकाशन, 1977

आ. **संस्कृत ग्रंथ–**

1. अध्यात्म रामायण (हिन्दी अनुवाद सहित), श्री मुनि लाल, गीता प्रेस, गोरखपुर, (सं 2027 वि.)

2. उत्तर राम चरित (हिन्दी अनुवाद सहित),भवभूति प्रकाशन, राम नारायण लाल, इलाहाबाद,1972

3. काव्य मीमांसा, राजेश्वर, जयकृष्णदास,हरिकृष्णदस गुप्त, बनारस, 1931

4. रघुवंश (हिन्दी अनुवाद सहित),कालिदास, प्रकाशक,, राम नारायण लाल, इलाहाबाद,1972

5. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण(हिन्दी भाषान्तर सहित भाग 1 व 2)ए, श्री नारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस, गोरखपुर, (सं 2014 वि.)

इ. **अंगेजी ग्रंथ–**

1- A bibliography of the Ramayana, N.A.Gore, Pune, 1943.

2- A new approach to Ramayana, N.R.Navlekar, Jabalpur, 1947 A

3- The problem of chapter XIX in Raghuvamsa S.V.Sohani, Kalidasa special number of the vikram, Vol.XII, 1969, Vikram Univ.Ujjain.

ई. पत्र–पत्रिकाएं–

1. कल्याण (विभिन्न अंक), गीता प्रेस, गोरखपुर
2. कनक प्रभा, ज्योतिष भवन, मन्दिर चित्रगुप्त, बिजनौर
3. तुलसी सौरभ, आदर्श नगर, जयपुर
4. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, (विभिन्न अंक), काशी
5. नारायणीयम्, कल्याण ठाणे, महाराष्ट्र
6. पूर्वांचल प्रहरी, गुवाहाटी, असम
7. वर्तमान साहित्य, रामघाट रोड, अलीगढ़, उ.प्र.
8. सम्मेलन पत्रिका, मानस चतुःशति अंक–विशेषांक, प्रयाग
9. साहित्य अमृत, सं.प. विद्यानिवास मिश्र, नई दिल्ली।
10. हिन्दी अनुशीलन (विभिन्न अंक),भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग

(उ) कोश

1. अमरकोश, संपादक, हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी, 1970
2. कालिदास कोश. संपा. हीरालाल शुक्ल, रचना प्रकाशन, 1981 ई
3. भारतीय साहित्य कोश, डॉ. नगेन्द
4. हिन्दी साहित्य कोश, संपादक धीरेन्द्र वर्मा, प्रकाशन ज्ञान मण्डल लि, वाराणसी (प्र.स), (सं. 2015 वि)
5. हिन्दी शब्द सागर, सम्पादक रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (विभिन्न अंक),(सं. 2015 वि)

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम	:	अनुराधा कुमारी
शिक्षा	:	एम.ए.
विभाग	:	हिन्दी
शोध–प्रबन्ध का शीर्षक	:	"आधुनिक हिन्दी साहित्य के 'चित्रकूट संज्ञक' काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन"
प्रवेश शुल्क के भुगतान की तिथि	:	01.05.2002
शोध प्रस्ताव की संस्तुति	:	
(क) बी.पी.जी.एस.	:	24.04.2002
(ख) स्कूल बोर्ड पंजीयन संख्या एवं तिथि	:	632, 2.5.2002

LIBRARY
Acc No. 103953
Acc By... P.N
Date 19/4/2010
Class by.....
Sub.Heading by.....
Enter by.....

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग